CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

6.2V

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११८२

कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकित तिथि पर या उसके पूर्व लौटा दें। विलम्बसे लौटानेपर ५ पैसे प्रतिदिन दण्ड देना होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कबीर-वाणी

पिय के घर की रीति अनोखी

(कबीर के चुने हुए गूढ़ पदों व साखियों की टीका)

टीकाकार
पन्नालाल जैन
मंत्री—शाकाहारी संघ, रीवा

विन्ध्याचल प्रकाशन
छतरपुर (म० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक
महेन्द्र कुमार 'मानव'
विन्ध्याचल प्रकाशन
छतरपुर (म० प्र०)

प्रथम संस्करण—१९६६
मूल्य रु० ४.५०

मुद्रक
कैलाशनाथ भार्गव,
फैक्सटन प्रेस,
बाई का बाग,
इलाहाबाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

मैंने संत कबीर के गूढ़ पदों को श्री पन्नालाल जैन द्वारा लिखी हुई टीका ध्यानपूर्वक देखी है।

श्री पन्नालाल जी की टीका का वैचारिक पक्ष बहुत कुछ कबीर की मान्यताओं के अनुरूप है। यों तो गूढ़ पद सदैव गूढ़ ही रहेंगे, परन्तु उनके अर्थ और आशय के उद्‌घाटन का प्रयत्न भी होता रहेगा।

श्री जैन की यह टीका कबीर के गूढ़ पदों को समझने में बहुत हद तक सहायक होगी और कबीर साहित्य के विद्यार्थियों के लिये मूल्यवान सिद्ध होगी, इस विश्वास के साथ मैं प्रस्तुत पुस्तक का स्वागत करता हूँ।

नन्ददुलारे बाजपेयी
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,
सागर विश्वविद्यालय

सागर
८–९–६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

मध्य युगीन हिन्दी काव्य में जीवन की उदात्त भाव-भूमि पर जो प्रेरणाएँ अंकुरित हो सकती थीं उनके सर्जकों में कबीर का प्रमुख स्थान है। सामान्य जन जीवन के प्रतीकों और रूपकों में अध्यात्म और भक्ति की गहरी से गहरी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति उन्होंने बड़ी कुशलता से की है। सामान्य जन भाषा के माध्यम से उनका तत्व चिन्तन हिन्दी साहित्य की अभूतपूर्व उपलब्धि है।

इस कठिन कार्य को सन्त कबीर ने बड़े सहज रूप से किया है। उन्होंने रूपकों और प्रतीकों की एक नवीन भाषा का निर्माण किया है। जिस व्यक्ति का इस नवीन भाषा से परिचय हो वह कबीर के तत्व चिन्तन को बड़ी सरलता से हृदयङ्गम कर सकता है। वस्तुतः कबीर के मानव धर्म और सहज साधना के लिए यह रूपक-भाषा एक राजमार्ग है।

श्री पन्नालाल जैन ने जीवन की एकनिष्ठ साधना से कबीर के अध्यात्म-दर्शन में प्रवेश किया है। उन्होंने अपने जीवन में कबीर के तत्व चिन्तन से रस ग्रहण किया है। सन्त कबीर ने अपनी एक साखी में लिखा है :

सबै रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय।
रति इक घट में संचरै, सब तन कंचन होय॥

कबीर का यही रसायन है जिसने श्री पन्नालाल के मन में कंचन का निर्माण किया है। उन्होंने बड़ी सावधानी से सन्त कबीर के अध्यात्मपरक पदों का संग्रह कर उनके तत्व का निदर्शन बड़ी सरस गद्य शैली में किया है। इससे कबीर के अनेक पद जो रूपकों और प्रतीकों में गूढ़ बने हुए थे, वे कबीर-साहित्य के अध्येताओं के समक्ष सरलता से बोधगम्य हो सकेंगे। विद्यार्थियों के लिए तो यह संग्रह मार्ग दर्शक का कार्य करेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'मानव'—धर्म के विस्तारक सन्त कबीर का यह संग्रह श्री महेन्द्र कुमार 'मानव' द्वारा प्रकाशित हो, यह स्वाभाविक ही है। ऐसे सुन्दर संग्रह के प्रकाशन के लिए मैं पन्नालाल जी और मानव जी दोनों को ही हार्दिक बधाई देता हूँ।

रामकुमार वर्मा
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

साकेत, प्रयाग
२६—५—६६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी बात

यह कोई व्यवसाय की बात नहीं और न ही ख्याति-प्राप्त हेतु किया गया यह प्रयास ही है, अपितु ठोकर लगने वाला पथिक जिस प्रकार सहम कर संयमी पग रखने लगता है, उसी प्रकार अपने प्रारंभिक जीवन में निरंतर स्वाध्याय करते हुए भी अशांत और अज्ञानी बने रहने के उपरांत सचेत करने वाले एक पद ने मुझे कबीर साहित्य की ओर आकृष्ट किया और सहसा लेखनी इन ऊबड़-खाबड़ उलटवासियों और गूढ़ पदों की ओर चल पड़ी। बस इसे ही आप चाहें जो समझें एक सफल असफल टीका अथवा साहित्यिक कृति—

संत कबीर कहते हैं—

पढ़-पढ़ कर पत्थर भए लिख-लिख भए जु इंट।
कविरा अंतर प्रेम की लगी नेकु ना छींट॥

उक्त कथन का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए मुझे मार्ग सुझाने वाला पद जो सचेत करने में सहायक हुआ यह है—

दुनिया ऐसी बावली, पत्थर पूजन जाय।
घर की चक्की कोई न पूजै, जिसका पीसा खाय॥

इस वर्तमान सृष्टि के बड़े-बड़े योगी, महात्मा, ज्ञानी, संत और वैरागी तक उपर्युक्त कथन के अंतर्गत आंशिक बावले प्रतीत होते हैं तब हमारी और आपकी गणना कहाँ तक की जा सकती है।

यह बावलापन हमारी अज्ञानता का ही प्रतीक है क्योंकि हमें सर्वव्यापी चैतन्य शक्ति में परमात्मा का आभास नहीं हुआ है। अहं और ममता ने हमारे नेत्र मूंद रक्खे हैं—

यथा—

ऊपर की दोऊ गईं, हिय की गईं हेराय।
कह कबीर चारिउ गईं, तासों कहा बसाय॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि आपको कुछ अशांति है और आत्म कल्याण की इच्छा है तो आइये संत के इस मैदान में। यह सृष्टि एक विशिष्ट व्यवसायिक केन्द्र और गंभीर ज्ञान सागर है, इसमें डूबने उतराने से कुछ हाथ नहीं लगेगा यहाँ तो प्रेम सागर का तैराक और गोताखोर ही सफल हो सकता है लेकिन इसके पूर्व आपको त्याग और बलिदान करना पड़ेगा। यह त्याग अथवा बलिदान अपने दावे की वस्तुओं का नहीं, अमूल्य धन का नहीं अपितु स्वयं का बलिदान होगा। अहंकार के शिखर पर चढ़े हुए कैसे ऊपर पहुँच सकते हैं, उन्हें भूमि पर आना होगा। सर्व चराचर की रज को मस्तक से लगाना होगा, और वह है—

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
शीश काटि भुंइ पर धरै, तब पैठै घर मांहि॥
शीश काटि भुंइ पर धरै तापर रक्खै पांव।
दास कबीरा यों कहै ऐसा होय तो आव॥

इस प्रकार भटकते, अटकते, चक्कर लगाते और गोता खाते हुए कोई एक खोजी उन मुक्ताओं का अधिपति हो सकता है जिसे हंस चुगते हैं। उसे हंस की तरह मानसरोवर वासी, क्षीर-नीर विवेकी, प्रकाश पुञ्ज, धीर-वीर तथा अन्य अनेकों कलाओं में कुशल होना चाहिए। सफेद-सफेद दिखाई देने वाले सभी अपने आपको हंस समझते हैं लेकिन मुक्ता-भोगी कोई एक होता है। तदनुसार हम सभी अपने आप में हंस हैं, बगुला कोई नहीं है लेकिन,

सर्गुण की सेवा करूँ, निर्गुण का करूँ ज्ञान।
सर्गुण निर्गुण के परे, तहाँ हमारो ध्यान॥

जब मानव प्राणी मात्र में मैत्री व सेवाभाव से सर्व व्यापी एक चैतन्य तत्व का ज्ञान कर आत्म-कल्याण में तत्पर हो जाता है तभी उसका चरित्र निर्मल होता है, अन्यथा बिना सम्यक् दर्शन व ज्ञान के चरित्र की निर्मलता नहीं आती है।

सन् १९५५ की २८ जुलाई को बिहार प्रांत के पावा ग्राम में नरेन्द्र कुमार वर्मा नाम का दसवीं कक्षा का एक छात्र मिला। संत कबीर के कई अटपटे भजन व साखियों के अर्थ जानने की उसमें उत्कंठा थी। उसके एक भजन को सुनकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़ा ग्राश्चर्य हुग्रा। उसकी बुद्धि की क्या प्रशंसा करूँ; उसने मेरे समझाए हुए ग्रर्थों को वेद-वाक्य की तरह माना ग्रौर मेरा पता लिख लिया। बाद में ग्रावश्यकता पड़ने पर उन ग्रर्थों का पुनः पुनः स्पष्टीकरण मँगाया तथा नए पद भी पूछे। यही हमारा परोक्ष प्रेरक ग्रथवा मार्गदर्शक बना। मैंने उसके बाद ही उक्त साहित्य का ग्रध्ययन व मनन प्रारंभ किया। "कबीर बचनावली" ग्रौर "कबीर बीजक" यही दो प्रधान पुस्तकें संत कबीर के विषय में मैंने पढ़ी हैं ग्रौर यही हमारे लिये सम्पूर्ण साहित्य ग्रध्ययन की दृष्टि से पर्याप्त हैं।

श्री रामनयन जो हमारे यहाँ "चना जोर गरम बाबू——" की तान लगाते हुए कुरमुरे चने बेचा करते हैं उक्त "कबीर बीजक" की पुस्तक की धूप सुगंध से पूजा किया करते थे। एक दिन कबीर की चर्चा से प्रभावित होकर मुझे वह पुस्तिका उपयोग करने को दे गये। उनका यह प्रेम संत कबीर के प्रति श्रद्धामात्र है ग्रौर ग्राज भी कबीरपंथी सम्प्रदाय में ९९ प्रतिशत व्यक्ति उनकी वाणी पर श्रद्धा रखते हुए ग्रपने को कृतार्थ मानते हैं। मेरी दृष्टि में यह एक रूढ़ि है क्योंकि कोई भी वाणी ग्रथवा साहित्य चाहे कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो, जब तक उसे समझकर व्यक्तिगत जीवन में उतारा न जाय, उसका कोई महत्व नहीं।

कबीर साहित्य में उलटे बोल ग्रौर परस्पर विरुद्ध कथन न्याय व तर्क की तालिका हैं। जब तक उस मूल वस्तु का ज्ञान न होवे मनुष्य ग्रपनी श्रद्धा को विवेक की कसौटी पर कस नहीं सकता है।

यह टोका उक्त उद्देश्य की पूर्ति में कहाँ तक सफल होगी इसे विज्ञ पाठक व ग्रनुभवी विद्वान उपयोग में लाकर ही समझेंगे। यदि दस प्रतिशत पाठक इससे लाभान्वित हुए तो लेखक ग्रपने परिश्रम को सफल समझेगा।

सैद्धांतिक विशेषता

संत कबोर ने परमात्मा को निराकार परंज्योति स्वरूप हो माना है। यद्यपि वह तत्त्व दृष्टि से एक है तथापि व्यक्ति ग्रौर उसकी शक्ति की ग्रपेक्षा से वह ग्रनेक ग्रौर घट घट व्यापी है। उनकी वाणी से ग्रात्मगुणों की परमात्मा के गुणों से ग्रभिन्नता ही प्रकट होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा—

मैं लागा उस एक से, एक भया सब मांहि।
सब मेरा मैं सबन का, वहाँ दूसरा नाहिं ॥

अथवा—

कौन विचार करत हो पूजा, आतमराम और नाइं दूजा।

इस कथन से "आत्मा" व "राम" की अभिन्नता का भी बोध कराया गया है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि यह जीव माया और मोह से अछूता है। कबीर ने तीर्थ, व्रत, जप तप, पूजा व मूर्ति का विरोध करते हुए भी आत्म-साधन को उपयोगी बतलाया है। मद, मोह, क्रोध और काम को नष्ट करने के लिये विभिन्न कथन किए हैं—

मोह फंद सब फंदिया, कोई न सके निरवार।
कोई साधू जन पारखी, विरला तत्व विचार ॥

यह कथन क्या परापेक्षा से नहीं कहा गया है—

मैं अपराधी जनम का, नखसिख भरा विकार।
तुम दाता-दुख-भंजना, मेरी करो सम्हार ॥

या—

सुरति करौ मरे साइयां, हम हैं भवजल मांहि।
आपे ही बहि जायेंगे, जो नहीं पकरो बांहि ॥

दृष्टिकोण की अपेक्षा मिट्टी के कई घड़े जिनमें घी, दूध, तेल, पानी आदि रक्खा जाता होवे उन्हें व्यवहार में घी का घड़ा अथवा तेल, दूध या पानी का घड़ा कहते हैं उसी प्रकार दृष्टि भेद से विरोधाभासी कथन या विपर्यय कथन इनके साहित्य की विशेषता है।

अन्य दृष्टि—

"चलती को गाड़ी कहें" और "सही को वही"

तथा इसी प्रकार अनेक व्यवहार की हँसी उड़ाना कबीर की आदत नहीं अपितु सत्य का उपगूहन है। यथार्थ में अपने विरोधी को अपना दुश्मन मानने वाला मिथ्या मार्गी है जिसे कबीर ने अपना उपकारी माना है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निन्दक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
साबुन पानी के बिना निर्मल करै सुभाय।।

इस प्रकार संसार का प्राणी मिथ्या बुद्धि को जब तक अपनी सम्यक् शक्ति द्वारा शोधन नहीं करता हैं तब तक वह कुमार्गी हो रहता है। हमारे कार्य एवं व्यवहार सभी मिथ्या बुद्धि से जकड़े हुए हैं, यही मूल में भूल है। जब तक विपरीत बुद्धि को लक्ष्य पर साधा नहीं जाता आत्म-कल्याण या सुख शांति असम्भव है।

ज्यों तिल मांही तेल है ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साइं तुज्झ में जागि सकै तो जागि।।

अथवा—

जदि दिट्ठा तदि पिट्ठा।
जदि पिट्ठा तदि दिट्ठा।।

जिस ओर हमारी दृष्टि है उस ओर पीठ करें और अब तक जिस ओर पीठ थो उस ओर दृष्टि बदलें इस प्रकार पूर्ण विपर्यय दशा ही आत्म-कल्याण का मार्ग है।

यह मार्ग है तटस्थ वृत्ति "साम्य-भाव"

अस्तु—

समदृष्टि सो जानिए शीतल समता होय।
सब जीवन की आत्मा लखै एक सी सोय।।
समदृष्टि सतगुरु किया दिया अविचल ज्ञान।
जहँ देखो तहँ एकही दूजा नाहीं आन।।
समदृष्टि सतगुरु किया मेटा जरत विकार।
जहँ देखो तहँ एक ही साहब का दीदार।।

यह समदृष्टि ही सद्ज्ञान व सदाचरण का मूल है। विद्वान टीकाकार विचारदास ने कबीर बीजक की एक टीका में लिखा है, "जीव अपने कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों में भटकता है। उसके बन्धन का कारण अज्ञात है। अपने शुद्ध स्वरूप को जानने से ही वह मुक्त हो सकता है ? निरुपाधिक ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से ही निरुपाधिक शुद्ध चैतन्य का साक्षात्कार होता है जिससे अंतिम लक्ष्य "कैवल्य पद" की प्राप्ति होती है। इसी अभिप्राय से कबीर साहब ने अपने स्वरूप से भिन्न लोक विशेष निवासी ईश्वर को मानने वाले परोक्ष वादी, गुणोपाधि से भिन्न नाना देवों की उपासना करने वाले तथा अनात्म, भौतिक ज्योति, अनहद शब्दादिकों की उपासना से मुक्ति मानने वालों का खंडन किया है। परन्तु परंपराय मुक्ति के साधक, सात्विक पूजा, अवतारोपासना, योग, तप संयम, तीर्थ, व्रत दानादिक की व्यर्थता उन्होंने कहीं नहीं लिखी है।"

इत्यादि सर्वाङ्गीण दृष्टिकोण से उनका सर्व साहित्य मानव कल्याण के लिये प्रेरक मात्र है और उनके विरोधाभासी कथन जो हमने धार्मिक रूढ़ियों का खण्डन करने वाले मान रक्खे हैं, वे उस तत्व के विवेचक व प्रेरणात्मक मालूम पड़ते हैं।

इस संकलन में यथाशक्ति इसी तरह के गूढ़ और विरोधात्मक पदों की ही व्याख्या की गई है। इन पदों में व्याप्त रहस्यों को सर्व साधारण के समझने योग्य सरल भाषा में रखने का ही प्रयत्न किया गया है। आप इसे अपनावें तभी यह पुस्तक मूल्यवान है।

संत कबीर का कोई नया पंथ नहीं

सभी धर्मावलम्बी इस आत्मा को ही महत्ता देते हैं। परमात्मा और उसकी शक्ति का परिचय प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही परमात्मा को प्राप्त होता है। नय से भी यही बात सिद्ध होती है और यही तत्व अन्य अनेकों प्रकार से संत कबीर ने अपने उपदेशों में व्यक्त किया है। गीता में भी इसी बात की पुष्टि मिलती है—

ब्रह्म भूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्ति लभते पराम्॥

गीता १८।५४

अथवा

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

गीता १८।५५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे अर्जुन ! जो ब्रह्म में अवस्थित प्रसन्नचित वाला न किसी नष्ट वस्तु का सोच करता है और न अप्राप्त वस्तु की इच्छा करता है, तथा समस्त प्राणियों में समदर्शी है वह मेरी भांति परमपद को प्राप्त होता है।

सद्भक्ति द्वारा तात्विक दृष्टि से जो अपने आपका परिचय मेरी तरह जानता है, वह मुझे भली भाँति जानता हैं कि मैं जैसा हूँ और जिस विशेषता युक्त हूँ, उसी रूप के तत्वज्ञान के पश्चात् उसी प्रकार अवस्थित हो जाता है।

ईश्वर के अकर्तृत्व के विषय में कबीर की मान्यता की पुष्टि भी गीता द्वारा होती है जो इस प्रकार है—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥

गीता ५।१४

इसके सिवाय और भी कहा है—

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

गीता ५।१५

ईश्वर हमारे सम्बन्ध में पूर्णतः निरपेक्ष है। जीव स्वयं मोह बुद्धि के कारण अज्ञानी है, उसका ज्ञान अज्ञान से ढँका हुआ है। ईश्वर स्वयं परिपूर्ण है। वह न किसी को पाप का कारण होता है और न पुण्य का भागी ही।

संत कबीर ने तदनुसार ईश्वर को कर्त्ता कर्मादि उपाधियों से परे स्वयं परिपूर्ण प्रकट किया है।

कर्त्ता के कछु रूप न रेखा, करता के कछु वरण न भेखा।
जाके जात गोत कछु नाहीं, महिमा बरनि न जाय मो पाहीं ॥
कहैं कबीर विचार कै जाके वर्ण न नांव।
निराकार औ निर्गुणा है पूरन सब ठांव ॥

अथवा

जो तू चाहे मुज्झको, छाँड सकल की आस।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास ॥

(कबी० सा० २९८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छा के भवसागरे वोहित राम अधार।
कहैं कवीर हरि सरण गहु गोखुर पद विस्तार॥
(कवी० रमैनी २०)

कवीर ने राम, हरि, अविनाशी, सत्य, ज्योति, कृष्ण, अल्लाह, साहव इत्यादि अनेकों सम्बोधन उस एक भगवान के लिये ही किए हैं जो इस लौकिक उपासना के परे अरूपी निर्गुण कैवल्य पद युक्त परमात्मा है। किसी एक रूप, गुण, जाति अथवा समाज द्वारा निश्चित भगवान के नाम में, देवी देवताओं में वे अपने परमात्मा की कल्पना नहीं करते हैं। वही अपनी विकृत अवस्था में घट-घट वासी चैतन्य प्राणी है जो अज्ञान दशा में मानव से लेकर कीट पतिंगे तक में रमा हुआ है।

उन्होंने अपने इस सिद्धान्त को शब्द १८-१९ के सिवाय कवीर बीजक के अन्य पदों में भी दर्शाया है—

जैसे राम गुण न्यारो-न्यारो-न्यारो।
अबुझा लोग कहाँ लौ बूझैं बूझनहार विचारौ,
केतेहि रामचन्द्र तपसी से, जिन पर जग विरमाया।
केतेहि कान्ह भये मुरलीधर, तिन भी अंत न पाया॥

अथवा— जाकी गति ब्रह्मा नहिं जानी, शिव सनकादिक हारे।
ताके गुण नर कैसे पैहो, कहंहि कवीर पुकारे॥

इस प्रकार कई पदों में उन्होंने सगुण राम की अपेक्षा निर्गुण "आत्म तत्व" का विवेचन किया हैं। इस प्रकार सन्त ने भक्ति एवं ज्ञान का समन्वय करते हुए सदाचरण की महत्ता को भुलाया नहीं है अपितु अधिकांश कथन चरित्र निर्माण पर जोर देने वाले ही मिलते हैं—

संतो भाई आई ज्ञान की आँधी,
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी माया रहै न बांधी।
हितचित की द्वै थूनी गिरानी मोह वलीड़ा टूटा।
त्रिष्णा छानि परी घर ऊपरि कुवधि का भांड़ा फूटा।

अंत में उनकी विचार धारा को संक्षिप्त करते हुए पाठकों को यह स्पष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया जाता है कि भ्रमवश यह प्राणी अपने आपको एक संकुचित भावना के कारण एक गृहस्थावस्था में अपनी सीमा उस घर तथा उसके कुटुम्बियों तक ही सीमित रखता है, और वहाँ भी राग-द्वेष पूर्ण वातावरण में स्वार्थ और अहंकार के वशीभूत होकर न्याय-अन्याय तथा अनेकों विकार का कारण बनता है। उसे अपने व्यापक निर्विकार रूप का भान नहीं है अन्यथा वह जगती के सर्व प्राणियों में व्यापक परमेश्वर "राम" का द्रोही, रागी अथवा मायावी होकर कार्य व्यवहार न करता।

कबीर के कथन में दृष्टिकोण की अपेक्षा अनेकों प्रकार के विरुद्ध कथन भी मिलते हैं लेकिन वह सब प्रकारांतर से वस्तु स्वरूप को स्पष्ट करने को ही लिखे गये हैं। एक अपना सुधार ही संसार को सुधार सकता है, "एकहि साधे सब सधै, सब साधे सब जाय" की उक्ति के अनुसार प्रत्येक भाई बहिनों को आत्म कल्याण में अग्रसर होना श्रेयस्कर है। परछिद्रावलोकन हमारी प्रगति में बाधक है, यह ध्यान में रखते हुए सामने आए हुए प्रत्येक कार्य को समता और शांति से सुलझाने का प्रयास करना चाहिये।

सर्वोपरि और अंतिम निवेदन यह है कि इस पुस्तक प्रकाशन के लिये सम्पर्क में आए हुए श्रीमान् कैलाशनाथ जी, कैक्सटन प्रेस, प्रयाग एवं उसके कार्यरत कम्पोजीटर, प्रेसमैन व प्रूफ संशोधक आदि तथा श्री महेन्द्र कुमार जी 'मानव' संचालक, विन्ध्याचल प्रकाशन, छतरपुर का आभार मानता हूँ जिन्होंने अथक परिश्रम द्वारा इस पाण्डुलिपि को सर्वसाधारण की पहुँच के योग्य बनाया। आप सब का आभार मानते हुए मैं पुनः प्रेरणा करता हूँ कि इस मनोरञ्जक साहित्य का गंभीरता से अध्ययन-मनन करके मेरे दश वर्षों के प्रयत्न को सफलीभूत करने में योगदान करें। इसके पूर्व यह टीका श्री रामेश्वर ओझा एवं डा० श्याम सुन्दर लाल दीक्षित, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, टी० आर० एस० कालेज रीवाँ को अवलोकनार्थ दी गई थी। डा० दीक्षित के यहाँ से वह पाण्डुलिपि गुम हो गई, इससे मुझे उसे दुबारा लिखना पड़ा। बुराई में भी अच्छाई छिपी रहती है इस सिद्धान्त के मुताबिक उससे लाभ ही हुआ क्योंकि अब उसका निखरा हुआ रूप आपके सामने आ सका। हमारे श्रद्धेय आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी भूतपूर्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्यक्ष हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय अधुना उपकुलपति विक्रम विश्वविद्यालय एवं डा० रामकुमार वर्मा, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय का मैं विशेष रूप से आभार मानता हूँ जिन्होंने प्राक्कथन और भूमिका लिखकर मेरे प्रयत्न को धन्यता प्रदान की है। इन साहित्याधिकारियों के आभार से मैं कभी मुक्त नहीं होऊँगा। हमारे प्रो० दीपचंद जी, श्रीचन्द्र जी, जयकुमार जी 'जलज', एवं रामनयन जी भी हमारे विशेष प्रशंसक व सहायक बनकर प्रोत्साहन में निमित्त हुए तथा कबीर वचनावली आदि पुस्तकों के लेखक महोदय का आभार मानते हुए अपनी बात को समाप्त करता हूँ।

रीवा
कबीर जयंती १९६६

विनीत
पन्नालाल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रमणी

खण्ड १—पद

	पृष्ठ
१. बुझ बुझ पंडित पद निर्वान	१
२. बुझ बुझ पंडित विरवा न होय	३
३. बुझ बुझ पंडित मन चित लाय	५
४. जो चरखा जरि जाय बढ़ैया न मरै	७
५. एक कर्म है बावना	८
६. अन्तर ज्योति शब्द एक नारी	१०
७. सन्तो भक्ति सत गुरु आनी	१३
८. सन्तो जागत नींद न कीजै	१४
९. गायन कहै कबहुँ नहिं गावै	१६
१०. सन्तो देखत जग बौराना	१७
११. सन्तो घर में झगरा भारी	१९
१२. सन्तो अचरज एक भौ भारी	२०
१३. सन्तो अचरज एक भौ भारी पुत्र घइल महतारो	२१
१४. सन्तो आवै जाय सो माया	२३
१५. परशुराम छत्री नहिं मारे	२५
१६. अगिन जु लागी नीर में	२७
१७. देखि देखि जिय अचरज होई	२९
१८. जो पै बीज रूप भगवान	३०
१९. जोगिया के नगर बसो यत कोय	३३
२०. इह विधि राम सौं ल्यो लाइ	३४
२१. सहज सहज सब कोई कहै	३६
२२. साधो एक आपु जग मांही	३७
२३. लाढ़ो मेंढुकी री	३९
२४. होरी के खिलारो ने कैसी मजा कर डारी	४०
२५. मो पै रंग न डारो मैं तो दिनन की थोरी	४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	पृष्ठ
२६. काया नगर की पोरी, मन खेलत होरो	४४
२७. कोई है रे ! हमारे गाँव के	४५
२८. सन्तो ! सो निज देश हमारा	४५
२९. पिया के घर की रीति अनोखी	४७
३०. तोहि पीय मिलेंगे घूंघट का पट खोल री	४९
३१. धुविया जल बिच मरत पियासा	५१
३२. पानी में मीन पियासी	५२
३३. मिथ्या माया जाल जगत मन	५४
३४. भक्ति का मारग भीना रे	५६
३५. मन मस्त हुआ तब क्यों बोले	५८
३६. अवधू अच्चर हूँ सो न्यारा	५९
३७. मिलना कठिन है, कैसे मिलोगी पिय जाय	६१
३८. भँवर उड़े वक बैठे आय	६३
३९. चली जात देखो एक नारी	६४
४०. है कोई गुरु ज्ञानी जगत में	६६
४१. नारि एक संसारहि आई	६८
४२. ओढ़न मेरी राम नाम	७०
४३. तुम बूझहु पंडित कौन नारि	७१
४४. तुम बूझहु पंडित कौन नारि	७२
४५. बुढ़िया हँसि बोले मैं नितहि बारि	७४
४६. दुनिया ऐसी बावली पत्थर पूजन जाय	७५
४७. आपुहिं कर्ता भए कुलाला	७७
४८. नर को ढाढ़स देखो आई	७९
४९. सांई के संग सासुर आई	८१
५०. पांडे बूझि पियहु तुम पानी	८२
५१. आदम आदि सुधि नहिं पाई	८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ
५२. एक अचम्भा देखो रे भाई ८५
५३. उनई वदरिया परिगौ संझा ८७
५४. चलत चलत तहँ चरण पिराना ८८
५५. जस जिव आपु मिलै अस कोई ६०
५६. भाई रे गईया एक विरंचि दियो है ६२
५७. भाई रे नैन रसिक जो जागे ६४
५८. रामुरा चली बिनावन माहो ६६
५९. बुझि लीजै ब्रह्म ज्ञानी ६८
६०. नर को ढाढ़स देखो आई १०१
६१. नर को नाहिं परतीत हमारी १०२
६२. ना हरि भजसि न आदत छूटी १०५
६३. नर हरि लागी दव विकार १०७
६४. मैं कासों कहों को सुने को पतियाय १०६
६५. जोलहा बीनहु हो हरि नामा ११०
६६. जंत्री जंत्र अनूपम बाजे ११३
६७. संतो मते मातु जन रंगी ११५
६८. एक अचम्भा देखो भाई ११७
६९. झीनी झीनी बीनी चदरिया ११६
७०. चादर झीनी हो राम झीनी १२०
७१. मोरे लग गए बान सुरंगी हो १२१
७२. गुरु बड़े भृंगी हमारे गुरु बड़े भृंगी १२३

खण्ड २—साखी

१. जहियां जल मुक्ता हता १२७
२. शब्द हमारा तू शब्द का १२७
३. शब्द हमारा आदि का १२८
४. शब्द बिना सुरति आँधरी १२८
५. शब्द शब्द जहु अंतरे १२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	पृष्ठ
६. शब्दै मारा गिर परा	१३०
७. शब्द हमारा आदि का	१३१
८. जिन जिन संभल ना कियो	१३१
९. यहाँई संभल करिले	१३२
१०. जो जानहु जिय आपना	१३२
११. जो जानहु जग जीवना	१३३
१२. पानी पियावत क्या फिरै	१३३
१३. हंसा मोती विकानिया	१३४
१४. हंसा तू सुवर्ण वर्ण	१३४
१५. हंसा तू तो सवल था	१३५
१६. हंसा सरवर तजि चले	१३५
१७. हंसा बकु देखा एक रंग	१३६
१८. काहे हरनी दूबरी	१३६
१९. तीन लोक भौ पींजरा	१३७
२०. लोभै जन्म गमाइया	१३८
२१. आधी साखी सिर खड़ी	१३८
२२. पंच तत्व का पूतरा	१३९
२३. पांच तत्व का पूतरा	१३९
२४. रंगहि ते रंग ऊपजै	१४०
२५. जाग्रत रूपी जीव है	१४१
२६. पंच तत्व लै या तन कीन्हा	१४१
२७. पांच तत्व के भीतरे	१४२
२८. असुन्न तखत अड़ि आसना	१४२
२९. हृदया भीतर आरसी	१४३
३०. गाँव ऊँचे पहाड़ पर	१४३
३१. जहि मारग गये पंडिता	१४४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	पृष्ठ
३२. ऐं कबीर ते उतरि रहु	१४४
३३. कबीर का घर शिखर पर	१४५
३४. बिन देखे वह देश की	१४६
३५. शब्द शब्द सब कोई कहैं	१४६
३६. परवत ऊपर हर बहै	१४७
३७. चंदन वास निवारहू	१४७
३८. चंदन सर्प लपेटिया	१४८
३९. जौ मोदाद समसान सिल	१४८
४०. गही टेक छोड़ै नहीं	१४९
४१. चकोर भरोसे चन्द्र के	१४९
४२. झिलपिल झगरा झूलते	१४९
४३. गोरख रसिया योग के	१५०
४४. वन ते भागि बिहड़े परा	१५०
४५. बहुत दिवस ते हींडिया	१५०
४६. कबीर मर्म न भाजिया	१५१
४७. बिनु डांडे जग डांडिया	१५१
४८. मलयागिर की बास में	१५२
४९. मलयागिर की बास में	१५२
५०. चलते चलते पगु थका	१५३
५१. झालि परे दिन आथये	१५३
५२. मन कहै कब जाइये	१५४
५३. गिरही तजि के भये उदासी	१५४
५४. राम नाम जिन चिन्हिया	१५५
५५. जो जन भींजै राम रस	१५५
५६. काटे आम न मौरसी	१५६
५७. पारस रूपी जीव है	१५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	पृष्ठ
५८. प्रेमपाट का चोलना	१५७
५९. दर्पन केरी गुफा में	१५७
६०. ज्यों दर्पन प्रतिविम्ब देखिये	१५८
६१. जोवन सायर जूझते	१५८
६२. दोहरा तो नौ तन भया	१५९
६३. सांचा सौदा कीजिये	१५९
६४. सुकृत बचन माने नहीं	१५९
६५. आगि जो लागि समुद्र में	१६०
६६. लाई लावन हार की	१६०
६७. बूंद जो परा समुद्र में	१६०
६८. जहर जिमीं दै रोपिया	१६१
६९. कबीर जात पुकारिया	१६१
७०. सब ते सांचा वो भला	१६२
७१. धौंकी डाही लाकड़ी	१६२
७२. विरह की ओदी लाकड़ी	१६३
७३. विरह बान जेहि लागिया	१६३
७४. सांचा शब्द कबीर का	१६३
७५. जो तू सांचा बानिया	१६४
७६. कोठी तो है काठ की	१६४
७७. सावन केरा सेहरा	१६४
७८. ढिग बूड़ा उतरा नहीं	१६५
७९. साखी कहै गहै नहीं	१६५
८०. कहता तो बहुतै मिला	१६५
८१. एक एक निरुवारिये	१६६
८२. जिम्या को तो बन्द दै	१६६
(क) पदों का शब्दार्थ	१६७
(ख) साखियों का शब्दार्थ	१८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्ड १

कबीर के चुने हुए गूढ़ पदों की टीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कबीर के चुने हुए गूढ़ पदों की टीका

(१)

शरीर और आत्म तत्व का निर्णय संशयपूर्ण है —

बुझ-बुझ पंडित पद निर्वान,
साँझ परे कहवाँ बसे भान ॥१॥
ऊँच नीच पर्वत ढेला न ईंट,
बिनु गायन तहवाँ उठे गीत ॥२॥
ओत न प्यास मंदिर नहिं जहँवा,
सहसौं धेनु दुहावै तहवाँ ॥३॥
नित अमावस नित संक्रान्ति,
नित-नित नवग्रह बैठे पाँति ॥४॥
मैं तोहि पूछौं पंडित जना,
हृदया ग्रहण लागु केहि खना ॥५॥
कहहिं कबीर इतनौ नहिं जान,
कौन शब्द गुरु लागा कान ॥६॥

(क० बी० शब्द ४६)

दृष्टिकोण :—बड़े-बड़े विद्वानों की जीवादि तत्व-विषयक शंका का निराकरण इस पद द्वारा होता है। कोई यह मानता है कि शरीर और जीवात्मा पंच भौतिक तत्वों से मिलकर बने हैं और मृत्यु के बाद वह यथाक्रम विलीन हो जाते हैं। दूसरे यह मानते हैं कि जानने (ज्ञान) और देखने की शक्ति शरीर का निजी गुण है, आत्मा संज्ञाहीन जड़ पदार्थ जैसा है। तीसरे यह मानते हैं कि यह सब भगवान की लीला है, जो बने सो करते जाओ, अच्छा-बुरा सब निर्दोष है। लेकिन सन्त कबीर ने इस पद में शरीर से भिन्न आत्मा और उसकी योग्यता का वर्णन करते हुए निर्दोष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्व का दिग्दर्शन कराया है और शरीर का भी ज्ञान कराया है। ज्ञान कहाँ है, यह भी स्पष्ट किया है।

(१) अर्थ :—हे विद्वत्वर्ग ! यह पद मुक्ति और संसार की अवस्था को प्रत्यक्ष करता है, इस पर ध्यान दीजिये। सन्ध्या होने के बाद सूर्य कहाँ चला जाता है ? वह कहीं जाता नहीं, पृथ्वी के परोक्ष भाग में प्रकाशित रहता है। विज्ञान से अपरिचित लोग यह नहीं समझ पाते कि जब यहाँ सूर्य डूब जाता है तब वह पश्चिमी गोलार्द्ध में उदय होकर प्रकाशित रहता है। इसी तरह यह जीव मरने के बाद पंच तत्वों में विलीन न होकर अपने पूर्व निश्चित जन्म (योनि) को प्राप्त होता है। दृश्य शरीर मात्र का पंचभूत में विलय होता है। (यही जान लेना और विश्वास करना वास्तविकता है। अच्छा, बुरा, सुख-दुख और धर्म की मर्यादा इस आस्तिक भाव की प्राप्ति में सहायक हैं।)

(२) प्रकृति में सब खाईं, गड्ढे, और पर्वत आदि ऊँचे, नीचे जो आप देखते हैं, क्या ये किसी के द्वारा ढेला और ईंट के सहयोग से बनाये गये हैं ? नहीं, सभी प्राकृतिक हैं। यह किसी की रचना नहीं है। सभी जड़ परमाणु बिना किसी की प्रेरणा के इस सृष्टि के मानव या अन्य जीवधारियों के शरीर की तरह ऊँचे, नीचे, छोटे-बड़े, गोल, लम्बे, चौपाये, पक्षी आदि के रूप में देखे जाते हैं। लेकिन उनकी सक्रियता का एक मात्र कारण सृष्टि में व्याप्त आत्म-तत्व और उसकी क्रियायें हैं। जैसे वायु द्वारा विभिन्न वाद्य अथवा प्राकृतिक वस्तुएँ ध्वनि करती हैं, उसी तरह शरीर में व्याप्त इस जीव की इच्छा से शरीर यन्त्र ध्वनि और शब्दों का उच्चारण करता है। जीव और शरीर इच्छा और वासना के कारण एक दूसरे से बँधे हैं।

(३) जीव का यथार्थ गुण उत्कण्ठा या कामना से परे है। जब प्यास नहीं, तब तृप्ति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। अस्तु अशरीरी यह जीव इच्छा (वासना) से परे है। उसमें आत्म-तुष्टि लबालब भरी है। वह हजारों कामधेनु वाले व्यक्ति की तरह निश्चिन्त और आनन्द का भण्डार है। (संसार में इस ब्रह्म का यथार्थ रूप प्रकट नहीं है, यहाँ तो उसका विकृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप ही देखने को मिलता है, क्योंकि वह सशरीर है, वासना युक्त है।)

(४) संसार में इसे सदैव अविद्या अर्थात् अज्ञान का अन्धकार घेरे हुए है। परन्तु प्रत्येक क्षण उसमें संक्रमण ही होता रहता है। अर्थात् अज्ञान से उठकर ज्ञान की ओर बढ़ता है और कभी ज्ञानी भी अज्ञानी जैसे कृत्य में प्रवृत्त होता है। वह अपने यथार्थ स्वरूप को प्राप्त नहीं कर पाता है। इसका कारण यह है कि वह सदैव नये शरीर एवं विभिन्न योनियों में भटकता ही रहता है, अर्थात् यह परिभ्रमण उसका स्वभाव बन जाता है।

(५) हे विज्ञ पुरुष, किस क्षण से तुझ पर इस माया का पर्दा पड़ा है? तेरा हृदय किस क्षण से इस ज्ञान-सूर्य को ग्रसने वाले राहु (माया) के द्वारा आच्छादित हो गया? यदि इसका ज्ञान तुमको अब तक नहीं हुआ, तो मानो गुरु के शब्द तुम्हारे लिए व्यर्थ रहे।

सन्त कबीर समझाते हैं, कि संसार में जीव सदैव भटकता ही रहता है और पता नहीं इसका अन्त कब और कहाँ है? जब तक इसे अपने सत्य-स्वरूप का बोध नहीं हो जाता और यह अज्ञान में प्रवेश करने का कारण नहीं जान पाता तब तक गुरु के उपदेश कोई प्रभाव नहीं डाल सकते।

(२)

यह एक पहेली है, जो काल-चक्र का वर्णन करती है।

बुझ-बुझ पण्डित बिरवा न होय,
आधे बसै पुरुष आधे बसै जोय ॥१॥
बिरवा एक सकल संसारा,
स्वर्ग सीस जर गई पतारा ॥२॥
बारह पंखुरियाँ चौबीस पात,
घने बरोह लगे चहुँ पास ॥३॥
फूलें न फलें वाकी है बानी,
रैन दिवस विकार चुवै पानी ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कह कबीर कछु अहलौं न तहियाँ,
हरि बिरवा प्रतिपालिन जहियाँ ॥५॥
(क० बी० शब्द ५०)

दृष्टिकोण :—समय और उसके परिवर्तनों को वृक्ष की उपमा दी गई है। यह एक आश्चर्यजनक वृक्ष है, जो तीनों लोकों में एक सा और सर्वत्र व्याप्त है। यह अति उपयोगी है और बूँद-बूँद टपकने वाले पानी की तरह नित्य स्रवित है। इस समय को सदुपयोग में लगाने वाला सदैव सुखी है।

अर्थ :—(१) विद्वत् वर्ग, यह एक पहेली है, वृक्ष नहीं है। उसका अर्द्ध भाग दिन है, पौरुष क्षण है। शेष अर्द्ध भाग रात्रि है, जो पौरुष का पूरक है और स्त्री-सदृश सुखद या दुःखद है। यह वर्णन काल वृक्ष का है जो इस प्रकार है।

(२) जिस तरह सम्पूर्ण जगत एक ही वायु-मण्डल के अन्तर्गत विस्तीर्ण है, उसी तरह सम्पूर्ण सृष्टि में यह एक ही है। वृक्ष की तरह मूल, तना और शाखाओं के समान यह भी भूत, वर्तमान और भविष्य—तीन अंगों में विभक्त है ; परन्तु सम्पूर्ण संसार में यह काल द्रव्य एक ही है। इसका भविष्य स्वर्ग या आकांक्षाओं का फल है और भूत मूल की तरह अदृश्य है, प्रकृति की गोद में है; लेकिन वर्तमान नित्य है, सदैव है।

(३) इस काल-द्रव्य की योग्यतानुसार कल्पित विभाग क्रम बारह महीने हैं, जिसके दोनों भाग कृष्ण व शुक्ल पक्ष मिलाकर चौबीस पक्ष (पत्ते) हैं। क्रमशः आने-जाने वाले दिन इस काल-द्रव्य के अंश हैं।

(४) यह वृक्ष न तो फूलता है और न फलता है। लोग कहते हैं कि समय का दोष है, लेकिन समय न तो फल देता है और न अनेक रूपों में फूलता है। संसार की क्रियायें ही समय पाकर फलित होती हैं और विभिन्न परिवर्तन दिखाई देते हैं। उसके प्रत्येक क्षण (पानी की तरह) दिन और रात करके व्यर्थ बहते रहते हैं, अर्थात् प्रत्येक क्षण निरंतर व्यतीत होता रहता है, यदि हम उसको उपयोग में न लें, अथवा व्यर्थ गवां दें, तो यह बड़ी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारी भूल होगी।

(५) ये बीतते हुए क्षण उस व्यक्ति के लिए खेद जनक नहीं हैं, जो भगवद्भक्ति में समय व्यतीत करता है, अथवा आत्म-कल्याण हेतु ध्यान-मग्न हो गया है। ऐसा सन्त कबीर इस पद में व्यक्त करते हैं।

(३)

धर्म-मार्ग में आये हुए भ्रम को दूर करना या उसके विधान में समयानुकूल संशोधन करना आवश्यक है।

बुझ-बुझ पण्डित मन चित लाय,
कबहिं भरल बहै कबहिं सुखाय ॥१॥
खन ऊबै, खन डूबै, खन औगाह,
रतन न मिलै पावै नहिं थाह ॥२॥
नदिया नहिं सासरि बहै नीर,
मच्छ न मरै केवट रहै तीर ॥३॥
पोहकर नहिं बांधल वहाँ घाट,
पुरइन नहिं कमल मंहँ बाट ॥४॥
कहहिं कबीर यह मन का धोख,
बैठा रहै चला चहै चोख ॥५॥

(क० बी० शब्द—५१)

दृष्टिकोण :—प्रचलित धार्मिक रूप मानव हित के कहाँ तक साधक हैं? मूल के बिना वृक्ष और फलों की आशा करने के सदृश वर्तमान धार्मिक कर्मकाण्ड वांछित फल को देने वाला नहीं। क्यों सुख की आशा में प्रतीक्षा करते हो? मार्ग विपरीत है, बदलना होगा।

अर्थ :—(१) यह पद विद्वत्जनों के ध्यानपूर्वक समझने योग्य है। कभी यह मन आनन्द से पूर्ण होकर उमड़ पड़ता है और कभी दुःख से सन्तप्त होकर शुष्क पड़ जाता है, क्योंकि वह शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील है।

(२) इस खोजपूर्ण कार्य में रत प्रत्येक प्राणी अपने कृत्यों से क्षण में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऊब जाता है। दूसरे क्षण पुनः गोता लगाता है, अर्थात् क्रियाशील होता है, फिर इधर-उधर खोजता हुआ अवगाहन करता है। सब कुछ करते हुए भी सफलता उसके हाथ नहीं आती है, क्योंकि उस आत्म-रत्न की प्राप्ति के बिना कदापि शान्ति-सुख स्थायी नहीं होता है। इस तरह भटकता हुआ वह शाश्वत सुख के मार्ग को प्राप्त नहीं करता है।

(३) हमारे धर्म-शास्त्र पतन की ओर नहीं ले जाते हैं। उनमें सर्वत्र उन्नति के ही मार्ग बताये गये हैं, लेकिन जल के स्वभाव की तरह यह प्राणी सदैव पतन की ओर अग्रसर होता है। सर्वत्र उपदेशक और उद्धारक (केवट) विद्यमान हैं, लेकिन इन्द्रियों की चपलता (मच्छ) और विकृत बुद्धि नष्ट नहीं होती है।

(४) पुष्कर तीर्थ, मंदिर, तालाब आदि हैं, फिर भी घाट नहीं है। अर्थ यह कि सर्वत्र मंदिर हैं, धर्मोपदेश की व्यवस्था है और उपाय बतलाये जाते हैं, लेकिन वह कहाँ तक उपयोगी हैं? कारण—शारीरिक स्वार्थ-साधन सहज है, लेकिन आत्म सिद्धि (स्व = आत्मा, अर्थ = उपदेश, उद्देश्य) आत्मा के उद्देश्य को कैसे सिद्ध करना चाहिए? यह एक आश्चर्य की बात है। कमल का अस्तित्व बिना पुरइन नहीं है। इसी प्रकार मूल वस्तु आत्मा को जाने बिना मूढ़ कल्पना के सहारे प्रयोग (बाट—व्यवसाय) में सफलता की आशा करना व्यर्थ है।

(५) सन्त कबीर विवेक-युक्त मार्ग बतलाते हुए कहते हैं कि यह सब मन को बहलाने के साधन हैं। यदि आप इन कर्म-काण्डों के सहारे सुख-शान्ति की आशा रखते हैं, तो आप का इस तरह प्रतीक्षा करते रहना भ्रम-पूर्ण है, व्यर्थ है। हाँ यदि अपना मार्ग बदल कर उपयुक्त उपाय करें तो वह उत्कृष्ट होगा अर्थात् वर्तमान प्रचलित कर्म-काण्ड उद्देश्य की सिद्धि के लिए भ्रम-पूर्ण है। इस मार्ग को बदल कर सत्य मार्ग पर चलना होगा। सभी पाखण्ड को त्यागने पर ही सुख-शान्ति की प्राप्ति हो सकती है।

उद्देश्य क्या है? संसार में नियत कर्मों को करते हुए उन कर्मों से छुटकारा पाना अर्थात् कर्म में प्रवृत्त होकर उनसे निवृत्त होना अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्देश्य होना चाहिए। ऐसा करने पर ही आत्मानुभव हो सकता है। अतएव इस तरह निवृत्त मार्ग को ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(४)

जो चरखा जरि जाय बढ़ैया न मरै,
मैं कातौं सूत हजार चरखुला जनि जरै ॥१॥
बाबा मोर ब्याह कराव, मोंहिं अच्छा बरहि तकाव,
जौ लौं अच्छा वर न मिलै, तौ लौं तू ही बियाह ॥२॥
प्रथमै नगर पहुँचतै परिगा शोक संताप,
एक अचम्भा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप ॥३॥
समधी के घर समधी आए, आये बहु के भाय,
गोड़े चूल्हा दै दै चरखा दियो दिढ़ाय ॥४॥
देव लोक मरि जांयगे, एक न मरै बढ़ाय,
यह मनरंजन कारणे, चरखा दियो दिढ़ाय ॥५॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, चरखा लखै न कोय,
जो यह चरखा लखि परै, आवागमन न होय ॥६॥

(क० बी० शब्द ६८)

दृष्टिकोण :—संसार को बढ़ानेवाला कर्मचक्र है। कर्मचक्र को नष्ट करने के जो उपाय हैं, वे विपरीत हैं; अस्तु उस कर्मचक्र को जलाने की अपेक्षा उसे और दृढ़ करते हैं। इसलिए कर्मचक्र और उसके नाश का उपाय समझे बिना सभी धार्मिक कर्म-काण्ड क्षणिक सुख वाले देव लोक में ले जाते हैं, मुक्ति की ओर नहीं।

अर्थ :—(१) यदि कर्म बन्धन टूट जाय, तो यह जीवात्मा जन्म-मरण के चक्र से छूटकर अमरत्व पा सकता है। इस हेतु मैंने हजारों सूत्र निकाले परन्तु चरखा नहीं नष्ट हो सका है।

(२) इस इच्छा से मैं गुरुजन और विद्वानों के पास भी गया, उनसे निवेदन किया, "हे महानुभाव मुझे सौख्य मार्ग पर लगाइये, मुझे श्रेष्ठ प्रभु अथवा आदर्श मार्ग बतलाइये, अथवा जबतक मैं उस मार्ग को न पहुँच सकूँ, तब तक तू ही अपने कर्म-काण्ड में उलझाए रख।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) उक्त इच्छा से मैं उनके निर्धारित मार्ग, मन्दिर-तीर्थ आदि गया। वहाँ की नीति देखते ही मैं बहुत दुःखी हुआ और वहाँ जो ढोंग भरी आश्चर्य-जनक बात देखी, वह कहते ही लज्जा मालूम होती है। वहाँ पर माया (बिटिया) ने प्रभु अर्चना आदि में भी ब्रह्म (बाप) पर अपना जाल फैला रखा है अर्थात् आत्म कल्याण के मार्ग में भी रुपये पैसे की ही विडम्बना दिखती है।

(४) इस समत्व-बुद्धि-वर्द्धक धर्म-स्थल (समधी के घर) में जो पुजारी प्रतिनिधि और स्वजन पहुँचते हैं, वे सब इसी प्रचलित मिथ्या मार्ग (गोड़े चूल्हा दै दै) का ही पोषण करते हैं। इस तरह से कर्म नष्ट होने की अपेक्षा और दृढ़तर हो जाते हैं। सभी क्रियायें तत्वहीन ही हैं।

(५) यदि पुण्य कर्मों (दान-तप) द्वारा गति विशेष में सुधार करने के कारण देव लोक को प्राप्त हुए तो भी वहाँ के सुख क्षणिक और नश्वरता के पर्याय ही हैं। अतः फलकी आशा से कर्म करने वाला जीव पुण्य क्षीण होने पर पुनः संसार चक्र में भ्रमण करता है। इस तरह यह चरखा (कर्म-चक्र) नष्ट नहीं हो सकता है।

सन्त कबीर कहते हैं कि इस कर्म-चक्र की ओर अपने विवेक को न ले जाकर, प्रचलित कर्म-कण्ड को ही धर्म मान लेने से कल्याण नहीं। जिसे यह कर्म-चक्र और उसके कारण ज्ञात हो जाते हैं और वह उसे क्षीण करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर देता है, वह संसार से छूट कर अमरत्व को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थः—इस पद में कबीर ने पुण्य और पाप कर्म दोनों को बन्धन का कारण बताया है। यदि पुण्य कर्म से उच्च पद (श्रेष्ठ जन्म) मिलते हैं, तो पाप कर्म से दुःख और निकृष्ट योनियाँ प्राप्त होती हैं, लेकिन कर्मों को नष्ट किये बिना भव-भ्रमण से छुटकारा नहीं।

(५)

एक कर्म है बावना, उपजै बीज बहूत।
एक कर्म है भूँजना, उदयन अंकुर सूत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टिकोण:—कार्य करने को कर्म कहते हैं। हमारे प्रत्येक कार्य कर्म रूप में परिवर्तित होते हैं। कर्म वह सूक्ष्म, अदृश्य पुद्‌गल परमाणु है, जो हमारे दृश्यमान शरीर की बनावट में तथा वियोग काल में इस आत्मा के साथ सूक्ष्म क्रियमाण शरीर के रूप में सदैव वर्तमान रहते हैं। यह सूक्ष्म शरीर हमारे मन, वचन, और क्रिया के उपयोगों से क्षण प्रति क्षण बदलता रहता है। यह परिवर्तन सहज बुद्धि या किसी अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा भी ज्ञात करना असंभव है।

यदि यह जीव बहिर्दृष्टि के कारण शरीर और उससे सम्बन्धित जड़ तथा चैतन्य पदार्थों के प्रति आत्म-बुद्धि रखता है, तो वह अपनी प्रत्येक क्रियाओं के द्वारा कर्मों के चक्र में फँसता रहता है। यदि वह अन्तर्दृष्टि को प्राप्त होकर अहंकार और ममत्व से पृथक अपने शुद्ध, बुद्ध चैतन्य स्वरूप को ही देखता है; संसार के सभी प्राणियों में समत्व और एकात्म बुद्धि जागृत कर लेता है, तो वह कर्मों को करता हुआ भी सदैव एक ब्रह्म की कल्पना से पृथक नहीं होता है और इस तरह वह अकर्ता ही रहता है, कर्म जाल उसे फंसा नहीं सकते हैं। पूर्व कर्मों से क्रमशः छुटकारा पाता हुआ निर्विकल्प और शुद्ध चैतन्य स्वरूप को प्राप्त होता है।

अर्थ:—बीजों का प्रयोग दो तरह से होता है। प्रथम बीजों को संचित रखकर योग्य भूमि और काल देखकर खेत में बोना एवं बोये हुए बीज से कई गुनी फसल प्राप्त करके बढ़ाते जाना।

द्वितीय कार्य, बीज को भून देने से अपने वास्तविक रूप को बनाये रख-कर भी मौलिक गुणों (पौधे के रूप में उगने तथा उत्पादन बढ़ाने) से रहित हो जाता है। इसी तरह कर्म और उसके फल देने की शक्ति को ज्ञान द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।

इसी तरह से कर्ता की अहं बुद्धि और ममत्वपूर्वक की गई क्रिया कर्म रूप सूक्ष्म शरीर में परिणत होकर फल देने की शक्ति रखती है, जब कि निर-भिमानी और तटस्थ व्यक्ति कृति को करता हुआ भी नवीन कर्मों को नहीं बाँधता है और अपने कार्यों द्वारा पूर्व कर्मों को भी जर्जरित करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार उपर्युक्त व्याख्या द्वारा कर्म के जो भेद किये गये है, उनके नाम क्रमशः सकाम कर्म और निष्काम कर्म हैं। निष्काम कर्म मोह और अहंकार से पृथक फल की आशा रहित कार्य करने की प्रवृत्ति को कहते हैं। कर्म के यही दो परस्पर विरोधी भेद हैं, जो समझ लेने पर भावनाओं एवं-कार्यों में परिवर्तित हो सकते हैं। सकाम कर्म संसार को बढ़ानेवाला है और निष्काम कर्म संसार काटनेवाला है।

(६)

अन्तर ज्योति शब्द एक नारी, हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी,
ते तिरिये भग लिंग अनन्ता, तेऊ न जाने आदिउ अन्ता ॥१॥
बाखरि एक बिधाते कीन्हा, चौदह ठहर पाट सो लीन्हा,
हरिहर ब्रह्मा महंतौ नाऊ, तिन पुनि तीन बसावल गाऊँ ॥२॥
तिन पुनि रचल खण्ड ब्रह्मण्डा, छौ दर्शन छानवे पखंडा,
पेट न काहू वेद पढ़ाया, सुनति कराय तुरुक नहिं आया ॥३॥
नारी भी चित गरभ प्रसूती, स्वांग धरै बहुत करतूती,
तहिआं हम तुम एकै लोहू, एक प्राण बियापै मोहू ॥४॥
एकै जनी जना संसारा, कवन ज्ञान ते भयउ नियारा,
भौ बालक भर्ग द्वारे आया, भग भोगी के पुरुष कहाया ॥५॥
अवगति की गति काहु न जानी, एक जीभ कित कहीं बखानी,
जो मुख होय जीभ दस लाखा, तो कोइ आय महन्तौ भाखा ॥६॥
कहहिं कबीर पुकार के ई ले ऊ व्यवहार।
राम नाम जाने बिना भव बूड़ि भुजा संसार ॥७॥

(क० बी० शब्द १)

दृष्टिकोण:—सृष्टि के बारे में अनेक किम्वदन्तियाँ हैं; लेकिन इस अनादि निधन सृष्टि का आदि अन्त किसी ने नहीं जाना है। जीव मोह के वश होकर अनन्त जन्म धारण करता है, भटकता फिरता है। यही सृष्टि का कारण है। जीव तत्व ही षट दर्शन और छ्यानवे पाखंड को बढ़ाने वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाति भेद को बनाने वाला है। मूल रूप में प्राणी सब एक हैं, कोई भेद नहीं—इत्यादि।

अर्थ :—(१) जीव मूक व अदृश्य है, लेकिन शरीर व माया के सम्बन्ध से वह दृश्यवान और वाचाल है। अपने संसारी गुणों की अपेक्षा वह त्रिगुणात्मक है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम भी क्रमशः रज, सत् और तम के अधिष्ठाता हैं।

रजोगुण ब्रह्म तमोगुण शंकर, सतोगुणी हरि सोई।
कहै कबीर राम रम रहिया हिन्दू तुरक न कोई॥

इस भव समुद्र में ये पूज्य महा पुरुष भी अंनत जन्म धारण करने के बाद ही मुक्त हुए हैं फिर भी सृष्टि का आदि अंत नहीं ज्ञात हुआ है।

(२) यह सर्वव्यापी ब्रह्म इस सृष्टि के चौदह खण्ड में अपनी-अपनी योग्यतानुसार (कर्मानुसार) जन्म लेता हुआ, लोक रचना का कारण है। गुणों की प्रधानता से रजोगुणधारी जीव मध्य लोक में, सतोगुणधारी ऊर्ध्व लोक में और तमोगुणधारी पाताल लोक में निवास करते हैं। ब्रह्मा विष्णु और शंकरजी इनके जनक, पालक और संहारक माने जाते हैं।

(३) इसी जीव ने लोक के अनेकों खण्ड द्वीप और महाद्वीप के नाम से बसाए हैं तथा जातिगत छयान्नवे पाखण्डों का निर्माण किया है। जातिगत भेदों में हिन्दू और मुसलमान को ही लीजिए कि क्या कोई वेदपाठी ही पैदा होकर हिन्दू नाम पाता है ? अथवा क्या कोई जन्म से ही सुबुद्धिवाला होता है ?

(४) नारी के मोह से यह चैतन्य गर्भ में पहुँचता है और कर्मानुसार अंनत जन्मों तक विभिन्न आकृतियाँ बदलता हुआ पशु-पक्षी, मानव आदि स्वरूपों को प्राप्त करता है। फिर भी प्राणियों के परस्पर के सभी भेद (हम और तुम) कथन मात्र हैं। सभी में एक जैसे प्राण (जीवात्मा) और खून का संचार है।

(५) संसार में स्त्री, पुरुष, जाति आदि भिन्न रूपों में व्यक्तहोने वाला यह जीव तत्व एक ही है। ऐसा कौन-सा ज्ञान है जो इनको भिन्न सिद्ध करे ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् प्राणी में भिन्नता की भावना रखना अज्ञान है। योनि से निकलते समय यह जीव बालक संज्ञा पाता है। युवा होने पर वही विलासी होकर पुरुष नाम पाता है, यह सब शरीर की अवस्था के भेद हैं। सभी अवस्थाओं में जीव वही रहता है।

(६) इस जीव की विभिन्न गतियों और परिभ्रमक स्वभाव को कोई नहीं जानता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इन पंच परावर्तनों वाला यह प्राणी कैसी-कैसी योनियाँ और क्षेत्रों को प्राप्त होता है। यदि कोई महापुरुष दस लाख जिह्वा से भी इसका वर्णन करे तो संभव नहीं है, फिर यह एक जिह्वाधारी मानव वर्णन कैसे कर सकता है?

(७) संत कबीरदास जी कहते हैं कि दृश्यमान सभी रूप, गुण, गंध, रसादि भौतिक विभिन्नताएँ इस संसार के व्यावहारिक (भौतिक) रूप हैं। सत्य इन सबसे परे है। उसे पहिचान कर सर्वशक्तिमान उस "राम" का ज्ञान व दर्शन कर। उसका आभास हुए विना भव भ्रमण में यह सभी संसारी अपनी योग्यता और समय को नष्ट कर रहे हैं।

भावार्थ :—इस सृष्टि का रचयिता त्रिगुणात्मक यह जीव है। अस्तु कब से यह सृष्टि है और कब से यह जीव है? इस पचड़े में पड़ना आत्म कल्याण का साधक नहीं है।

सभी जीवात्मा, द्रव्य की दृष्टि से एक ही हैं। चैतन्य और ज्ञान का पुंज सत् पदार्थ है; लेकिन पर्याय की अपेक्षा सृष्टि में दृश्यमान विभिन्न रूपधारी हैं, अस्तु बहुरूपिया हैं। विभिन्न दृष्टिकोणों से सृष्टि और पदार्थों की व्याख्या ही षट् दर्शन और छयानवे पाखंड का कारण है। जीव द्रव्य अपने विभिन्न गुण पर्यायों की अपेक्षा अनेकों रूप में प्रतिभासित होता हुआ न स्त्री है, न पुरुष है, न बालक है, न वृद्ध है, न हिन्दू है, न मुसलमान है। अभेद रूप से वह सच्चिदानन्द है, अनन्त है और अनादि है। इसकी विभिन्न दशाओं का वर्णन करोड़ों मुख वाला महापुरुष भी नहीं कर सकता है, क्योंकि उसके सभी दृश्यमान रूप व्यावहारिक और भावनात्मक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७) माया

सन्तो भक्ति सतगुरु आनी,
नारी एक पुरुष दुइ जाया, बूझों पंडित ज्ञानी ॥१॥
पाहन फोरि गंग एक निकरी, चहुं दिस पानी-पानी,
तेहि पानी दुइ पर्वत बूड़े, दरिया लहर समानी ॥२॥
उड़ि माखी तरिवर ते लागी बोलै एकै बानी,
वहि माखी के माखा नाही गर्भ रहा बिनु पानी ॥३॥
नारी सकल पुरुष वै खायो, ताते रहेऊ अकेला,
कहहिं कबीर जौ अबकी बूझै सोई गुरु हम चेला ॥४॥

दृष्टिकोण :—माया ने जीवों को संसार में कैसा फँसा रक्खा है ? उस दुविधा को नष्ट करने हेतु ज्ञान ही समर्थ है। इस मानव जन्म को सफलता के लिये इसी भव में जो सचेत हो जावे वही मेरा पूज्य है।

अर्थ :—(१) सच्ची भक्ति सत्‌गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकती है। ऐ ज्ञानी विद्वानो, इस माया (नारी) की पहिचान कीजिये। इस माया के चक्र में फँसकर राग और द्वेष नामके दो घातक-तत्व (पुरुष) इस जीव के गुणों को नष्ट कर रहे हैं। इस कारण तुझे सद्‌भक्ति का अभ्यास नहीं हुआ है।

(२) इस अज्ञान (पाहन) को भेद कर एक ज्ञानधारा प्रवाहित होने पर तुझे चतुर्दिक में शांति प्राप्त हो सकती है। अर्थात् राग द्वेष को नष्ट करने के लिये प्राणी मात्र में समत्व धारणा के इस प्रवाह में तेरा मोह और अविद्या नाम का पर्वत नष्ट हो जायेगा। सम्यकज्ञान की लहर इस भव समुद्र का शोषण कर लेगी अर्थात् सद्‌ज्ञान द्वारा ही तेरे भव भ्रमण का दुःख नष्ट हो सकेगा।

(३) इस संसार का कारण मिथ्या भाव तुझ से भिन्न हो जावेगा और तुझे आत्मा (ब्रह्म) की एकरूपता का आभास मिलेगा। तृष्णा (माखा) रहित होने से मिथ्याभाव (माखी) की ओर आकर्षण न होगा। तेरे हृदय का द्वैत-भाव (गर्भ) निर्मूल (विनुपानी) हो जावेगा। यही वह सत्य-भक्ति है जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्गुरु के बिना प्राप्त नहीं होती है।

(४) माया (नारी) के आकर्षण में फँसकर तूने सम्पूर्ण पौरुष बेच खाया है अस्तु अकेला (निर्मोही) रहना ही श्रेयस्कर है। संत कबीर दास जी प्रबुद्ध करते हुए कहते हैं कि जो बस इस मानव जन्म में आत्मकल्याण हेतु सचेत हो जावे वही मेरा गुरु है। मैं उसका शिष्यत्व मानता हूँ जो इस कल्याण पथ का पथिक है।

(८)

आखेट करने वाला स्वयं निशान बने, अंतः दृष्टि से सम्पूर्ण सृष्टि व्यक्त हो जाये, ऐसे अंधे को ही सच्ची दृष्टि प्राप्त होती है :—सन्तों जागत नींद न कीजै।

सन्तो जागत नींद न कीजै,
काल न खाय कल्प नहिं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै ॥१॥
उलटी गंग समुद्रहि सोखै, शशि औ सूरहिं ग्रासै।
नौ ग्रह मारि रोगिया बैठे, जल महं बिम्ब प्रकाशै ॥२॥
बिनु चरणनु को दहुं दिशि धावै, बिनु लोचन जग सूझै।
ससा सो उलटि सिंह को ग्रासै, ई अचरज को बूझै ॥३॥
औंधे घड़ा नहीं जल भरिया, सूधे सो जल भरिया।
जिहि कारण नर भिन्न भिन्न कह, गुरुप्रसाद ते तरिया ॥४॥
बैठि गुफा में सब जग देखे, बाहर कछुक न सूझै।
उलटा बान पारधिहिं लागै, सूरा होय सो बूझै ॥५॥

दृष्टिकोण :—जड़ और चैतन्य का भेद प्रगट होने पर संसार के सभी कार्य विपरीत लगते हैं। शरीर में निजत्व बुद्धि रखने से ज्ञान सच्चा नहीं रहता, लेकिन जब संसार की ओर किया गया लक्ष्य अपने को ही भेदने में लगता है तभी लक्ष्य की सिद्धि होती है जिसे कोई विवेकी (सूरा) ही जान सकता है।

अर्थ :—(१) संत पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह मोह के नशे में सुषुप्त न हो, वरन् सचेत रहे। तू एक अविनाशी अर्थात् अजर अमर तत्व है। जाग्रत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहने पर तू माया से अलिप्त होगा।

(२) संसार की ओर लगा हुआ तेरा ज्ञान (गंग) पलट कर यदि अपनी जानकारी की ओर सन्मुख होता है, तो तू संसार समुद्र का शोषण कर लेगा। समय चक्र को लाँघ कर उस पर विजयी होगा। अर्थात् समय के बंधन से अपने को स्वतंत्र कर लेगा। शरीर और उसके कारण जन्म, जरा, मृत्यु भय, शोक, अरति, भूख, प्यास आदि अठारह रोगों को नष्ट कर स्वस्थ हो जावेगा। अपनी निर्मल दशा प्रकट कर आत्मज्योति से संसार में एक मात्र उस आत्मा का ही प्रतिबिम्ब देखेगा।

(३) यह जीव एक विलक्षण तत्व है। बिना नेत्रों के यह सम्पूर्ण संसार को देखता है। बिना पैरों के दशों दिशाओं में जाता है, अर्थात् शरीर रहित होने पर भी यह सभी कार्यों में विचित्र क्षमता रखने वाला है। खरगोश जैसा तुच्छ यह जीव सिंह सदृश इस शरीर को नष्ट करने की क्षमता रखता है इस विचित्रता को कोई—कोई ही जानता है।

(४) विपर्यय ज्ञान के कारण यह निर्मलता (जल) को प्राप्त नहीं हो रहा है। सरलता और विवेक जाग्रत होने पर, यह निर्मलता का भंडार स्वयंबुद्ध होता जाता है। यही एक उपाय है जिसके द्वारा मानव जड़ और चैतन्य (नर) की पृथकता का ज्ञान कर, माया से पृथक ब्रह्म-मय इस संसार में सम-रसता का भोगी होकर अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। यह सब सद्गुरु के उपदेश और संगति से संभव है।

(५) इस विपरीतता को प्रतिभासित करने वाला यह विवेकी संसार की दृष्टि में अंधा है, लेकिन उसने भेद-विज्ञान का बाण स्वयं पर ही चलाया है। उसका लक्ष्य सामने वाला नहीं, उसके अंतरग में छिपे हुए कषाय भाव ही हैं। इसका ज्ञान उसे अपनी अंतर्दृष्टि से ही हुआ है। वह अपने चर्म-चक्षुओं से और बाह्य जगत को लक्ष्य बनाकर साधक नहीं बना है। अस्तु हे सत्पुरुष ! इस विलक्षणता की ओर देख, मानव जन्म इस माया के नशे में सुप्त रह कर व्यर्थ गवाँ देने का नहीं। इसी पद का अगला अंश इस प्रकार है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६)

गायन कहै कबहुं नहिं गावैं, अनबोला नित गावैं।
नटवट बाजा पेखनि पेखैं, अनहद हेत बढ़ाव ॥६॥
कथनी वदनी निजु कैं जोवैं, ई सब अकथ कहानी।
धरती उलटि अकाशहि वेधैं, ई पुरुषन की बानी ॥७॥
बिना पियाला अमृत अंचवैं, नदी नीर भरि राखैं।
कहैं कबीर सो युग-युग जीवैं, जो रामसुधा रस चाखैं ॥८॥

(क० बी० शब्द २)

दृष्टिकोण :—आत्म कल्याणार्थ पग बढ़ाते ही कितना विवेकी होना चाहिये—

(६) जीव सभी तरह के शब्दोच्चारण करता है, भावों को व्यक्त करता है; लेकिन यह सब क्रियायें शरीर में होती हैं, वह कभी कुछ कहता सुनता नहीं, नाटक में अनेक तरह के वेष धारण करने वाले पात्र की तरह वह स्वांग भी धारण करता है। नाट्य-शाला सदृश संसार के सभी दृश्य देखता हुआ और वेषी पात्रों की तरह व्यवहार करता हुआ भी वह अपनी विशुद्ध अवस्था को कभी नहीं भूलता है। वह निराकार अनंत ब्रह्म है अस्तु वह उसी के हित के रक्षार्थ प्रयत्नशील रहता है।

(७) अकर्त्ता और अशरीरी होते हुए भी सभी कर्म और कर्मफलों में अपनी ही शक्ति और कर्म का ज्ञान कर वह अकर्तृत्वपने को धारण करता है जिसका विवेचन अकथनीय है, अर्थात् कर्ता और भोक्ता होता हुआ भी वह अकर्तृत्व भाव को धारण कर एक विचित्र अवस्था को प्राप्त होता है। सत्पौरुष और आत्मस्वभाव यही है कि शरीर के सहयोग से ही इस शरीर से निवृत्त होकर अमरत्व प्राप्त करे।

(८) विवेकी अपनी आत्मा में समरसता को धारण कर अशरीरी और निर्विकार अवस्था के सौख्यामृत का पान करता हुआ, युग-युग तक अमर रहने वाले स्वपद को प्राप्त होता है। राम सुधा यह अमरत्व पाने के लिये उपयोगी है। जिसने आत्मा की व्यापकता और अमरत्व का सुधामृत आस्वादन किया है, वह भला इससे कब और कैसे प्रथक हो सकता है!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् वह निश्चय ही अमरत्व को प्राप्त होता है ।

(१०) अभिमान

संतो देखत जग बौराना ।
सांच कहौं तो मारन धावे झूठे जग पतियाना ॥१॥
नेमी देखा धर्मी देखा, प्रात कर असनाना ।
आतम मार पषानहिं पूजैं, उनमें किछुउ न ज्ञाना ॥२॥
बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़ैं कितेब कुराना ।
कै मुरीद तदवीर बतावैं उनमें उहै जो ज्ञाना ॥३॥
आसन मारि डिंभ धरि बैंठे, मन महं बहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गरव भुलाना ॥४॥
टोपी पहिरे माला पहिरे, छाप तिलक अनुमाना ।
साखी शब्दै गावत भूले, आतम खबरि न जाना ॥५॥
हिन्दू कहै मोहि राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना ।
आपस में दोऊ लरि-लरि मूये, मर्म न काहू जाना ॥६॥
घर-घर मंतर देत फिरतु है, महिमा के अभिमाना ।
गुरु सहित शिष्य सब बूड़े अंत काल पछिताना ॥७॥
कहंहिं कबीर सुनौ हो संतो, ई सब भर्म भुलाना ।
केतिक कहौं कहा नहिं मानै, सहजै सहज समाना ॥८॥
(क० बी० शब्द ४)

दृष्टिकोण :—धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्ड का वर्णन करते हुए संत कबीर लोगों के पागलपन की ओर संकेत करते हैं । सजीव प्राणियों को किस तरह बहकाते हैं और मूर्तिपूजा द्वारा जड़ पदार्थ की प्रतिष्ठा करते हैं, यह कैसी भूल है !

अर्थ :—(१) ऐ संत पुरुषों ! यह संसार सत्य वक्ताओं का विश्वास नहीं करता है, वरन् उन्हें मारने दौड़ता है और झूठे का विश्वास करता है, ऐसी अज्ञानता से पूर्ण बावला मानव समाज संसार में सर्वत्र दृष्टि गोचर होता है ।

(२) धर्मात्मा एवं यम नियम पालन करने वाले भी देखे हैं, जो प्रातः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल स्नान करते हैं और जड़ मूर्ति के समक्ष बड़ा भक्ति भाव प्रदर्शित करते हैं। उनमें धर्मात्मा होने का प्रधान गुण करुणा का अभाव होता है। इस तरह वे अज्ञानी क्रोध लोभ अहंकार और माया की प्रधानता के कारण स्वयं अपनी आत्मा का हनन करते हैं।

(३) बहुत से पीर औलिया भी देखे जाते हैं कि जो कुरान का अध्ययन करते हैं, दूसरों को समझाते हैं। वह मुरीद भी बनाते हैं लेकिन स्वयं उस धर्माचरण से बहुत दूर हैं, जिसकी शिक्षा वे दूसरों को देते हैं।

(४) अनेकों महात्मा बन कर बड़ी भद्रता और सरलता प्रगट करते हुए आसन जमा कर ध्यान करते हैं। उनके मन में बड़ा अहंकार भरा हुआ है। वह भी पितृपूजा व मूर्तिपूजा को धर्म मानते हैं एवं तीर्थ यात्रादि को धर्म का कारण मानकर उसी के अहंकार में मग्न हैं और यथार्थता से दूर हैं।

(५) कबीर की मान्यता करने वाले बड़े-बड़े विद्वान भी माला और टोपी धारण किये हैं, कोई तिलक और छाप लगाकर ही धार्मिक होने का अनुमान कर लेते हैं। ऐसे धर्मबन्धु भी कबीर की साखी शब्दों का गान करते हुए भ्रम में पड़े हैं। वे भी आत्मज्ञान से शून्य हैं। अतः सुमार्ग पर नहीं हैं।

(६) धर्म के मर्म को न जानने के कारण हिन्दू अपने भगवान राम को महत्व देते हैं और मुसलमान रहीम या अल्लाह का बखान करते हैं। यही व्यक्ति किन्ही तुच्छ मतभेदों को लेकर धर्म के नाम पर आपस में कट मर जाते हैं, यह कैसी अज्ञानता है, जो धर्म की आड़ में पक्षपात का कारण बनती है।

(७) महत्वकांक्षी विद्वान और गुरुजन घर-घर जाकर लोगों को मंत्र देते फिरते हैं। वह भी सत्य की पहचान नहीं कर पाए हैं इसलिये वे गुरु और उनके शिष्य दोनों ही इस भव सागर में गोते लगाते हैं, और अंत में अपने कृत्यों पर दुःखी होते हैं।

(८) संत कबीर उपर्युक्त मिथ्या मान्यताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जहाँ भी दृष्टि डालिये लोग धर्म के नाम पर आडम्बर और भ्रम में पड़े हैं। उन्हें कितना भी समझाया जाय कि निष्कपट भाव से सर्वव्यापी इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा को महत्व दीजिये, लेकिन उन्हें इस सत्य पर विश्वास ही नहीं होता है कि सर्वत्र इस आत्मा का ही व्यापक रूप है जिसे समझना आवश्यक है।

भावार्थ—जिस धर्म के नाम पर ढकोसला और परस्पर का द्वेष अंकुरित होता है उसे धर्म कैसे कहा जा सकता है ? यह तो अंधविश्वास या पागलपन है क्योंकि उन्हें आत्मा के व्यापक रूप की सुधि ही नहीं है। राम और रहीम नाम से भेद कर जीव की उत्कृष्टता में पक्षपात और मत मतांतर का पोषण करते हैं यही तो संसार का बावलापन है। जीव मात्र में परस्पर द्वेष और विरोध यह सिद्ध करता है कि अधिकांश विद्वान, पीर, औलिया और साधु-संत भी आत्मज्ञान से शून्य हैं।

(११) इंद्रियनिग्रह

संतो घर में झगरा भारी।
राति दिवस मिलि उठि उठि लागे,
पाँच ढोटा एक नारी ॥१॥
न्यारो न्यारो भोजन चाहैं, पाँचौ अधिक सवादी।
कोई काहु का हटा न मानें, आपुहिं आप मुरादी ॥२॥
दुर्मति केर दुहागिन मेटै ढोटहिं चाप चपेरे।
कहति कबीर सोई जन मेरौ, जो घर की रारि निवेरे ॥३॥

(क० बी० शब्द ३)

दृष्टिकोण :—इस शरीर में अपनत्व के कारण विविध इच्छाएँ पाँचों इन्द्रियों के स्वाद व पोषण हेतु अनेकों दुःख (यातनाएँ) दिलाती हैं। पाँचों इन्द्रियों की वासनाएँ स्वतंत्र हैं। स्पर्श द्वारा यह कोमलांगी कामिनी से तृप्ति चाहता है, रसना द्वारा षट् रस के सुस्वादु भोजन की इच्छा रखता है। नासिका सुगंध के लिये लालायित रहती है। आँखों को सुन्दर स्वरूप, रंग और वेष भूषा चाहिये। कर्ण-प्रिय सुन्दर शब्द झंकार और गीत वादित्रादि के लिये पाँचवी इन्द्रिय उत्सुक रहती है। इस तरह इस घर में निरन्तर एक खींचतान या व्यवधान बना रहता है। पाँचों इन्द्रिय की वासनाओं को वश में करके जो इस झगड़े से पृथक हो जाता है, वही कल्याण-मार्ग का पथिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और प्रभु का सच्चा भक्त है।

अर्थ :—(१) ऐ संत पुरुष ! इस शरीर को अपनाने से रात-दिन अनेकों कष्ट सहने पड़ते हैं। इच्छा या वासना रूपी स्त्री ही इन पाँचों इन्द्रियों के पोषण रूप में विविध दण्डों का कारण है। इस संसार के समस्त दुःख और कार्यशीलता के लिये इन्हीं पाँचों इन्द्रियों का स्वाद ही मूल कारण है।

(२) ये पाँचों इन्द्रियाँ एक से एक अधिक प्रबल और स्वाद चाहने वाली हैं और अपने विभिन्न विषयों के कारण विविध इच्छाओं की जननी हैं। प्रत्येक इन्द्रिय स्वयं प्रमुख है। कोई दूसरे के आश्रित या दबाव में नहीं है।

(३) जो व्यक्ति इच्छा के कारण उत्पन्न हुई दुर्मति को वश में कर दुःखद विषयाग्नि में झुलसने से बचना चाहता है, उसे इन पाँचों इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना चाहिये। शरीर में प्रधान इन पाँचों इन्द्रियों की झंझट से जो बच सकता है वही कल्याणमार्ग पर चल कर कबीर का अर्थात् प्रभु का स्नेही बन सकता है।

(१२) माया-भ्रम

संतो अचरज एक भौ भारी, कहौं तौ को पतियाई।
एकै पुरुष एक है नारी, ताकर करहु विचारा।
एकै अंड सकल चौरासी भरम भुला संसारा ॥१॥
एकै नारी जाल पसारा जग में भया अन्देशा।
खोजत खोजत अंत न पाया, ब्रह्मा विष्णु महेशा ॥२॥
नाग फांस लिए घट भीतर, मूसिनि सब जग झारी।
ज्ञान खड़ग बिनु सब जग जूझै पकरि न कोई पाई ॥३॥
आपै मूल फूल फुलवारी आपुहि चुनि चुनि खाई।
कहँहि कबीर तेई जन उबरे, जेहि गुरु लिया जगाई ॥४॥

(क० बी० शब्द ५)

दृष्टिकोण :—संसार में दो ही प्रधान तत्वों को मानते हुए कबीर ने जीव को ही अपने-अपने कर्मानुसार चौरासी लाख योनियों में भटकता माना है। कर्म और कर्मफल से निवृत्ति के लिये ज्ञान को ही प्रधानता दी है जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्संग द्वारा प्राप्त होता है।

(१) यह एक आश्चर्य जनक कथन है कि इस सृष्टि में जीव और माया यही दो प्रधान तत्व हैं जिन्हें समझना उपयोगी है। इस कथन पर शायद ही कोई विश्वास करता है। संसार में व्याप्त इन चौरासी लाख योनियों में इस जीव के भटकने का मूल कारण एक ही है जिसे भ्रम या मिथ्यात्व कह सकते हैं।

(२) इस माया के स्वरूप का विस्तार इतना फैला हुआ है कि सभी उसकी लपेट में आ गए हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूपी यह त्रिगुणात्मक शक्तिमय संसारी ब्रह्म है, इस माया जाल से छूटने का बहुत प्रयत्न करने पर भी वे उसका आदि अंत नहीं पा सके हैं, तब साधारण जीव तो उससे भय-भीत हैं ही।

(३) प्रत्येक जीव में माया अपना नाग पाश फैलाए हुए है। इस कारण से वे ज्ञान हीन होकर भिखारी बन गये हैं, अर्थात् त्रैलोक्य पूज्य यह ब्रह्म अज्ञान के कारण माया के बंधन में विवश हो संसार में जूझ रहा है। इस दुःखद मूल तत्व को नष्ट करने के लिये सभी क्षीणबुद्धि प्राणी प्रयत्नशील हैं; लेकिन ज्ञान रूपी तेज तलवार के न होने से सभी को हार खानी पड़ती है।

(४) इस सृष्टि के फूल और शूलों का मूल कारण स्वयं यह जीव है जो अपने बोये हुए बगीचे को चुमनेवाले काँटों में दुःख और वासनादि के फूलने में सुख मानता हुआ सुख दुःख भोगता है। इस संसार के दुःखों से छूटने में वही समर्थ होता है जो सद्गुरु के उपदेशों द्वारा मोह माया के नशे से जाग्रत होकर आत्म कल्याण के मार्ग पर चल पड़ता है।

(१३)

संतो अचरज एक भौ भारी,
पुत्र घईल महतारी।
पिता के संगहिं भई बावरी, कन्या रहलि कुंवारी।
खसमहिं छाँड़ि ससुर संग गौनी सो किन लेहु विचारी ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाई के संग सासुर गौनी सासुहिं सावत दीन्हा ।
ननद भौजि परपंच रच्यों है मोर नाम कहि लीन्हा ॥२॥
समधी के संग नाहीं आई सहज भई घरवारी ।
कहँहि कबीर सुनों हो संतो पुरुष जन्म भो नारी ॥३॥

(क० बी० शब्द ६)

दृष्टिकोण :—जीव अपनी संसार दशा में सहज ही माया मोह में लिप्त पाया जाता है। पुरुषार्थ द्वारा अपने अशुद्ध स्वरूप को शुद्ध करने का दृष्टिकोण न होने के कारण यह प्रपंच में फँसा हुआ अनंत जन्म धारण करता है, इस लिये यह एक अबला नारी की तरह शक्ति रहित हुआ है।

यहाँ पर माया और लक्ष्मी को क्रमशः अदृश्य और दृश्यमान तत्व माना गया है जो कि इस जीव की जननी है और मोहिनी शक्ति स्त्री भी है।

अर्थ :—(१) अदृश्य तत्व माया के कारण दृश्यमान हुआ यह जीव संसार में चराचर रूप में दृष्टिगोचर है। वह लक्ष्मी और कुटुम्ब (माया) के साथ ही फँसा हुआ भी है इस अपेक्षा से पुत्र (जीव) माया से उत्पन्न हुआ और उसी में मोहित है अथवा स्त्रीयोनि से जन्म पाकर उसी स्त्री (जननी) जाति में मोह के कारण लुभाया हुआ है।

सृष्टि के प्राणियों का प्रतिपालक विष्णु इसका पिता है। यह लक्ष्मी माया का ही दृश्यमान और जगत व्यापी रूप है जो स्वतंत्र होने के कारण अविवाहिता है। वह अपने सांसारिक रूप में इस जीव के पक्ष में पड़ी है अस्तु इसकी स्त्री है जो कि अपने पिता (विष्णु) के साथ मोहित हो गई है। यही नहीं उसने खसम (जीव) का साथ छोड़ स्वर्ग निवासी विष्णु का साथ भी कर लिया है जो विचारणीय है। (हमारी हिन्दू मान्यता के अनुसार लक्ष्मी विष्णु की सहचरी है।)

(२) यही लक्ष्मी अपने अदृश्य रूप 'माया' में अपने भाई (जीव) के साथ इस सृष्टि (ससुराल) में आई है (क्योंकि जीव और माया का जन्मना सम्बन्ध है।) यहाँ उसकी अपनी सासु (मोह, लक्ष्मी) के साथ सौतपना प्रकट है, क्योंकि यह दोनों एक ही तत्व के दो विभिन्न रूप हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्व-दृष्टि से जीव इस प्रपंच (शरीर) के द्वारा ही दृश्यमान है जो कि माया (ननद) और मोह (भौजि) का रचा हुआ है। लेकिन इसके लिये दोषी इस जीव को ही ठहराया गया है।

(३) यह चैतन्य अपने ब्रह्म (समाधि) रूप शुद्ध अवस्था में माया, मोह से पृथक है। लेकिन यह सृष्टि उसकी अशुद्ध अवस्था का गृह है। अस्तु इसके साथ मोह माया आदि घरवार का समागम है।

संत कबीर कहते हैं कि पुरुषार्थ बिना यह चैतन्य (ब्रह्म) अपने निज स्वरूप ब्रह्मत्व को प्राप्त नहीं होता है। अपनी वर्तमान दशा में माया से संबंध के कारण वह अपूर्ण है अर्थात् नारी की तरह विवश है, निर्बल है अस्तु पराधीन है।

इस पद में जीव और माया के स्वरूप को विभिन्न दृष्टियों से समझाते हुए संसारावस्था की आश्चर्य जनक स्थिति बतलाई गई है। अपने शुद्ध निजस्वरूप की प्राप्ति हेतु माया से पृथक होने के लिये योग्य पुरुष प्रयत्नशील रहें।

(१४)

परमात्मा कैसा है ? जो जो कर्ता है वह परमात्मा कैसे ? क्योंकि माया रहित जीव क्रिया शून्य है।

संतो आवैं जाय सो माया।
है प्रतिपाल काल नहिं वाके, ना कहुं गया न आया ॥१॥
क्या मकसूद मच्छ कछ होना, शंखासुर न सहारा।
है दयाल द्रोह नहिं वाके कहहु कौन को मारा ॥२॥
वे कर्ता नहिं बाराह कहाये, धरणि धरो नहिं भारा।
ई सब काम साहेब के नाहीं, झूठ कहै संसारा ॥३॥
खंभ फोरि जो बाहर होई, ताहि पतीजै सब कोई।
हिरणाकुश नख वौइ बिदारो, सो कर्ता नहिं होई ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बावन रूप न बलि हो जावें जो जाचें सो माया।
बिना विवेक सकल जग भरमे माया जग भर्माया ॥५॥

(क० बी० शब्द ८)

दृष्टिकोण :—दृश्यमान सभी जीव माया-सहित हैं। यदि वह क्रियाशील हैं तो परमात्मा नहीं है ; क्योंकि परमात्मा तो विशेष गुण सहित आत्मा है, वह आवागमन और कर्त्तापने से रहित है। वह निराकार, निर्विकार, स्वयंबुद्ध और कर्तृत्व रहित है।

अर्थ :—(१) जो आवागमन सहित है अर्थात् जिसे जन्म-मरण जैसा रोग लगा हुआ है, वह माया सहित होने से परमात्मा नहीं है। जो ईश्वर है वह आवागमन रहित है। उसे कहीं आने जाने की आवश्यकता नहीं है।

(२) वह अत्यंत दयालु है। उसका किसी से द्रोह नहीं है अस्तु शंखासुर का वध करने वाला वह नहीं है। उसका कोई प्रयोजन या इच्छा मच्छ-कच्छ वाराह आदि अनेकों रूप धारण करने की नहीं है। क्योंकि प्रभु ने इच्छा और वासनाओं पर ही तो विजय पाई है।

(३) न तो वह कर्त्ता है और न वह वाराह रूप धारण कर अवतरित हुए हैं, न इस पृथ्वी का बोझ ही वह सँभाले हुए हैं। संसारी व्यक्ति भगवान के द्वारा इन कार्यों का कथन करते हुए सत्य से बहुत दूर हैं क्योंकि दृश्यमान जीव सभी माया से पूर्ण हैं।

(४) यदि वह कर्त्ता है तो उसे माया की आवश्यकता है। सब मानते हैं कि जो नरसिंह रूप में खम्भा फोड़कर बाहर आए और हिरण्यकशिपु के पेट को अपने नाखूनों से फाड़ डाला, उसका संहार किया, वही ईश्वर है। यह एक भ्रम और मिथ्या मान्यता है।

(५) वह बावन रूप धारण कर न तो बलि राजा को बाँधने आए और न उनसे याचना ही की क्योंकि सर्वशक्तिमान को याचना की क्या आवश्यकता है? यह सब माया के विभिन्न रूप लौकिक आत्मा के हैं। इस विवेक पूर्ण विषय को न जानकर लोग भ्रम में पड़े हैं। तात्पर्य यह है कि इन सभी विभू-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तियों एवं अवतारों से भी वह अखण्ड परमात्मा परे है ।

(१५)

परशुराम क्षत्री नहिं मारे, ई छल माया कीन्हा ।
सतगुरु भक्ति भेद नहिं जाने जीवहिं मिथ्या दीन्हा ॥१॥
सिरजनहार न व्याही सीता, जल पषान नहिं बंधा ।
वे रघुनाथ एक के सुमिरे जो सुमिरे सो अंधा ॥२॥
गोपी ग्वाल न गोकुल आया, कर्ते कंस न मारा ।
है मेहरवान सबही को साहब, ना जीता ना हारा ॥३॥
बे कर्त्ता नहिं बौद्ध कहाए, नहीं असुर संहारा ।
ज्ञान हीन कर्त्ता के भरमें माया जग भरमाया ॥४॥
वे कर्त्ता नहीं भए कलंकी, नाहिं कलिगहिं मारा ।
ई छल बल सब माये कीन्हा, जत्त सत सब टारा ॥५॥
दस अवतार ईश्वरी माया कर्ता कै जिन पूजा ।
कहहिं कबीर, सुनो हो संतो उपजे खपै सो दूजा ॥६॥

(क० बी० शब्द ८)

अर्थः—(१) क्षत्रियों पर क्षुभित होकर परशुराम ने क्षत्रियों को मारकर कई जन्म तक बदला लिया, ऐसा कथन शास्त्रों में प्रसिद्ध है । लेकिन यह सब माया के ही क्रियात्मक रूप हैं । जीव तो अकर्ता है । सतगुरु की कृपा न होने के कारण लोगों ने जीव के ऊपर यह मिथ्या आरोप लगाया है जो उनकी अज्ञानता है । उन्हें माया से पृथक शुद्ध चैतन्य तत्व का भेद ज्ञात नहीं है ।

(२) जो 'राम' परमात्म-स्वरूप को प्राप्त हुआ है वह सीता जी का पति दैहिक रूप से होते हुए भी उसका मात्र पति नहीं, वह तो जगत्पति हुआ और वह उस शरीर तथा संसार से परे है । अर्थात् जीव का अन्य जीवों के साथ साम्य का सम्बन्ध है । अन्य कौटुम्बिक संबंध तो क्षणिक हैं जो कि उसके मायावीरूप हैं । लंका जाने के लिये राम ने पत्थर डालकर पुल बनाया वह सब राम की निज शक्ति नहीं है वह तो शरीर की क्रिया हुई । विशुद्ध एवं चिदानन्द स्वरूप "राम" है ऐसा समझकर आत्म तत्व की भक्ति करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उचित है। शेष उसकी दासता है या अन्ध विश्वास है जो हम भक्तों के लिये श्रेयस्कर नहीं।

(३) ग्वाल बालों के साथ गोकुल-विहारी-कृष्ण अपनी वंशी के स्वर में सबके मन को मुग्ध करते थे। वे बाल-लीला द्वारा कंस के संहारक हुए यह सब माया का खेल था। वह तो योगी और निष्काम कर्म के उपदेष्टा जीवन्मुक्त थे। कर्म और उसके बंधन से मुक्त होने का वैज्ञानिक विवेचन जो उन्होंने गीता में किया वह अनेकों को जग से पार करने वाला है। वे युद्धों में भी गये और उन्होंने स्वयं युद्ध भी किया लेकिन उसकी हार-जीत से भिन्न स्वयंबुद्ध दयालु और सब की रक्षा करने वाले बनकर जगत्पूज्य हुए और परम पद पाया।

(४) बुद्ध कहलाने की सार्थकता उनके स्वयं बुद्ध होने के कारण है न कि असुरों के संहार के कारण। अज्ञानी पुरुषों की दृष्टि चैतन्यतत्व की ओर नहीं जाती है वह तो जीव के बाह्य कर्म काण्ड में ही उस परमात्मा का भ्रम कर बैठते हैं क्योंकि माया का इतना सूक्ष्म विस्तार है कि मनुष्य जीव की यथार्थता से परिचित ही नहीं हो पाता है।

(५) कलिंग-विजेता अशोक महान् युद्ध में नर-संहार करने से कलंकी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह कर्तृत्व के अभिमान से रहित था। सभी छल-बल का प्रयोग माया कृत है। शरीर से भिन्न चैतन्य तत्व, जड़ शरीर की क्रिया में नहीं है। मनुष्य की यह भ्रम बुद्धि ही उसको बताती है कि सर्व लौकिक क्रिया मेरे अधीन है। इसी मिथ्याबुद्धि से वह सत्य एवं शरीर के विवेक से शून्य हो जाता है।

(६) भगवान के दस अवतार भी माया के भ्रमात्मक रूप हैं। उसके कर्त्ता-पन को पूज्यता देना अनुचित है। संत कबीर समझाते हैं कि जो पदार्थ उत्पत्ति और विनाश के लक्षणों वाला है वह माया है जड़ है; लेकिन शुद्ध चैतन्य तत्व जो अकर्त्ता परमात्मशक्ति सहित है ईश्वर कहलाने की क्षमता रखता है वही अविनाशी पूजा व श्रद्धा योग्य एवं ज्ञातव्य है। शरीर से उसकी भिन्नता का अनुभव होना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसारी माया से सभी दुःखी और क्षुब्ध हैं अस्तु शांति प्राप्त करने का उपाय करना चाहिये।

(१६)

अगिन जु लागी नीर में, कंदू जलिया झारि।
उतर दखिन के पंडिता, रहे विचारि विचारि ॥१॥
गुरु दाझा चेला जला, विरहा लागी आगि।
तिनका बपुरा ऊबरया, गलि पूरे के लागि ॥२॥
आहेरी दवलाइयाँ, मिरग पुकारे रोय।
जा वन में क्रीड़ा करी, दाझत है वन सोय ॥३॥
पाणी माहे परजली, भई अप्रबल आगि।
बहती सरिता रह गई, मच्छ रहे जल त्यागि ॥४॥
समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोयला भई।
देखि कबीरा जाग मच्छी रुखों चढ़ि गई ॥५॥

दृष्टि कोण :—इस पद में संत कबीर ने संसार-व्याप्त मानवता के घातक तत्वों का विवेचन किया है जिसके निवारण हेतु बड़े-बड़े ज्ञानी व कर्मकांडी पंडित असफल हुए हैं। मिथ्या बुद्धि इस संसार में अहंकार के कारण ही विस्तृत है। अस्तु निरभिमानी व्यक्ति ही सफलता प्राप्त कर सकता है। कोई वेष अथवा ज्ञान मात्र इस प्राणी का कल्याण करने को समर्थ नहीं, जब तक कि उपयोग (लगाव, आचरण) उस ओर न होवे !

अर्थ :—(१) यह जीव सुख शांति मूलक समत्व-रस का भोगी है लेकिन उसके गुणों को दग्ध करने वाली विषयाग्नि और उसके पोषक कारण सर्वत्र व्याप्त हैं। इस अग्नि के सम्पर्क (झारि) में समत्व से अनभिज्ञ (कंदू) सभी प्राणी तो जलते ही हैं लेकिन जानकार विद्वान भी उससे वंचित नहीं हैं। ज्ञानी और कर्मकाण्डी पंडित भी विचारों और दिखावटीपन तक ही सीमित हैं अर्थात् वे भी चरित्र हीन हैं अस्तु वे भी इस अग्नि में जल रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) अस्तु इस मिथ्या भाव की अग्नि (सत्य के वियोग) से गुरु एवं शिष्य दोनों प्रभावित हैं। कोई भी शांति व सुख को प्राप्त नहीं है। इसमें सफलता प्राप्त करनेवाला कोई तुच्छ निरभिमानी सरल हृदय प्राणी (तिनका) ही संभवतः कर्म और उनके कारणों का क्षय करके बहता हुआ पूर्ण (पूरे, परमात्मा) का सामीप्य प्राप्त कर सकता है। जैसे बड़े-बड़े काठ और लक्कड़ धार में बह जाते हैं लेकिन तिनका उस प्रवाह तक न पहुँचने के कारण एकत्रित तृणसमूह में मिल जाता है।

(३) लोभी गुरुओं (आहेरी) ने जो अज्ञान भाव की आग लगा रक्खी है उसमें सुख-शांति का चिह्न भी नहीं, वहाँ तो चाह-दाह है। संसार-वन में विस्तृत सुख साधन तो मृग तृष्णा है जिसमें जल की आशा से वह प्राणी (मृग) शांति प्राप्ति हेतु दौड़ता हुआ व्यथित हो रहा है। जो संसार हमारे लिये क्रीड़ा स्थल है, जिसमें हम मनोरंजन के साधन जुटाकर सुख शांति की कल्पना करते हैं वही हमें जला रहा है। (विशेष) कारण यह कि इच्छाएँ पूरी होते हुए भी एक के बाद दूसरी अपनी नवीन परंपराओं को प्रतिक्षण जन्म देती रहती हैं। यह संसारी प्राणी अपनी अलौकिक और अन्य शक्ति की ओर देख ही नहीं पाता है क्योंकि वह इच्छाओं के मकड़जाल से कभी सुलझता ही नहीं, अस्तु सम्पन्न होते हुए भी सब व्यक्ति एक से दुःखी हैं।

(४) आश्चर्य है कि चरित्र-हीनता के कारण मानवीय सुख-शांति (पाणी) में प्रज्वलित यह विषयाग्नि अब अनिवारणीय हो गई है, अस्तु जो विद्वान इस समता रस के प्रवाह में टिक नहीं सकते हैं वह तो चरित्र हीनता (जल-त्यागि) के कारण तड़प रहे हैं और समता रस में अवगाहन करने वाला निर्मोही संसार दशा में भी सुखी है अर्थात् साम्य-रस पीने वाला निर्मोही विवेक पूर्वक आचरण करने के कारण प्रत्येक परिस्थितियों में समान है, अस्तु सुखी है।

(५) सावधान करते हुए संत कहते हैं कि हे सत्पुरुष ! देख भव-समुद्र में व्याप्त इस अग्नि में सम्पूर्ण प्राणी को समत्व रहित होकर अंधकार (कोयला) में पड़ा है। उठ, जाग्रत होकर देख कि तेरी लगन (सुरति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माया-मोह के फन्दे में संसार की चौरासी लक्ष योनियों (रूखों) में भटक रही है।

(१७)

दृष्टिकोण की अपेक्षा परस्पर विरुद्ध कथन सत्य होते हैं।

देखि देखि जिय अचरज होई, यह पद बूझै बिरला कोई।
धरती उलटि अकाशहि जाई, चींटी के मुख हस्ति समाई ॥१॥
बिन पवने जहाँ पर्वत उड़ै, जीव जंतु सब बिरछा बुडै।
सूखे सरवर उठे हिलोल, बिन जल चकवा करें किलोल ॥२॥
बैठा पंडित पढ़ै पुरान, बिन देखे का करै बखान।
कहँ कबीर जो पद को जान, सोई संत सदा परमान ॥३॥

(क० बी० शब्द १०१)

दृष्टिकोण :—इस पद में संत कबीरदास जी शास्त्रीय विद्वत्ता प्राप्त विद्वानों को चुनौती देते हैं। प्रत्येक वस्तु का विषय कथन अपेक्षा रखता हुआ अपने में विभिन्न विरोधी गुणों वाला है। इसको समझने वाले विरले संत होते हैं जो कि लेखक या वक्ता के दृष्टिकोण को भली-भाँति समझ सकें। इस पद में काल और कर्म की अपेक्षा से होने वाले विभिन्न विरोधी कथनों की सत्यता बतलाई गई है।

अर्थ :—(१) काया की दृष्टि से हाथी और चींटी में जमीन-आसमान का अंतर है। हाथी के पैरों की झपेट और पूँछ या सूँड की फुहार में चींटी कहीं की कहीं जा पड़ती है, लेकिन यह विशेष आश्चर्यकारी है कि वही चींटी इस विशालकाय हाथी की मृत्यु का कारण होती है। उसकी समस्त योग्यता और बल एक चींटी जैसे तुच्छ प्राणी के सम्मुख कुछ नहीं ठहरता। यह संभावना भी हाथी के कर्म और काल के आश्रित है। यदि किसी हाथी की सूँड में एक समय कोई चींटी प्रविष्ट हो जावे तो उसके काटने से वह विह्वल हो जाता है और कभी-कभी तड़प-तड़प कर प्राण दे देता है। धरती अपने भार के कारण हमेशा निम्नगामी है। सैकड़ों मन मिट्टी बालू पत्थर हवा और पानी के झोंके में बहता-बहता समुद्र का चौड़ा पाट गमनागमन करता है, इधर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उधर बढ़ता है, लेकिन समय आने पर वही ज़मीन ज्वालामुखी उद्गार के रूप में आकाश की ओर उठ जाती है, कुछ धुँआ और गैस बन कर वायु-मंडल में मिल जाती है और कई जगह स्खलित होकर दरार पड़ जाती है वहाँ का स्थान आकाश ले लेता है। इसी तरह अनेकों आकस्मिक घटनाएँ होती ही रहती हैं जिन्हें कोई टाल नहीं सकता है।

(२) बिना हवा या आँधी आए ही पर्वत विलीन हो जाता है, उसके स्थान पर समतल भूमि या जलाशय बन जाता है। इसे भूस्खलन कहते हैं और यह आजकल बहुधा दक्षिणी अमेरिका, जापान और यदा-कदा भारत के कुछ अंशों में हुआ ही करता है। जहाँ स्थल विलीन होकर झील बनी है वह इतनी गहरी है कि उसमें जीव-जंतु ही नहीं बड़े-बड़े वृक्ष भी डूब जाते हैं। पृथ्वी के इस परिवर्तन पर जहाँ सूखा तालाब या स्थल है वहाँ पर जल हिलकोरे मारता है तथा चकवा-चकवी आदि जल जीव भी उत्पन्न होकर कल्लोल करते हुए इधर-उधर केलि करने लगते हैं।

(३) शास्त्रों के कथन विवेचन में अपना पाण्डित्य प्रगट करने वाले विद्वान बहुधा देखने को मिलते हैं। अदृश्य तत्व इस आत्मा का विविध वर्णन भी करते हैं, लेकिन उस तत्व से परिचित संत बहुत कम देखने को मिलते हैं, अर्थात् वाणी द्वारा सभी कथन विवेचन करने की विद्वत्ता सरल है और स्वानुभव द्वारा आत्म-पद परिचय और चिंतन बहुत कठिन है। संत पुरुष वे ही हैं जो ज्ञान के साथ ही सदाचरण युक्त होवें।

(१८)

सृष्टि का मूल ईश्वर है तो क्या वह इसका कर्त्ता है ? कर्त्ता होकर भी कर्त्तापन के अभिमान से रहित होने से अकर्त्ता बना हुआ है।

जो पे बीज रूप भगवान,
तो पंडित कहा पूछौं आन ! ॥१॥
कहँ मन कहँ बुधि कहँ हंकार,
सत रज तम गुण तीन प्रकार ! ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विष अमृत फल फलैं अनेका,
बोधा वेद कहै तरवे का ! ॥३॥
कहहिं कबीर ते मैं क्या जान,
कौ धौं छूटल को अरुझान ! ॥४॥
(क० बी० शब्द ६७)

दृष्टिकोण :—संत कबीर ऐसी मान्यता का खंडन करते हैं कि यह सृष्टि भगवान की लीला है अथवा ईश्वर इस सृष्टि का कर्त्ता-धर्त्ता है। संसार की विविधताएँ इसकी पुष्टि नहीं करती हैं कि इसका कर्त्ता कोई शुद्ध, नित्य, चिदानन्द, चैतन्य, निराकार और निर्विकार परमात्मा हो सकता है ; क्योंकि माया रहित संज्ञा परमात्मा की है ऐसा सभी मानते हैं। मान लीजिये कि यदि यह सब इसी प्रकार का बना है तो फिर परमपद प्राप्त करने के लिये व्यक्तिगत जीवों को पुरुषार्थ करने की आवश्यकता क्यों है ? इस सब की चिन्ता तो उसी को होना चाहिये। इस हेतु शास्त्र, न्याय आदि की रचना और धर्म, अधर्म की व्याख्या व्यर्थ हो जाती है।

अर्थ :—(१) यदि इस सृष्टि का मूल कारण ईश्वर है अथवा सृष्टि-कर्त्ता एक ईश्वर ही है, तब पूछने की कोई दूसरी बात रहती ही नहीं ; क्योंकि सभी एक और उस एक ईश्वर के अधीन हैं।

(सृष्टि का नियम है कि गेहूँ से गेहूँ, चना से चना और विभिन्न प्राणधारी अपने अनुरूप ही अन्य प्राणियों को पैदा करने वाले हैं। तब परमात्मा जो शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य और निर्विकारी तत्व है के द्वारा यह बहुरूपिया सृष्टि की रचना संभव कैसे हुई ?)

(२) इस जीव में मन बुद्धि और अहंकार का त्रिविध विकल्प कहाँ से आया ? सतोगुण रजोगुण और तमोगुण पूरित यह सृष्टि त्रिगुणात्मक कैसे रची गई ? क्योंकि जिसके अधिकार में कोई वस्तु नहीं है वह दूसरों को वह वस्तु कहाँ से देगा ?

(३) प्रकृति में विषैले और अमृत तुल्य वस्तुओं के उत्पादन की क्षमता कहाँ से आई ? पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म, दुर्जन-सज्जन आदि भेद किसने और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कैसे बनाए। यह सब होते हुए उनसे छूट कर पार होने के लिये अथवा मुक्ति प्राप्त करने के लिये वेद-शास्त्र और बौद्ध-जैनादि धर्मों में यह सब विवेचन क्यों किया गया है? यह सभी शंकाएँ ईश्वर के सृष्टि कर्त्ता मानने में उत्पन्न होतो हैं।

(४) कबीरदास जी कहते हैं कि यह सृष्टि यदि भगवान की एक लीलामात्र है, तब यह तेरा और यह मेरा कहाँ से आया? मैं और तू नाम की पृथकता कैसे संभव हुई! फिर कौन इस संसार से निवृत्त होने की सोचे और कौन अपने आप को इसमें उलझा हुआ, बँधा हुआ अनुभव करे।

यदि सृष्टि कर्त्ता ईश्वर मान लिया जाता है तों सृष्टि की विविधता और जीवों का पुरुषार्थ कोई महत्व नहीं रखता। ज्ञान, सदाचरण और भक्ति अथवा पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म की कोई आवश्यकता नहीं। सृष्टि को उस आदि कर्त्ता की लीला और प्रलय को उस लीला का संकोच मानने वाले अन्य प्राणियों के बीच भेद-भाव क्यों रखते हैं? वे पुरुषार्थ द्वारा उद्यम और ज्ञान धन आदि प्राप्त करने का प्रयत्न क्यों करते हैं? इससे भगवान को सृष्टि-कर्त्ता मानने में अनेकों विरोध और शंकाएँ उत्पन्न होती हैं जिससे कथन की सत्यता में दूषण आता है। (लेखक अनेकांत मतों का समन्वय करता है।) यहाँ पर इतना समझ लेने में सभी मत पुष्ट हो जाते हैं कि परमात्मा के दो भेद हैं। प्रथम निराकार, निर्गुण, द्वितीय साकार और सगुण। प्रथम इस सृष्टि से परे चिदानन्द चैतन्य परम तत्व है वह कृत-कृत्य है। द्वितीय साकार तत्व सृष्टि के सभी प्राणीमात्र हैं जो कर्तृत्व सहित अपनी मलिनावस्था में हैं और यही प्रथम परमात्मा दशा का विकारी मूर्तमान रूप है जो सृष्टि का कारण और इसका कर्त्ता है। दोनों भिन्न-भिन्न होते हुए भी द्रव्य और गुणों की अपेक्षा एक सी शक्तिधारी हैं, लेकिन प्रत्यक्ष का यह भेद व्यक्तिगत प्राणियों के अपने स्वभाव और योग्यता पर निर्भर करता है। यही संसार या सृष्टि का कारण है जिससे मुक्ति पाने के लिये सभी ने अपने दृष्टिकोण धर्म-शास्त्रों के रूप में व्यक्त किये हैं। स्वपरिचय होने पर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य अथवा सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के समन्वय द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह जीव आत्मकल्याण की ओर उन्मुख होता है और अंत में इन सब विडम्बनाओं से परे स्वरूपी परम पद की प्राप्ति करता है। यह सब समझना जितना सरल है उसका आचरण उतना ही दुर्लभ या दुष्कर है।)

(१६) शरीर विवक्षा

जोगिया के नगर बसो यत कोय,
जो रे बसे सो जोगिया होय ॥१॥
ये जोगिया को उल्टा ज्ञान,
काला चोला नहिं वाके म्यान ॥२॥
प्रगट सो कंथा गुप्ताधारी,
तामें मूल सजीवन भारी ॥३॥
वो जोगिया की जुक्ति जो बूझे,
राम रमे तेहि त्रिभुवन सूझे ॥४॥
अमृत बेली छिन छिन पीवे,
कहै कबीर जोगी जुग जुग जीवे ॥५॥

(क० बी० शब्द ६६)

दृष्टिकोण :—यह दृश्यमान जीव माया और ब्रह्म का यौगिक रूप है। इस भेद को जानकर जो निज पर के विवेक पूर्वक आत्मा को कर्मबंधन से मुक्त करने की युक्ति पा लेता है वह चिदानन्द चैतन्य में व्याप्त अवर्णनीय सुख का रसा- स्वादन करता हुआ क्षण प्रति क्षण अपने शुद्ध स्वरूप अमरत्व की ओर बढ़ता रहता है। इसी कथन को संत कबीर ने बड़े आकर्षक ढंग से इस पद में कहा है।

अर्थ :—(१) इस सृष्टि में माया का विस्तार है। इसमें रुचि रखने वाला जीव दृश्यमान अनेकों यौगिक रूप धारण करता हुआ इस संसार में भटकता फिरता है। अस्तु इस यौगिक सृष्टि में लुब्ध होकर मत निवास कर।

(२) इस यौगिक रूप के कारण वह अज्ञान में फँसा हुआ है। कर्म-मल से मलिन इस चोले को ही अपना मान बैठा है, लेकिन यथार्थ में वह आवरण रहित चमचमाता हुआ तेज पुंज है ज्ञान का तीक्ष्ण खड्ग है।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) जिस तरह कोई साधु प्रत्यक्ष में एक वस्त्र मात्र लपेटे हुए रहता है लेकिन उस वस्त्र में छिपी हुई अधारी (कंधे में लटकाया जाने वाला दो मुँहा थैला) में भरी अपनी खाद्य सामग्री को किसी से बतलाता नहीं ताकि और संग्रह कर सके। इसी तरह यह प्राणी प्रत्यक्ष में एक शरीर मात्र (चोले) का आवरण धारण किये हुए है लेकिन उसमें व्याप्त वह जीव तथा कर्मों का अदृश्य समुदाय किसी को ज्ञात नहीं है। यह दोनों अदृश्य वस्तुएँ ही उसके भ्रमण में सहायक हैं। यथार्थतया देखने पर यह कर्म-समूह भी उस जीव के अच्छे बुरे भावों के कारण उसे घेरे हैं लेकिन वह जीव ही एक संजीवनी बूटी है, जिसका उपयोग विशुद्ध होने पर वह अमृतत्व को प्राप्त कर सकता है।

(४) इस यौगिक रूप का भेद जो ज्ञात कर लेता है अर्थात् इस ब्रह्म और माया से पृथकता का उपाय जो योगी ज्ञात कर लेता है वह अपने आनन्द स्रोत आत्माराम में ही रमण करने लगता है। वह माया को भवभ्रमण का कारण जान कर आत्मा में ही परमात्मा की धारणा कर त्रैलोक्य-ज्ञाता हो जाता है।

(५) ऐसा सम्यक्-ज्ञानी व्यक्ति चिदानन्द चैतन्य में लबालब भरे हुए अपने ज्ञानानन्द स्वरूप में लीन होकर, उत्तरोत्तर अमरत्व की साधना में सफलता पूर्वक बढ़ता रहता है। यही योग प्रशंसनीय है जो कि अमरत्व को प्राप्त करा देवे और यह जीव अपने यथार्थ रूप को प्राप्त कर अमर हो जावे। संत कबीर का ऐसा ही लक्ष्य है।

(२०) सद्भक्ति

इह विधि राम सौं ल्यो लाइ।
चरण पाषै निरतकर जिभ्या बिना गुण गाय ॥१॥
जहाँ स्वाति बूंद न सीप साइर सहजि मोती डोइ,
उन मोतियन में नीर पोयो, पवन अम्बर धोइ ॥२॥
जहाँ धरनि वरषै, गगन भीजें चन्द सूरज मेल।
दोइ मिले तहाँ जुडन लागे, करत हंसा केलि ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक विटप भीतर नदी चाली कनक कलस समाय।
पंच सुवटा आइ बैठे उदैं भई बनराइ।।४।।
जहाँ बिछुट्यो तहाँ लाग्यो नगन बैठो जाइ।
जन कबीर बटाउ वा जिनि मारग लियो चाइ।।५।।

दृष्टिकोण :—राम की भक्ति क्या है ? कबीर का यह राम जनकनन्दिनी का प्रिय, दशरथ-पुत्र नहीं है। यह संकेत जगत व्यापी आत्माराम की ओर है। इस राम का यशोगान करने के लिये जिह्वा की आवश्यकता नहीं। इसे रिझाने के लिये राग-भोग या नृत्यादि की आवश्यकता नहीं। यह दिखावे ही भक्ति नहीं, अपितु यथार्थ श्रद्धा और जीव मात्र के प्रति वात्सल्य जाग्रत करने के लिये सरलता एवं सत्याचरण का निर्देश है।

अर्थ :—(१) इस पद में राम को रिझाने के लिए, उनका कृपा पात्र बनने के लिये, जो उपाय बताया गया है वह इस तरह है। तुझे राम की मूर्ति बनाकर उसका गुणगान करने अथवा नृत्य करने की आवश्यकता नहीं है। तू स्वयं सत्य का ज्ञान कर उसी के आचरण में निमग्न हो। अथवा राम के आचरणों को अपने में स्थान देकर उसके आनन्द में मग्न हो जा। उनके गुणों में इतना आकर्षित हो कि वचनों से उसका वर्णन करने की आवश्यकता ही न रहे। अर्थात् यह सम्पूर्ण सृष्टि राममय है, तू अपने सम्पर्क में आने वाले सभी प्राणियों के गुणों में लगन कर, उनके दोषों से अनभिज्ञ हो, यही सच्ची भक्ति है।

(२) जिस तरह चातक या सीप, स्वाती के बूँद की आशा लगाए मुँह फाड़े उसकी प्रतीक्षा करता रहता है उस तरह तुझे आशा में निराश होने की आवश्यकता नहीं। सीप के मोती की भाँति अस्पष्ट नहीं अपितु सागर के जल की भाँति अगाध और असीम सहजानन्द तेरे अंदर व्याप्त है। इन राग और द्वेष विकारों से रहित अपने दोनों नेत्रों को ही अमूल्य मुक्ता मान।

इन निर्विकार मोतियों में वह हर्ष समाया हुआ है कि जिससे जीव और उसके भाव तथा शरीर और उसका कर्म दोनों घुल जावेंगे। अर्थात् तू संसार के अन्य जीवों के प्रति राग-द्वेष हटाकर यदि निर्विकार नेत्रों से दर्शन करेगा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यों गुणों का ग्राहक बन तू अपने आपको उज्ज्वल और निर्मल बनाएगा तो स्वयं आनन्द मग्न रहकर सुखी होगा।

(३) शरीर की सभी क्रियाएँ आत्मा की सरलता के हेतु उन्मुख होंगी। पाप-पुण्य आदि भावों का समन्वय करता हुआ वह प्राणी आत्मकल्याण में तत्पर होगा। लोक परलोक या आत्मा और शरीर का भाव संतुलित होकर एक मात्र आत्मा के शुद्ध स्वरूप का ही ध्यान रक्खो, जिस निजात्म स्वरूप में आनन्द मग्न होकर तू संसार की लीलाओं को भूल जाता है। अर्थात् संसार के मिथ्या प्रपंच को भूल कर एक मात्र ब्रह्म और उसके चिदानन्द, आनन्द-घन स्वरूप में मग्न हो जाता है।

(४) उक्त व्यक्ति जो साधना में अनुरक्त है उसके अंतः करण की निर्मलता क्षण-क्षण बढ़ती रहती है। पंचेन्द्रिय और उनके कर्म चंचलता रहित होकर स्थिर हो जाते हैं। इसके परिणाम-स्वरूप माया और कुटुम्ब आदि का मोह लुप्त हो जाता है और संसार में रहता हुआ भी जल से भिन्न कमलवत् निर्लिप्त और सदा प्रफुल्लित रहता है। किसी भी स्थिति में आतुर नहीं होता है।

(५) संत कबीर कहते हैं ऐसा श्रेष्ठ व्यक्ति धन्य है। वह जो इस शरीर से भी निस्पृह होकर, इससे विलग होते ही उस निराकुल, अनन्त सुखधाम परम पद को प्राप्त होता है। इस सुखद ज्ञानानन्द परम पद की जिसे चाह है, संसार में ऐसे व्यक्ति विरले ही मिलेंगे।

(२१)

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्है कोय,
जा सहजै साहब मिले सहज कहावै सोय।

दृष्टिकोण :—संत कबीर ने भावों की उस सरलता को सराहनीय कहा है, जो उस महानता का परिचय करा दे जिसके लिये संसार में सैकड़ों उपाय, कर्मकाण्ड, जप-तप और भजन-पूजन आदि का विधान हजारों ढंग से किया जा रहा है।

अर्थ :—सभी मतावलम्बी भगवत् भक्ति के लिये भावों की सरलता का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपदेश करते हैं। वह उस सरलता से परिचित नहीं है जो इस अनंत संसार के कण-कण में विद्यमान है। अर्थात् इस जगद्व्यापी चैतन्य तत्व की उन्हें खबर नहीं है। इसकी पहचान न होने से वह असंख्य देवी देवताओं और अनेकों कर्म-कांड की व्यवस्था को निर्देशित करते हैं।

लेकिन यथार्थ निर्मलता का कारण विश्व-मैत्री या चिद्उपासना है। हमारी यह सरलता तभी प्रशंसनीय हो सकती है, जब हमें इस चिदानन्द चैतन्य तत्व का सर्वत्र दर्शन हो सके अन्यथा हमारे सब प्रयास मिथ्या हैं।

(२२)

साधो, एक आपु जग मांही,
दूजा करम भरम है किरतम ज्यों दर्पण में छाँही ॥१॥
जल तरँग ज्यों जल ते उपजे, फिर जल माँहि रहाई,
काया झाँई पाँच तत्व की, विवशै कहाँ समाई ॥२॥
या विधि सदा देह गति सबकी, या विधि मनहिं विचारो,
आया होय न्याय करि न्यारो, परम तत्व निरवारो ॥३॥
सहजै रहो समाय सहज में ना कहिं आवो, न जावो,
धरो न ध्यान करो नहिं जप तप राम रहीम न गावो ॥४॥
तीरथ वरत सकल परित्यागो, शून्य खोर नहिं लावो,
यह धोखा जब समझ परे तब, पूजे काहि पुजावै ॥५॥
योग युगत में भरम न छूटे जब लग आप नहिं सूझै,
कहंकि कबीर सो सतगुरु पूरा, जो कोई समझै बूझै ॥६॥

दृष्टिकोण :—संसार में ज्ञातव्य एक मात्र जीव तत्व है। यदि ज्ञान और साधन के लिये कोई तत्व है तो वह एक मात्र जीव तत्व है। इस शरीर से भिन्न उस परम तत्व को सर्वत्र व्यापक जान निज पर में अभेद दृष्टि रखने से समता प्राप्त होती है। यह समत्व ही परम साधना या तप है। जब तक शरीर या परबुद्धि की मिथ्या दृष्टि नहीं हटती है तब तक कोई साधन या जप-तप करता रहे, उसका कोई मूल्य नहीं। यह सब उस समत्व का साधन बने तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो सराहनीय है अन्यथा सब कर्म काण्ड और व्यवहार एक भ्रम है।

अर्थ :—(१) जिस तरह दर्पण में उसके सम्मुख खड़े होने वाले व्यक्ति के सभी क्रिया कलाप प्रतिबिम्बित होते हैं उसी तरह इस संसार में माना जाने वाला कर्म नाम का तत्व अन्य कुछ नहीं जीव की ही क्रिया और विचारों का परिणाम है। यदि निश्चय पूर्वक विश्वास योग्य कोई तत्व है तो वह एक मात्र जीव तत्व है। वही श्रद्धा योग्य एक अद्वितीय परम तत्व है। जिसे माया के फन्दे में पड़कर प्रत्येक जीवधारी भूल रहा है।

(२) जिस तरह जल में उठती हुई लहरें देखने में पृथक होने पर भी उसी जल में विलीन हो जाती हैं, उसी तरह पंच तत्वों का पुतला यह शरीर जीव से पृथक होते ही पुनः पंच-तत्वमय दूसरी काया को धारण करता है। इस संसार में जीव और शरीर कभी बिछुड़ते नहीं। यदि बिछुड़ते हैं तो अपने अनजाने ही पुनः दूसरे रूप को प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् जीव और शरीर दोनों अपने गुण द्रव्य की अपेक्षा सत् पदार्थ हैं और एक दूसरे से भिन्न योग्यता वाले होते हुए भी इस सृष्टि में एकत्र रहते हैं।

(३) दृश्यमान सर्व जड़ चैतन्य के मिश्र रूप इस जीव का परिणमन सदैव इसी तरह होता रहता है, मन ही द्वारा इनका परस्पर सम्बन्ध है। यह जान कर यदि जीव का उद्धार करना है, अथवा इस परम तत्व को संसार-परिभ्रमण से निवृत्त कर निर्वाण की इच्छा है, तब जड़ और चैतन्य का भेद निश्चित कर न्याय पूर्वक चैतन्य तत्व की रक्षा का प्रयत्न करने से सफलता प्राप्त होगी।

(४) इस चैतन्य तत्व की रक्षा हेतु न तो राम, रहीम आदि महापुरुषों के नाम रटने की आवश्यकता है, न अन्य किसी तत्व का ध्यान, जप या तपस्या द्वारा शरीर को दुःखाने की आवश्यकता है। इस परम तत्व को प्राप्त करने हेतु कहीं आने-जाने की आवश्यकता भी नहीं है। यह तो अपने मन वचन और कार्यों की सरलता द्वारा सद्व्यवहार और आत्मोन्मुख होने पर ही प्राप्त हो सकता है। भावार्थ-काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के कारण यह मानव अपनी सरलता को छोड़ बैठा है। राग और द्वेष (पृथक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथक मान्यता के कारण) इसे भ्रम में डाले हुए हैं, अस्तु इन सबसे पृथक रह कर आत्म-कल्याण करने को इच्छुक व्यक्ति अपने आत्म तत्व की रक्षा का यत्न अपने मन वचन और क्रिया की सरलता और सद्व्यवहार द्वारा ही कर सकता है। इस तरह समत्व को प्राप्त होकर सर्वव्यापी सहज तत्व आत्मा के गुणों का चिंतन करता हुआ प्राणी मात्र में वात्सल्य भाव रखकर परम-पद को प्राप्त करता है।

(२३) स्वपरिचय

लाढ़ो मेंढुकी री ? तू तो पानी की है रानी।
कौआ तेरा भैया भतीजा चील लगे देवरानी,
बगुला तेरा छोटा देवर वाको देखि मुसकानी ॥१॥
अन्धे ने माणिक को पाया, अंगुली बिन सुई चलानी,
बिन ग्रीवा के माला पहिने, बिन जिह्वा की वानी ॥२॥
चार चिरइया मंगल गावै ठूँढा ताल बजावै,
सूथन पहिर गवैया नाचे, ऊँट बिसन पद गावैं ॥३॥
कहँहि कबीर सुनो भाई साधौ, यह पद है निर्वाणी,
जो इस पद की निन्दा करि हैं, उनको नरक निशानी ॥४॥

दृष्टिकोण :—इसमें संत कबीर ने संसारी प्राणियों की रुचि का वर्णन करते हुए जीव की योग्यता का निर्देश किया है। स्वभावतः जीव, शुद्ध, बुद्ध एवं स्वातंत्र्य-पद निर्वाण का अधिकारी है लेकिन उसकी रुचि पर लक्ष्य की ओर होने के कारण अपनी योग्यता और स्वपद का परिचय नहीं है। जीव इस शरीर के संयोग से ही अनेकों क्रियाएँ और योग्यता (अवस्था) को प्राप्त होता है। यथार्थ में वह अकर्ता है।

(१) प्रिय बंधुओ ! आप शांति और निर्मलता के पुंज होते हुए समता-रस के अधिकारी हैं। अर्थात् आपकी योग्यता में सुख शांति का वैभव भरा पड़ा है। लेकिन स्वार्थ-पोषण या एकान्तवाद का नाता जोड़ कर तूने देखा-देखी मायाचारी प्रकृति को अपना रक्खा है। इसलिये सांसारिक सुखों को सर्वस्व जान तूने अंधभक्ति को ही अपना रक्खा है। अर्थात् स्वार्थ-पोषण हेतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रचलित कुरूढ़ियाँ ही तुझे प्रिय और आनन्ददायक हैं।

(२) इस जड़ शरीर (अन्धे) ने अमूल्य आत्म रत्न को माया सूत्र में फँसा रक्खा है। यह आत्मा सक्रिय नहीं है (अंगुली बिन) फिर भी वह संबंधों को जोड़ता हुआ अवगुंठित हुआ है। अर्थात् इस शरीर में अपनत्व मानकर यह जीव निष्क्रिय होते हुये भी अनेकों जन्म सम्बन्धों को जोड़ने वाला हो गया है। माया जाल में मकड़ी की तरह फँस गया है। वह शरीरादि जड़ की क्रिया का कर्त्ता नहीं है, लेकिन कर्तृत्व बुद्धि के कारण यह अनिर्वचनीय जीव अनेकों जन्म जन्मांतरों में पड़ा चौरासी का फेरा (माला) कर रहा है। और यह जीव इसी शरीर के संस्कार से दीन वचन बोलता है या सभी तरह के शब्द करता है।

(३) इस अदृश्य जीव और दृश्यमान शरीर (माया) के संयोग से क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार (चार चिरैया) का बोलबाला है। अथवा मनुष्य, देव, पशु और नारकीय गतियाँ (चार चिरैया) इस जीव का स्वागत करते हैं। यह निष्क्रिय शरीर (ठूढा) जीव के विकारों के कारण ही सक्रिय है।

यह परलक्ष्य रखने वाला जीव (गवैया) राग और द्वेष (सूथन) के कारण भवभ्रमण (नाचे) कर रहा है। उच्चता का अभिमानी यह प्राणी (ऊँट) इन्द्रियाधीन व्यसनों की बड़ाई करता हुआ इस संसार में फँसा है।

(४) संत कबीर कहते हैं कि यह विचित्र पद निर्वाण का निर्देशक है। जो मनुष्य लक्षित जीव की योग्यता व रुचि जाग्रत कर परलक्ष्य का त्याग करेगा वह संसार से मुक्त हो जावेगा और अन्य नासमझ प्राणी संसार के दुःखों या नरकों में भटकते फिरेंगे। भावार्थ जीव को अपनी योग्यता को ज्ञात कर, पर लक्ष्य और कर्तृत्व का अभिमान छोड़ आत्म-कल्याण की ओर उन्मुख होना चाहिये।

(२४)

होरी के खिलारी ने कैसी मजा कर डारी,
भारी भरम की सारी फारी बरबस पकरि हमारी।
त्रिगुण तनी अंगिया की तोरी, शब्द कुमकुमा बोरी ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान गुलाल पड़यो नयनन में, गिर गई सब अँधियारी।
एकहि भाव विलास करत हैं, कौन पुरुष की नारी ॥२॥
नित नित देत है गारी, लोक लाज सब टारी।
मोह की बेसरि, कुमति के कंगना मान की वेदी उतारी ॥३॥
पूरण लखि मन भूलि गयो है, ऐसी न देखि धमारी।
साहिब कबीर परख रंग रंगिया, परखि के कीन्ही न्यारी ॥४॥

दृष्टिकोण :—इस पद में कबीर ने स्वावलम्बी होने पर ज्ञानी पुरुष की क्रिया कलाप और आनन्द का उद्‌घाटन किया है। आत्मा के स्वभाव का ज्ञान होने पर जीव अपनी क्रियाओं में अपने आप को आनन्दविभोर पाता है। सभी चिंताओं से मुक्त एकत्व भाव से वह सुख एवं शांति का अनुभव करता हुआ पूर्णता की ओर बढ़ता है।

अर्थ :—(१) अपनत्व का भाव होने पर ज्ञानी कुभाव, कषाय आदि की होली जला कर कैसा आनन्दमग्न होता है ? कर्मों से विवश इस जीव की भ्रमबुद्धि को जो सारी की तरह इसे हमेशा से लपेटे हुए हैं, हटाकर (सारी फारी) वह जीव के बंधन सत, रज, व तमोगुण का आवरण नष्ट करता है। ज्ञान की तल्लीनता में वह अपने आप को रंग लेता है। अर्थात् आत्मा ही परमात्मा है। ऐसा भाव होने पर वह मिथ्याबुद्धि हटाकर आत्मा के त्रिगुण रूप को नष्ट कर देता है। तब सभी बाह्य बंधन ढीले हो जाते हैं।

(२) ज्ञान की गम्भीरता, अज्ञान अंधकार को हटा देती है। समस्त पराश्रयता पर में अपनत्व मानने के कारण है। जीव स्वतंत्र, सर्वज्ञ व परमात्मा है। इस एकत्व भाव को प्राप्त होकर वह स्वभावोन्मुख होकर आनंदित रहता है।

(३) लोक प्रचलित प्रथाओं को दूर कर (धार्मिक क्रिया काण्ड से प्रथक) सदैव कुभावों को हटाने में लगा रहता है। (बेसरि) मोह के कारण धन-सम्पत्ति आदि में अपनत्व, कार्यों में कुमति के कारण लगी (कंगना की) बेड़ियाँ या असमर्थता और अभिमान के कारण अन्य जीवों में तुच्छता के कारण (बेंदो) को निकाल कर फैंक दिया, इससे वात्सल्य की वृद्धि हुई। (इस तरह संसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को बढ़ाने वाले सभी व्यवहार नष्ट हो गये हैं ।)

(४) समस्त-सृष्टि उस पूर्ण परमात्मा से पूरित है ऐसा जानकर मन के विकल्प हट गये और जीव में ज्ञान के कारण जो अल्हड़पन (धमारी) प्राप्त हुआ है, वह कभी देखने में नहीं आया है। आत्मा और परमात्मा का अभेद ज्ञातकर जो अनेकता का भ्रम था उसे दूर कर एक रंग में रंग गया हूँ अर्थात् सृष्टि में कोई वस्तु मात्र एक आत्मा के सिव उपादेय नहीं है ऐसा निश्चित होने पर विश्व-मैत्री के आनन्द में मग्न हो गया हूँ।

(२५)

मोपै रंग न डारो मैं तो दिनन की थोरी।
पिय देखन को घर से मैं निकरी, सास ननद की चोरी।
सखि अपने संग पकरि ले आई, करि मोसे बर जोरी ॥१॥
फाग को नाम सुनत डर लागे, काँपत तन सगरो री।
तनक छुवत छाती धरकत है, बहियाँ जिन पकरो री ॥२॥
चौवा चंदन अवरि अरगजा केसरि घोरि धरो री।
अबके फाग में खेलि न जानों पर के मैं खेलूँगी होरी ॥३॥
ऐसी कहि रंग में नहिं भीजी कोटि उपाव करो री।
कहँहि कबीर सुनो भाई साधो, तृष्णा रह गई कोरी ॥४॥

दृष्टिकोण :—यह सोचते-सोचते समय बीत जाता है कि वृद्धावस्था आने पर आत्म-कल्याण के लिये प्रयत्न करूँगा। दूसरों के समझाने से कुछ प्रारम्भ भी किया, तो वह धार्मिकता का कर्मकाण्ड और मंदिर मूर्तियों का बाहुल्य अपनी ओर खींच लेता है और इसी में फँस कर जन्म खो देता है। इन कार्यों से कोई कल्याण या आत्म-तुष्टि नहीं होती है और माया परिग्रह की इच्छाएँ ज्यों की त्यों बनी रहती हैं।

अर्थ :—मुझे शिक्षा की आवश्यकता नहीं हैं, क्योंकि अभी मेरी अवस्था संयमधारण के लिये छोटी है। यद्यपि हृदय में आत्मदर्शन (पिय) की अभिलाषा हुई और इस हेतु पूर्व प्रचलित रूढ़ियों (सास ननद) से बच कर (चोरी) मैंने प्रयत्न किया कि कुछ जानकारी प्राप्त करूँ, (घर से निकरी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेकिन माया (सखी) अपने तीव्र प्रभाव से मुझे आगे बढ़ने नहीं देती और जो प्रचलित भक्ति मार्ग है उसी ओर झुकना पड़ता है।

(२) धर्म के नाम से प्रचलित स्वेच्छाचार (फाग) की ओर से मेरा मन भयभीत है और माया के स्पर्श मात्र से मिलने वाले दुःखों का स्मरण कर चित्त दुःखी हो उठता है (छाती धरकत है)। यह आडम्बर और परिग्रह बढ़ाने (बढ़ियाँ) के लिये मेरी इच्छा नहीं होती है। भावार्थ—एक मुमुक्षु जो कि संसार को कर्म काण्ड और परिग्रह आदि को माया की जड़ और धर्म के दिखावटी कार्यों को आडम्बर जान इनसे बचना चाहता है, लेकिन त्याग मार्ग अपनाने में असमर्थ है, वह शरीर व इससे सम्बन्धित भोगों से बहुत डरता है, फिर भी इसका कुछ वश नहीं चलता है, विवश होकर वह प्रचलित रूढ़ियों में ही लगा रहता है जिससे आशा तृष्णा नहीं छूटती है।

(३) वह मुमुक्षु, त्याग का मार्ग अपनाने में विवश है अस्तु, लोक प्रचलित रूढियों के अनुसार पीताम्बर धारण कर चन्दन, चौवा, अबीर और केशर आदि सामग्री एकत्रित कर पूजा पाठ आदि में लगता है। वह सोचता है कि आत्म कल्याण का स्वतंत्र मार्ग (फाग) मैं कभी नहीं अपना सकता हूँ। भविष्य में मैं माया और कषाय आदि का त्याग (होरी) करूँगा। इसी तरह जीवन घटता जाता है।

(४) यों सोचते-सोचते आत्म-कल्याण का इच्छुक वह मुमुक्षु करोड़ों उपाय करने पर भी, यम, नियम आदि त्याग मार्ग की ओर (रंग में नहिं भींजी) प्रवृत्त नहीं होता है। संयम के बिना उसका चित्त माया से विलग नहीं होता है, अस्तु आशा तृष्णा का जाल ज्यों का त्यों रह जाता है। ऐसा संत कबीर समझाते हैं।

इस पद में मुमुक्षु को तृष्णा भरी नव यौवना माना गया है, जो कि ज्ञान प्राप्त करने पर भी माया और स्वेच्छाचरण से नहीं छूट पाया है। उसकी भावनाओं का चित्रण करते हुए समझाया है कि समय आने की प्रतीक्षा करते-करते अवस्था बीत जाती है और मुमुक्षु आशा तृष्णा के जाल से छूट-कर संयम नहीं धारण कर पाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२६) मानव जन्म एवं ज्ञान दुर्लभता

काया नगर की पोरी, मन खेलत होरी ।
यह नगरी में चेतन राजा, प्रेम की चांचर जोरी ।
बनिता वृत्ति लिये अपने संग, हिलमिल फाग रचो री ॥१॥
सुरति की बीना बाजन लागी निरति को डफ ठनको री ।
उठत तरंग छत्तीस रागिनी, अनहत की घनघोरी ॥२॥
ज्ञान गुलाल लियौ भरि झोरी क्षमा की केसर घोरी ।
पांच पचीस सखी संग आई, तिनकों रंग में बोरी ॥३॥
घूंघट खोलि खेलु सन्मुख होय, अपने पिय संग गोरी ।
कहंहि कबीर फेरि नहिं पैहौ ऐसा दांव बहोरी ॥४॥

दृष्टिकोण :—शरीर को कष्ट देकर अथवा प्राणायाम आदि हठयोग द्वाया मन को वश में करना असंभव है । साधुवेष या लौकिक क्रियाएँ आत्म-साधना के अंग नहीं, जब तक कि मिथ्यातत्व का पर्दा हटाकर आत्म-बोध न प्राप्त होवे । मानव जन्म में यह सुयोग भविष्य में प्राप्त नहीं होगा अस्तु इसी जन्म को सफल करो ।

अर्थ :—(१) यह मन शरीर-बुद्धि के कारण इस शरीर से सम्बन्धित तत्वों में प्रेम का स्वाँग करता है । इस शरीर (नगरी) में चैतन्य ही एक विशिष्ट तत्व है जो सर्वत्र प्रेम-व्यवहार प्रकट करता है । पराश्रयता के (वनितावृत्ति) कारण यह पर संयोग का लक्ष्य कर आत्म-सुख (फाग) का प्रयत्न करता है । अर्थात् स्वभाव से परिचित न होने के कारण इसका सुख शांति प्राप्त करने का लक्ष्य सही नहीं वह भी पर-संयोगी ही है ।

(२) आत्म रंजन हेतु मन की एकाग्रता की मोहिनीं वीणा सुन कर वह मगन है । वह अपने वैराग्य का प्रचार वेश (डफ) द्वारा प्रारम्भ करता है । मन में विभिन्न भावनाएँ (तरंग) उठ रही हैं । मन की चंचलता (छत्तीस रागिनी) छैगुनी होकर बढ़ गई है । फिर भी वह दृढ़ योग का प्रदर्शन करता हुआ अनाहत ध्यान की धूम मचाए है । भावार्थ, साधना के प्रचलित प्रयत्नों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओर आकृष्ट होकर उनमें लीन है, लेकिन मन की चंचलता वशमें न होने पर भी हठयोग का प्रदर्शन और साधना की सिद्धि होने का प्रचार करता है।

(३) साधक, ज्ञान की महिमा और उपदेश की बहुलता से लोगों पर प्रभाव डालता है। वह क्षमा भाव और सहनशीलता का प्रभाव भी दिखलाता है। अपनी साधुता के रंग में पाँचों इन्द्रियों के विकार और कषाय के पच्चीसों भेद को सखा भाव की तरह गुप्त रखे है, अर्थात् प्रकारान्तर से उनका पोषण करता है।

(४) कबीरदास जी कहते हैं कि चैतन्य ! यह मानव जन्म सुलभ साधन बारबार नहीं मिलते हैं, अस्तु इन प्रदर्शनों से मुँह मोड़ कर मिथ्यात्व का पर्दा (घूँघट खोल) हटा और आत्म-साक्षात्कार द्वारा आत्मकल्याण कर। आत्म-बुद्धि जाग्रत कर ऐ मन ! पराश्रयता को त्याग। यथार्थ सुख शांति तेरे में ही समाई हुई है। बाह्य जगत में या प्रदर्शन में सुख-शांति की प्राप्ति नहीं होगी। अस्तु, स्वाभावोन्मुख होकर स्व संवेदन प्राप्त कर।

(२७) आत्म-परिचय

कोई है रे ! हमारे गांव के, जासें परिचय बूझौं ठांव के।
बिन बादर बरषे अखंडधार, बिन बिजुली चमके अति अपार,
शशि भानु बिना जहाँ है प्रकाश, सतगुरु के शब्द में कियो निवास॥१॥
वृक्ष एक जहाँ अति अनूप, शाखा पत्र नहिं छाँह धूप।
बिन फूल करे भौंरा गुंजार, फल लाग्यो जाके निराधार॥२॥
नहिं ऊंच नीच नहिं जाति, पाँति जहां त्रिगुण न व्यापै सदा शान्ति।
हर्ष शोक नहिं राग रोष, सदा आनन्द जहां संशय न भोग॥३॥
अखंड पुरी एक नगर नाम, जहाँ बसिये संतो सहज धाम।
उपजे न बिनसे न आवे जाय, कहंहि कबीर तहँ रहे समाय॥४॥

(२८) आनन्द-धाम—'मुक्ति'

संतो ! सो निज देश हमारा।
जहाँ जाय फिर हंस न आवे, भवसागर की धारा।
सूर्य चन्द्र तहाँ नहीं प्रकाशित, नहि नभमंडल तारा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२६) मानव जन्म एवं ज्ञान दुर्लभता

काया नगर की पोरी, मन खेलत होरी।
यह नगरी में चेतन राजा, प्रेम की चांचर जोरी।
बनिता वृत्ति लिये अपने संग, हिलमिल फाग रचो री ॥१॥
सुरति की बीना बाजन लागी निरति को डफ ठनको री।
उठत तरंग छत्तीस रागिनी, अनहत की घनघोरी ॥२॥
ज्ञान गुलाल लियौ भरि झोरी क्षमा की केसर घोरी।
पांच पचीस सखी संग आई, तिनकों रंग में बोरी ॥३॥
घूंघट खोलि खेलु सन्मुख होय, अपने पिय संग गोरी।
कहंहि कबीर फेरि नहिं पैहौ ऐसा दांव बहोरी ॥४॥

दृष्टिकोण :—शरीर को कष्ट देकर अथवा प्राणायाम आदि हठयोग द्वाया मन को वश में करना असंभव है। साधुवेष या लौकिक क्रियाएँ आत्म-साधना के अंग नहीं, जब तक कि मिथ्यातत्व का पर्दा हटाकर आत्म-बोध न प्राप्त होवे। मानव जन्म में यह सुयोग भविष्य में प्राप्त नहीं होगा अस्तु इसी जन्म को सफल करो।

अर्थ :—(१) यह मन शरीर-बुद्धि के कारण इस शरीर से सम्बन्धित तत्वों में प्रेम का स्वाँग करता है। इस शरीर (नगरी) में चैतन्य ही एक विशिष्ट तत्व है जो सर्वत्र प्रेम-व्यवहार प्रकट करता है। पराश्रयता के (वनितावृत्ति) कारण यह पर संयोग का लक्ष्य कर आत्म-सुख (फाग) का प्रयत्न करता है। अर्थात् स्वभाव से परिचित न होने के कारण इसका सुख शांति प्राप्त करने का लक्ष्य सही नहीं वह भी पर-संयोगी ही है।

(२) आत्म रंजन हेतु मन की एकाग्रता की मोहिनी वीणा सुन कर वह मगन है। वह अपने वैराग्य का प्रचार वेश (डफ) द्वारा प्रारम्भ करता है। मन में विभिन्न भावनाएँ (तरंग) उठ रही हैं। मन की चंचलता (छत्तीस रागिनी) छैगुनी होकर बढ़ गई है। फिर भी वह दृढ़ योग का प्रदर्शन करता हुआ अनाहत ध्यान की धूम मचाए है। भावार्थ, साधना के प्रचलित प्रयत्नों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओर आकृष्ट होकर उनमें लीन है, लेकिन मन की चंचलता वशमें न होने पर भी हठयोग का प्रदर्शन और साधना की सिद्धि होने का प्रचार करता है।

(३) साधक, ज्ञान की महिमा और उपदेश की बहुलता से लोगों पर प्रभाव डालता है। वह क्षमा भाव और सहनशीलता का प्रभाव भी दिखलाता है। अपनी साधुता के रंग में पाँचों इन्द्रियों के विकार और कषाय के पच्चीसों भेद को सखा भाव की तरह गुप्त रखे है, अर्थात् प्रकारान्तर से उनका पोषण करता है।

(४) कबीरदास जी कहते हैं कि चैतन्य ! यह मानव जन्म सुलभ साधन बारबार नहीं मिलते हैं, अस्तु इन प्रदर्शनों से मुँह मोड़ कर मिथ्यात्व का पर्दा (घूँघट खोल) हटा और आत्म-साक्षात्कार द्वारा आत्मकल्याण कर। आत्म-बुद्धि जाग्रत कर ऐ मन ! पराश्रयता को त्याग। यर्थार्थ सुख शांति तेरे में ही समाई हुई है। बाह्य जगत में या प्रदर्शन में सुख-शांति की प्राप्ति नहीं होगी। अस्तु, स्वाभावोन्मुख होकर स्व संवेदन प्राप्त कर।

(२७) आत्म-परिचय

कोई है रे ! हमारे गांव के, जासें परिचय बूझौं ठांव के।
बिन बादर बरषे अखंडधार, बिन बिजुली चमके अति अपार,
शशि भानु बिना जहाँ है प्रकाश, सतगुरु के शब्द में कियो निवास॥१॥
वृक्ष एक जहाँ अति अनूप, शाखा पत्र नहि छाँह धूप।
बिन फूल करे भौंरा गुंजार, फल लाग्यो जाके निराधार॥२॥
नहि ऊंच नीच नहि जाति, पाँति जहां त्रिगुण न व्यापै सदा शान्ति।
हर्ष शोक नहि राग रोष, सदा आनन्द जहां संशय न भोग॥३॥
अखंड पुरी एक नगर नाम, जहाँ बसिये संतो सहज धाम।
उपजे न बिनसे न आवे जाय, कहंहि कबीर तहँ रहे समाय॥४॥

(२८) आनन्द-धाम—'मुक्ति'

संतो ! सो निज देश हमारा।
जहाँ जाय फिर हंस न आवे, भवसागर की धारा।
सूर्य चन्द्र तहाँ नहीं प्रकाशित, नहि नभमंडल तारा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदय अस्त दिवस नहिं रजनी, बिना ज्योति उजियारा ॥१॥
पांच तत्व गुण तीन तहाँ नहिं, नहिं तहाँ सृष्टि पसारा।
तहाँ न माया कृत प्रपंच यह, लोग कुटुंब परिवारा॥२॥
क्षुधा तृषा नहिं शीत उष्ण तहाँ, सुख दुख को संचारा।
आधि न व्याधि उपाधि कछु तहां पाप पुण्य विस्तारा ॥३॥
ऊंच नीच कुल की मर्यादा आश्रम वरण विचारा।
धर्म अधर्म तहाँ कछु नाहीं संयम नियम अचारा॥४॥
अति अभिराम धाम सर्वोपरि शोभा अगम अपारा।
कहंहि कबीर सुनो भाई साधो तीन लोक से न्यारा ॥५॥

दृष्टिकोण :—आत्मा का स्वभाव व उसके मूल निवास ब्रह्म-लोक (मुक्ति) का वर्णन करते हुए शाब्दिक ज्ञान व्यक्त किया गया है। चूँकि वह स्थान और जीव का स्वभाव वर्णनातीत है, फिर भी कुछ विशेषताएँ हैं जो उपर्युक्त दोनों पदों में व्यक्त की गई हैं। द्वितीय पद सरल है, इससे प्रिय पाठक उसे सरलता से जान सकेंगे। अस्तु प्रथम पद का अर्थ नीचे दिया गया है।

अर्थ :—कोई हमारे मूल निवास स्थल का सहगामी होवे तो उससे उस स्थल की योग्यता का परिचय प्राप्त कर लेवे। वह स्थान बहुत विचित्रताओं से पूर्ण है जहाँ पर दृश्यमान जीव नहीं हैं। वह निराकार होते हुए भी अखण्ड आनन्द का स्रोत है। वहाँ पर जीव सक्रिय नहीं है, फिर भी उसकी अपूर्व शक्ति एवं द्युति है। ये लौकिक प्रकाश-तत्व सूर्य चन्द्रमादि के बिना भी वहाँ पर चैतन्य के ज्ञान तत्व के प्रकाश में तीनों लोक अपना त्रैकालिक रूप यथार्थ तथा प्रतिबिम्बित करते हैं। ऐसा सच्चे गुरुओं के ज्ञान व उपदेशों द्वारा प्रकट होता है इसमें कोई संशय नहीं है।

(२) वहाँ काल परिवर्तन (वृक्ष) अत्यन्त अनुपम है, उसके विभाग (शाखापत्र) नहीं हैं। सदैव एक-सा युग वर्तमान है। वहाँ दुख-सुख का भी क्रम नहीं है। सदैव सुख शांति का निवास है। वहाँ पर कोई विषय भोगादि का आकर्षण नहीं है फिर भी ब्रह्म वहाँ आनन्दमग्न है। कोई क्रिया न होते हुए भी परिणामतः वहाँ सभी आत्मसुख में मग्न हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) वहाँ कोई पद या जाति भेद नहीं है, सबमें समानता व एकत्व व्याप्त है। सत, रज व तम आदि गुण (योग्यता) भेद से परे वहाँ के ब्रह्म में सदैव शांति और अतीन्द्रिय सुख व्याप्त रहता है। वहाँ हर्ष या शोक अथवा रागद्वेष रहित निरंतर और निस्संदेह आत्म शांति और अनंत सुख व्याप्त रहता है।

(४) अविनाशी चैतन्य धाम (ब्रह्मलोक) ऐसा वह नगर है जहाँ पर संत पुरुषों का सहज निवास है। वहाँ पर पहुँचा हुआ जीव सदैव एक-सा रहता है। वहाँ उत्पत्ति अथवा नाश और आवागमन के फंदे से प्रथक अपने निज स्वरूप में रमता हुआ आनन्द मग्न आत्मा सदैव निवास करता है। उसी को मुक्तिलोक या परमधाम चैतन्य निवास कहते हैं।

(२६) सम्यक्-प्रतीति

पिया के घर की रीत अनोखी बहू सीख ले री।
नहिं ठौर ठिकाना और कहिं तेरा कही मान मेरी। टेक।
करै न पिय से प्रेम क्यों ! यही अन्देशा मोहि,
पिया के कारण रोवते लाज न आवै तोहि।
गई कहाँ मारी मति तोरी ॥१॥
खान पान भावे नहीं पीयर बिन अकुलाय।
पिय को दर्शन नहीं करै इक चित ध्यान लगाय।
इसी से नींद न आवे री ॥२॥
कपट केवरिया खोलि के निज मंदिर में आव।
इत उत तकना त्यागि के पिय में मन ठहराव।
भलाई इसी में सब है री ॥३॥
सुषमन सेज बिछाय के पीतम को पौढ़ाव।
पिया से मिल के एक हो दुरमति दूरि बहाव।
तभी तेरो जिय सुख पावे री ॥४॥
तेरे पीहर होत है झूठा सब व्यवहार।
तेहि तजि पिय से प्रीति कर कहंहि कबीर पुकार।
बात ये सुन लेना मेरी ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टिकोण :—संसार-प्रचलित मिथ्या मान्यताओं एवं धार्मिक रूढ़ियों से आत्मा का सुख शांति प्राप्त नहीं हो सकती है। जगद्व्यापी आत्मा में परमात्मा तत्व के दर्शन कर रागद्वेष परित्याग करें। समत्व धारण कर आत्म-दर्शन को प्रवृत्ति करो, जिससे सुख शांति का मार्ग प्रशस्त हो और जीवन्मुक्ति का मार्ग मिले।

(१) ऐ संसारी प्राणी, तेरा घर मुक्ति-लोक है और वहाँ पहुँचने की रीति अपूर्व है, उसे सीख ले। अन्यत्र कहीं भी तुझे सुख शाति प्राप्त नहीं हो सकती है। मुझे तेरी भ्रमबुद्धि का दुःख है। तुझे अपने प्रिय परमात्मा के वियोग का दुःख तो है, लेकिन तू उसकी ओर आकृष्ट नहीं, तेरी लगन उस ओर नहीं, अन्यथा वह तुझे अवश्य प्राप्त हो। किसी उलझन में पड़कर तेरी मति मारी गई है।

(२) तू उसको प्राप्त होने के लिये उतावला है। यहाँ तक कि खाना पीना छोड़कर व्रतादि भी करता है परंतु एकाग्रचित होकर इस परम-तत्व आत्मा का ध्यान नहीं करता है, इसीलिये नींद नहीं आता अर्थात् बेचैन है।

(३) तुझे स्व पद का स्पष्ट भेद ज्ञात न होने से मिथ्या बुद्धि लगो है। आत्म तत्व जो सर्वत्र चैतन्य स्वरूप में व्यापक है उसके प्रति निश्छल व्यवहार कर स्वसंवेदन कर अर्थात् स्व पर दया युक्त होकर जड़ से मोह छोड़, माया से नाता तोड़ दे। दूसरों के दोष देखने या बहुमान्यता से तेरा बुद्धि चंचल हो रही है। अस्तु स्वभाव में स्थिरता के लिये बहुमान्यता या परछिद्रान्वेषण को त्याग कर आत्मस्थिर हो इसी से तेरी भलाई है।

(४) रागद्वेष का परित्याग कर समत्व की वृद्धि कर (सुषमन सेज बिछाय कर)। इससे तुझे आत्मस्थिरता प्राप्त होगी। दिखावटी भक्ति का दुरभिमान छोड़कर आत्मतत्व से एकत्व जोड़, जो कि परमात्म तत्व है। यह सौम्य भाव ही तुझे सुखशान्ति का दाता है। (मान्यता में दुविधा के कारण ही अब तक दुःख पाया है, उससे छुटकारा पाने का क्रमशः समत्व और एकत्व ही उपाय है)।

(५) इस संसार में जो तेरा जन्म मरण का स्थल है, यहाँ के सभी व्यव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हार झूठे हैं अर्थात् पर वस्तुओं में जो अपनत्व की मान्यता है, वह भ्रम है तथा जीवों के साथ जो पिता, पुत्र, स्त्री, भगिनी, बहन आदि के सम्बन्ध माने जाते हैं वह माया-जनित अर्थात् दैहिक हैं। यथार्थ में प्राणीमात्र एक से और समकक्षी हैं तथा पर वस्तुएँ मेरी नहीं, मैं उनसे भिन्न चैतन्य तत्व, मात्र ज्ञाता दृष्टा हूँ। इस प्रकार आत्मबोध को प्राप्त कर, आत्मतत्व में लीन हो जा। संसार का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान और ध्यान इसी के लिये है। संत कबीर सम्बोधित करते हैं कि जीव! तेरी सुख शांति इसी में है यही सर्वोच्च आदर्श है जिसे प्राप्त करने की मेरी यह शिक्षा मान और अवश्य मान।

(३०)

तोहि पीय मिलेंगे घूंघट का पट खोल री।
घट घट में वहि स्वामी रमता, कटुक बचन मत बोल री॥ टेक॥
भक्ति करन को गर्भवास से करि आई तू कौल री।
बाहर आय भूल गई सजनी पियो विषय रस घोल री॥१॥
धन यौवन कौ गर्व न कीजै झूठो पचरंग चोल री।
चार दिन में होयगो फीको उड़ जावेगा झोल री॥२॥
श्रद्धा से सतगुरु शरणागत, हो तनि डवां डोल री।
गुरु की कृपा मिलै चिंतामणि घट भीतर अनमोल री॥३॥
किरिया कर्म के भर्म में पड़कर अब जनि छाती छोल री।
कहंहि कबीर आनन्द भयौ मन बाज्यो अनहद ढोल री॥४॥

दृष्टिकोण :—अज्ञान—पर्दे को हटाने से सम्यक् दृष्टि प्राप्त होगी, इस तरह घट घट व्यापी आत्मा का दर्शन होगा। मायाबुद्धि ही भ्रम का कारण है, आत्मसुख में बाधक है। धर्म, लौकिक आडम्बर या योग धारण करने में नहीं है। प्राणी मात्र में समत्व ही कल्याण मार्ग है। अस्तु घमंड को त्याग कर सब जीवों से प्रेम कर, रागद्वेष और मिथ्यात्व का निवारण कर।

अर्थ :—(१) जिस 'राम' के दर्शन के लिये तू तीर्थ देवालय जाता है या लौकिक कर्मकाण्ड करता है, वहाँ 'राम' के दर्शन नहीं हो सकते हैं। वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'राम' घट घट व्यापी सर्वत्र सुलभ एक आत्मतत्व है जो कि सामने पड़े हुए मिथ्या-आवरण (घूँघट) के हटाने पर मिल सकता है। सभी प्राणियों में दया, नम्रता तथा मृदु वचनों का प्रयोग कर 'राम' तुझे प्रत्यक्ष हो जावेगा। भावार्थ कटुता और गर्व का कारण मिथ्यात्व है। जब तक यह भ्रम बुद्धि दूर कर समत्वको प्राप्त नहीं होता, आत्मदर्शन दुर्लभ रहेगा।

हे जीव! जब तू गर्भावस्था के कष्ट में था तूने प्रतिज्ञा की थी कि मैं संसार के जीवों के प्रति भक्ति या प्रेम भाव रक्खूँगा। लेकिन ज्योंही गर्भावस्था के दुःखों से छूट कर संसार में पहुँचा तूने उसे प्रतिज्ञा को भुला दिया। माया की चकाचौंध में तेरी बुद्धि नष्ट हो गई और तू इन विषय भोगों में फँस कर इन्द्रियों को तृप्त करने में जुट गया। भावार्थ यह है कि इस तृष्णा के मकड़जाल में फँसा हुआ बेचैनी में ही सुख मान रहा है।

(२) ऐ प्राणी। तू इस शरीर बुद्धि में पड़कर अपनी युवावस्था के राग रंग और धन का अभिमान करता है लेकिन यह नहीं जानता है कि पचेन्द्रियों का रूपक यह शरीर नश्वर है। इसकी मोहकता कुछ ही दिनों की है। वृद्धावस्था को प्राप्त होकर इसका सत्व 'आत्मा' इसे छोड़कर चल देगा, तब कुछ उपाय नहीं बनेगा। पछतावा मात्र रह जावेगा।

अस्तु इस दुविधा को छोड़कर श्रद्धापूर्वक सतगुरु की शरण ग्रहणकर। सतगुरु से ज्ञान और शुभाशीश मिलने पर तुझे यह अमूल्य चिंतामणि रत्न प्राप्त होगा जो तेरे ही अंदर अज्ञान की कालिमा से मलीन हो रहा है। सुख शांति का मूल सत्पदार्थ एक आत्मतत्व है, जो माया मोह के आवरण में पड़ा है, उसको ज्ञान द्वारा प्रकाश में ला।

(४) हे प्राणी! लोक प्रचलित कर्मकाण्ड जप-तप या योगाभ्यास द्वारा मन वश में नहीं होवेगा। इच्छा और वासनाओं को वश में करके जीव तत्व में श्रद्धा और वात्सल्य ही आनन्द का स्रोत है। चैतन्य तत्व (अनहद) ही माया को जीत कर (ढोल) मन वांछित आनन्द को प्राप्त करा सकता है। ऐसा संत कबीर का उपदेश है। भावार्थ—इच्छा और वासनाओं को जीतने के लिये जो संयम और तप बतलाए गये हैं, आज उनको प्रकट करके साधु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी उच्चता और अभिमान का व्यवसाय चालू कर देता है। इस तरह अपने मूल उद्देश्य से भटक जाता है। अस्तु कर्मकाण्ड की अपेक्षा संत कबीर ने ज्ञान और समत्व को प्रधानता दी है। लक्ष्य सही होने पर ही आचरण व ज्ञान सहायक हो सकता है।

(३१)

धुबिया जल बिच मरत पियासा।
जल में ठाढ़ पिवै नहिं मूरख अच्छा जल है खासा।
अपने घट के भर्म न जानै करि धोवियन की आशा ॥१॥
छिन में धोबिया रोवै धौवे छिन में होय उदासा।
आपै वरै करम की रस्सी आपन गर की फांसा ॥२॥
सच्चा साबुन लेय न, मूरख है संतों के पासा।
दाग पुराना छूटत नाहीं धोवत बारह मासा ॥३॥
इक रत्ती को जोर लगावे, छारि दियो भरि मासा।
कहंहि कबीर सुनो भाई साधौ! आछत अन्न् उपासा ॥४॥

दृष्टिकोण :—यह मानव सुख शांति के लिये निरंतर प्रयत्नशील है। सुख शांति का भंडार आत्मतत्व जन जन में व्यापक है, लेकिन अज्ञानवश उसे अपने में व्याप्त उस आनन्द भण्डार का पता नहीं। वह तो अपने सुख शांति को पराश्रित मान रहा है। इस हेतु वह अपने प्रयत्नों द्वारा उसे प्राप्त करने का जो उपाय कर रहा है, वह उसकी अशांति और दुःखों का कारण है। इस तरह मिथ्यामार्ग से यह अपनी निकटस्थ वस्तु नहीं पा रहा है।

अर्थ :—(१) यह संसारी प्राणी सुख शांति की पिपासा को तृप्त करने के लिये उस धोबी की तरह व्याकुल और दुःखी है, जो जल में खड़ा हुआ भी पराश्रय बुद्धि के कारण दूसरों से जल पाने की इच्छा रखता है। उसे अपने में व्याप्त उस अखण्ड तत्व की खबर नहीं जो सुखशांति (जल) का भण्डार है। इसी लिये वह उसे न तो पाता है और न पाने का प्रयत्न ही करता है।

(२) संसार के सभी प्राणी दूसरों के दोष देखने वाले धोबी की तरह हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने कार्यों द्वारा वह दुःखद बंधन को स्वयं ही काटता है, जो भविष्य में उसे संसार के दुःखों के साथ बाँधे रहेंगे। इन क्रिया कलापों के परिणाम भोगते समय किसी क्षण वह संतप्त होकर इस संसार से विरक्त हो जाता है और दूसरे क्षण फिर उसी कार्य में लग जाता है जो उसे दुःखद है।

(३) गत कर्मबन्धनों (दाग पुराना) से छूटने के लिये वह निरंतर प्रयास करता है लेकिन असफल रहता है। कारण यह कि ज्ञानी साधुओं के पास से उसे सत्ज्ञान (सच्चा साबुन) प्राप्त नहीं हो सका है। भावार्थ, मनुष्य औरों की देखा देखी अनेकों जप, तप, पूजन, पाठ करके सुख शांति चाहता है। वह संसार के दुःखों से छूटने के लिये यज्ञ, हवन आदि भी करता है, लेकिन क्या वह दुःखों से छुटकारा पाता है? सच्चे ज्ञानियों से सत्मार्ग प्राप्त किये बिना दुःखों से छुटकारा प्राप्त नहीं हो सकता है। क्योंकि कर्मकाण्ड में दृष्टि-कोण का मौलिक अंतर होने के कारण सफलता मिलना संभव नहीं।

(४) यह अज्ञानी कण-कण (इक रत्ती) एकत्रित करने के लिये तो अपनी शक्ति लगता है, लेकिन पूर्ण तत्व आत्मा के संरक्षण में आलसी बना रहता है। अर्थात् यह मानव भौतिक पदार्थ के संग्रह में अपनी आध्यात्मिक शक्ति का दुरुपयोग करता है। संत कबीर कहते हैं कि यह वैसी ही दशा है जैसे अन्न का भंडार रहते हुए भी कोई लोभी कुछ बचाने की दृष्टि से उपवास करे। अथवा भूख से पीड़ित होते हुए भी पराश्रय में पड़ा रहे ऐसे ही आत्मगुण ज्ञात न होने से जीव दुःखी रहता है।

(३२)

पानी में मीन पियासी, मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी।
आत्मज्ञान बिना नर भटके, कोई मथुरा कोई काशी।
जैसे मृगा नाभि कस्तूरी वन वन फिरत उदासी ॥१॥
जल बिच कमल कमल बिच कलियां, ता पर भंवर निवासी।
सो मन वश त्रैलोक भयो सब यति सती संन्यासी ॥२॥
जाकौ ध्यान धरै विधि हरिहर मुनि जन सहस अठासी।
सो तेरे घट माँहि विराजै, परम पुरुष अविनाशी ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है हाजिर तेहि दूर बतावै दूर की बात निरासी।
कहंहि कबीर सुनौ भाई साधौ गुरु बिन भरम न जासी ॥४॥

दृष्टिकोण :—आत्मज्ञान ही सुख, शांति और समता का कारण है। मन का भ्रम दूर होने पर ही आत्मज्ञान संभव है। लेकिन इस चंचल मन ने दूसरे बड़े-बड़े यति-मुनियों को भी डिगा दिया है। यहाँ तक कि तीनों लोक के निवासी जीवों को इसने अपने अधीन कर रक्खा है। इस मन के साधन हेतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सहस्रों मुनियों ने घोर तपश्चरण भी किया है, क्योंकि मन के नाश के बिना ध्यान असम्भव है। इन साधनाओं का एकमात्र उद्देश्य आत्मदर्शन है। उस परम पुरुष की खोज व उपासना के लिये कहीं भटकना बिना समझे तप करना, वेष बनाना आदि अपने आप को ठगना है। भ्रम को दूर करने के लिये सत्गुरु का उपदेश और साधना ही आवश्यक है।

अर्थ :—(१) यह एक हंसी की बात है कि जीव जो सुख शांति का भण्डार है वह अपनी योग्यता से अनभिज्ञ रह कर अपने गुणों को प्राप्त न होवे। प्रत्येक प्राणी सुख शांति चाहता है, कारण यह कि उसे सुख शांति का आभास मिलता है। एक मृग की तरह वह अपनी नाभि से कस्तूरी की उड़ती हुई महक को कहीं अन्यत्र से आ रही है, ऐसा भ्रम होने के कारण उसकी खोज में इधर-उधर जंगलों में भटकता फिरता है। इसी प्रकार सुख शांति प्रदायक भगवान है ऐसा भ्रम होने के कारण यह संसारी प्राणी सैकडों देव और तीर्थों में भटकता हुआ मथुरा, काशी आदि में भगवान से सुख-शांति की याचना करता है क्योंकि उसे अपनी आत्मा और उसके गुणों का ज्ञान नहीं है।

(२) यह मन भौंरा संसार समुद्र (जल) में पड़े हुए जीव (कमल) के दृश्यमान शरीर (कलियाँ) के संस्कार से इधर-उधर भटकता हुआ आनन्द की खोज में है। इसके वश में तीनों लोक के प्राणी हैं, जिनमें सभी सतियाँ, संन्यासी और यतिगण भी हैं।

(३) वह अविनाशी परम-पौरुषवान आत्मा जिसकी प्राप्ति के लिये अठासी सहस्र मुनिजन, ब्रह्मा, विष्णु और शंकर जी आदि तप और ध्यान करते थे,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेरे ही शरीर में व्याप्त है। इस परमात्मतत्व को तू पहिचान। उसे खोजने के लिये कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है।

(४) ऐ प्राणी ! वह सर्व शक्तिमान परमेश्वर जिसे लोग कहते हैं कि वह अमरलोक में या मुक्ति में है। जिसे सुनकर तू निराश भी हो जाता है, वह कहीं दूर नहीं है, तेरे ही पास तेरा आत्मतत्व है। उपर्युक्त निःसार कथन पर ध्यान न देकर तू किसी सच्चे ज्ञानी की बात सुन। ऐसा संत कबीर का कथन है कि बिना सत्गुरु के तुझे ज्ञान प्राप्त नहीं होगा और न भ्रम ही दूर होगा।

(३३)

जगत के प्राणियों को संसार के सुखाभास में ही यथार्थ सुख का भ्रम है। वह भ्रम कैसा है :—

मिथ्या माया जाल जगत मन, क्यों तू देख भुलाया है।
सुमन सुहावन सुन्दर फल लखि सेमर सुवा लुभाया है।
मारे चोंच रुई जब निकरी, तन मन में पछताया है ॥१॥
धूम समूह जानि घन चातक, तृष्णा विवश होय धाया है।
मिटी न फास भयो दुख दारुण नयन हीन अकुलाया है ॥२॥
सुत वनिता इत्यादि सकल निज, स्वारथ प्रीति लगाया है।
यह मन मूढ़ मूढता के वश मोह जाल उरझाया है ॥३॥
प्रबल अविद्या के प्रताप शठ लख चौरासी आया है।
कहहिं कबीर चेत नर अजहूँ मानुष योनी पाया है ॥४॥

दृष्टिकोण :—यह संसार, जीवों की मिथ्याबुद्धि और मोह, माया का परिणाम है। प्रत्येक वस्तु अपने लुभावने रूप से संसार के प्राणियों को आत्म-रुचि से विमुख किये हुए है। अस्तु सुख के भ्रम में उसे अनेकों कष्ट और पश्चात्ताप सहने पड़ते हैं। यह मानव जन्म पाकर यदि अब भी जीव सुमार्ग पर नहीं आता है तो फिर ऐसा सुयोग दुबारा प्राप्त होना असम्भव है। अस्तु हे नर ! चेत और इस माया जाल के फंदे से निकल कर आत्मकल्याण में लग जा।

अर्थ :—(१) ऐ जीव ! माया के फन्दे में पड़ा हुआ तू वस्तु के स्वरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को यथार्थतः नहीं जानता है। तेरा मन संसारी माया में आकृष्ट है। जिस तरह तोता सेमल के वृक्ष में लगे हुए अपनी ही आकृति के फलों की सुन्दरता और मन-मोहकता से लुब्ध होकर उनकी सेवा करता है, सदैव उसी की देख-भाल करता है, लेकिन जब वे फल पकने लगते हैं और प्रेमवश वह उन पर चोंच चलाता है, तो रुई जैसे रेशे निकलने से वह दुःखी होता है और अपने कृत्य पर लज्जित होकर पश्चात्ताप करता है। यह संसारी प्राणी भी उसी तोते के सदृश, घर कुटुम्ब और धन सम्पत्ति के पीछे आँख मूँद कर दौड़-धूप कर धन तथा जन की रक्षा करता है। न्याय-अन्याय तथा अकर्म करने में अपने हिताहित का ध्यान भी नहीं रखता है। कर्म-परिपाक पर जब उन कृत्यों का परिणाम दुःखों के रूप में भोगना पड़ता है, तब अत्यंत पश्चात्ताप करता हुआ दुःखी होता है, फिर भी भ्रम वशसचेत नहीं होता है।

(२) उड़ते हुए धुंए के समूह को बादल जानकर प्यासा चातक पक्षी जल पाने को आशा में झपट कर पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर आखों में धुंआ भर जाने से अंधा और प्यासा होकर इधर-उधर भटकता हुआ दुःखी होता है। इसी तरह से सुख शांति पाने की आशा में संसारी प्राणी मोहान्ध होकर धन परिग्रह संचय करता है, लेकिन उसके लिये कितना छल-कपट और मिथ्या व्यवहार करना पड़ता है, इस पर ध्यान नहीं देता है। परिणामतः वह धन व सुख शांति के साधन, जो उसने एकत्रित किये थे वही उसके दुःख के कारण होते हैं और वह अपने दुष्कृत्यों का दुःखद परिणाम भी भोगता है।

(३) इस संसार में पुत्र स्त्री आदि अपने सगे दिखाई पड़ने वाले, कुटुम्बी-जन भी स्वार्थ के ही प्रेमी हैं। दुःखों और अशांति में हिस्सा बँटाने वाला कोई नहीं है। इससे मोह बढ़ाने वाले ही यथार्थ में हमारे वैरी हैं, क्योंकि मिथ्या बुद्धि के कारण हमें वस्तु स्वरूप विपरीत दिखाई पड़ता है। अर्थात् सुखद और कल्याणकारी सत्मार्ग हमें कठिन और दुष्कर प्रतीत होता है तथा संसार में भटकाने वाला माया और मोह पूर्ण कार्य जो दुःखद और अहितकर है वह सरल और सुखद प्रतीत होता है। अंततः सभी प्राणी माया और मोह में उलझे हुए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) माया जनित संसार की चौरासी लाख योनियों में दुर्लभ एक मनुष्य ही कल्याणमार्ग की ओर लगने में सक्षम और अंतिम प्राणी है। तीव्र मिथ्यात्व के कारण शेष अन्य योनियों में भटकता हुआ जीव कभी भी कल्याण मार्ग नहीं प्राप्त कर सकता है। संत कबीर सचेत करते हुए संसारी प्राणियों को सम्बोधित करते हैं कि ऐ शठ! तनिक ध्यान दे, चौरासी लाख जन्म-जन्मांतरों की संख्याओं में से एक, यह मानव जन्म अत्यंत दुर्लभ है। यदि तूने अपने वर्तमान दृष्टिकोण को बदल कर अपने आप की पहचान नहीं की, स्वपर भेदज्ञान कर स्वसंवेदन प्रकट नहीं किया और माया जनित संसार के भुलावे में पड़कर कर्तव्य पथ से विमुख रहा, तो सिवाय पछताने और दुःख उठाने के कुछ भी तेरे हाथ नहीं आवेगा। अस्तु इस जन्म तथा आयु का जो भी अंश शेष है, उसे सत्मार्ग की ओर मोड़ दे। अपनी शक्ति और योग्यता को विकसित कर, इस तरह तू सुखी और समृद्ध होवेगा।

(३४)

भक्ति का मारग झीना रे।
कोई जाने जानन हारो सन्त जन जों परवीना रे।
नहीं अचाह चाह कुछ उर में मन लौ लीना रे।
साधुन की संगति में निशिदिन रहता भीना रे॥१॥
शब्द में सुरति बसै इमि जैसे जल बिच मीना रे।
जल बिछुरे ततकाल होय जिमि कमल मलीना रे॥२॥
धन कुल का अभिमान त्याग करि रहे अधीना रे।
परमारथ के हेत देत शिर विलम न कीना रे॥३॥
धारण कर सन्तोष सदा, अमृत रस पीना रे।
भक्त रहनि कबीर सकल परगट कह दीना रे॥४॥

दृष्टिकोण :—सच्चा भक्त बाह्य लोकाचारसे विदित नहीं हो सकता है और भक्त की पहचान भी सहज नहीं है। इच्छाओं को रोकने वाला और साधुओं का संग करने वाला ही उस भक्ति मार्ग की ओर प्रवृत्त हो सकता है। जिसे धनादि का अभिमान न हो, नम्र मिष्टभाषी और प्राणी मात्र में प्रेम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रखने वाला हो; ऐसा व्यक्ति सदैव ज्ञान से तृप्त और संतोषी स्वभाव का होगा। यही सच्चे भक्त की पहिचान है।

अर्थ :—भक्ति का मार्ग अत्यंत सूक्ष्म और अव्यक्त है। इसे परखने वाला विरला संत हो सकता है, जो कि आत्मगुणों की परीक्षा में निपुण हो। भक्त सदैव साधुसंगति और उनकी सेवा के लिये तत्पर रहता है। वह सद्गुणों के प्रति अनुरागी होता है। उसकी इच्छाओं में दासता नहीं होती है और न मन में कोई अज्ञात कांक्षा ही होती है।

(२) जल में रहने वाली मछली की तरह उसकी आत्मा ज्ञान पूरित रहती है और एक क्षण को भी अज्ञानियों सदृश प्रवृत्ति नहीं होती है। जिस तरह जल से पृथक होते ही कमल मुरझाने लगता है उसी तरह समत्व रहित ज्ञान भी निर्जीव होता है। अर्थात् वह ज्ञान, जो आत्मा को सदाचरण और समत्व की ओर उन्मुख न कर सके, वह अज्ञान मात्र है। ऐसा भक्त ढोंगी और दिखावटी है।

(३) भक्त पुरुष सदैव नम्र होता है। उसे अपने जाति, कुल, धन, बल, ज्ञान आदि का अभिमान नहीं होता है। वह सत्पुरुष परोपकार और परमार्थ के लिये अपने शरीर को अर्पण करने को तैयार रहता है। अर्थात् सच्चे भक्त की रुचि परोपकारी कार्यों और परमार्थ की ओर सदैव रहती है।

(४) वह सदैव संतोषी रहता है और उसके कार्य उसे अमरत्व प्रदान करने वाले होते हैं। भक्त पुरुषों में प्रकट रहने वाले गुणों का संक्षिप्त परिचय संत कबीर ने इस तरह दिया है। अन्य अनेक गुण होते हैं जो साधारण बुद्धि वाले व्यक्तियों की परीक्षा में नहीं आ सकते हैं तथा अनेकों गुण इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनका संबंध लौकिकता से न रह कर आत्मा से होता है, जो कि वचनातीत है।

संत कबीर की दृष्टि में चंदन माला और पूजा पाठ करने वाला राग-द्वेष-युक्त, ढोंगी पुरुष भक्त नहीं, अपितु जगत के प्राणी समूह के प्रति उदार, नम्र और संतोषी व्यक्ति ही सच्चा भक्त हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३५)

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ।
हीरा पायो गांठ गठियायों, बार-बार बाको क्यों खोले ।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले ॥१॥
सुरति कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले ।
हंसा पाए मान सरोवर ताल तलैया क्यों डोले ॥२॥
तेरा साहब है घर माहीं, बाहर बैना क्यों खोले ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो साहब मिल गये तिल ओले ॥३॥

दृष्टिकोण :—संत कबीर ने इस पद में आत्मभाव होने पर प्राप्त अवस्था का वर्णन करते हुए दर्शाया है कि जब तक यह भाव नहीं होता कि प्रत्येक आत्मा में वह अचित्य परमात्मशक्ति व्याप्त है, तब तक ज्ञानी भी आड़ोलित और चिंतित रहता है । समत्व ही पूर्णता का आभास कराता है और तिल की ओट में रहने वाला सर्वस्व आत्मतत्व प्रकाशित हो उठता है जिसकी खोज में सैकड़ों ज्ञानी भट- कते रहते हैं ।

अर्थ :—(१) आत्मज्ञान होने पर प्राणी अपने आप में तन्मय होकर संसार को भूल जाता है । उसे कुछ सुनने समझने के भाव ही नहीं होते हैं। आत्मभाव (हीरा) हो गया है, अस्तु वह निश्चिंत है । उस आत्मरत्न को बार-बार परखने अथवा देखने की भी इच्छा नहीं है । फिर वह उस भेद का उद्घाटन किस तरह और क्यों करे ? जब तक ज्ञान अपनी पूर्णदशा में नहीं था (हलका था), तब तक वह उसे तर्क तुला में सही उतारने के लिये व्यग्र रहता था, परोपदेश और आत्मख्याति के लिये प्रयत्न (चढ़ी तराजू) किया करता था । अब उसे सत्-पदार्थ का आभास मिल चुका है, अस्तु अब उसमें शांति और समता आ गई है ।

भावार्थ :—तत् वत् सत् "आत्मतत्व" मेरा चैतन्य ही सर्वोत्कृष्ट और सुचिंतित रत्न है उसे ऐसा भान होने पर लौकिक संघर्ष और भौतिक आकर्षण विचलित नहीं कर सकते हैं । उस अतुल्य शक्ति और आनन्द स्रोत को पाकर वह मनोकामना रहित हो जाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) व्यावहारिक ज्ञान (सुरति कलारी) विस्मृत (भई मतवारी) हो गया है, क्योंकि उसने सौम्य रस (मदवा) का विशेष आनन्द अनुभव किया है। इस ब्रह्म (हंसा) को मन के ऊपर शासन (मान सरोवर) प्राप्त हुआ है तब वह क्षुद्र रसागार (ताल तलैयाँ) जिन्हें लौकिक पुरुष तृप्ति का साधन मानते हैं ऐसे देवी देवता अथवा योगाभ्यासादि के चक्र में क्यों पड़े? भावार्थ आत्मभान के साथ ही उसे सृष्टि व्यापी अनादि अनंत ब्रह्म तत्व का अनुभव होने से समता जाग्रत हुई है। अस्तु वह व्यर्थ के वितण्डावाद और कर्मकाण्ड के चक्र में न पड़कर आत्म कल्याण का साधन करने हेतु मन को वश में कर संयम और आत्मनियंत्रण द्वारा आनन्दामृत का पान करके तृप्त हो रहा है।

(३) उसे बाह्य दृष्टि रखकर संसार में उलझने की आवश्यकता नहीं, कारण, उसे ज्ञात हो गया है कि मेरा प्रभु अंतर्यामी है घट-घट व्यापी है। संत कबीर कहते हैं कि यह प्रभु दर्शन तिल की ओट में हैं। सब बकवाद और कर्म-काण्ड अनावश्यक और अहितकर है, यदि प्राणी की सम्यक् रुचि और सम्यक् ज्ञान न हो जावे।

(३६)

प्राणायाम और शब्द साधना मन को वश में करने के उपाय हैं।

अवधू अक्षर हूँ सों न्यारा,
जो तुम पवना गगन चढ़ाओं करो गुफा में वासा।
गगना पवना दोनों बिनसै कहाँ गयो जोग तुम्हारा ॥१॥
गगना मद्धे जोती झलकै, पानी मद्धे तारा।
घटिगै नीर विनसिगै तारा, निकर गयो कोई द्वारा ॥२॥
मेरु दण्ड पर डारि दुलैची जोगी तारों लाया।
सोई सुमेर पर खाक उड़ानी कच्चा योग कमाया ॥३॥
इंगला विनसै पिंगला विनसै, विनसैं सुषमन नाड़ी।
जब उन्मनि की तारी टूटै तब कहाँ रही तुम्हारी ॥४॥
अद्वैत विराग कठिन है भाई, अटके मुनिवर जोगी।
अक्षर लौ की गम्य बतावै सो है मुक्ति विरोगी ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कह अरु अकह दुहू ते न्यारा, सत असत के पारा।
कहै कबीर ताहि लखि जोगी उतरि जाय भव पारा ॥६॥

दृष्टिकोण :—प्राणायाम अथवा मंत्र साधना और एकांतवास को कुछ ऋषियों ने आत्म साधना का मार्ग बताया है। संत कबीर कहते हैं कि वह वस्तु जिसकी साधना करना है, वह इस शरीर में रहते हुए भी शरीर से पृथक आत्मतत्व है जो अत्यंत सूक्ष्म और अक्षरों से परे होने के कारण अकथनीय एक अखण्ड, नित्य तत्व है। उसका साधन इन क्षणिक और शारीरिक उपायों द्वारा संभव नहीं। वह वचनातीत अगम्य और अगोचर तत्व समझने और जानने योग्य है और प्राणि मात्र में व्याप्त है।

अर्थ :—(१) वह अक्षर (न क्षय होनेवाला) (नित्य) तत्व "आत्माराम" सबसे पृथक, एक ज्ञातव्य तत्व है। चाहे एकान्तवास करके प्राणायाम द्वारा श्वासोच्छ्वास का साधन कर लो तो भी वह सिद्ध नहीं हो सकता है। कारण यह कि, वह तो शरीर, मन, स्वाँस, तथा वाणी से पृथक तत्व है। यह सभी नश्वर योग और शरीर उसे प्राप्त करने को समर्थ नहीं।

(२) आकाश में जो ज्योति (तारागणों की) झिलमिलाती है, उसका प्रतिबिम्ब पानी में आ सकता है, लेकिन वह आकाश के तारे की भाँति स्थायी न होकर पानी के आश्रित है। पानी निकल जाने से वह प्रतिबिम्ब अदृश्य हो जाता है। उसी तरह यह शरीर आत्मा का प्रतिबिम्ब है, जो कि शरीर के आश्रित है। शरीर क्षय हो जाने पर, वह न जाने किस मार्ग से निकल जाता है।

(३) योगाभ्यास द्वारा योगी मेरुदण्ड को आसन केन्द्र मान कर वायु की नाड़ियों में प्रवाहित करता हुआ मन को वश में कर आत्मसाधन का प्रयत्न करता है। शरीर क्षीण होने पर आत्मा इस शरीर से पृथक हो जाता है और वह योगसाधन व्यर्थ जाता है।

(४) इला, पिंगला आदि नाड़ियों का भेद विलीन हो जाता है। सुषुम्ना का भी पता नहीं रहता है। ध्यान की एकाग्रता द्वारा जो उन्मनि का तारतम्य जमाया था वह भी नहीं रहा, तो क्या आत्म-साधन हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) "एकोहं द्वितीयो नास्ति" इस तथ्य को मान कर कुछ योगी, मुनिवर इस कठिन साधना में भी अद्वैतवाद के कारण अटक जाते हैं। कोई इस आत्म साधन के लिये मंत्र साधना व अक्षरों का यथाविधि यंत्र बनाकर साधन करते हैं, वह भी मुक्ति मार्ग से पृथक है।

(६) यह आत्मा कथन और शब्दों से परे हैं। कोई भी न्याय उस तत्व का सम्पादन नहीं कर सकता, क्योंकि वह दिव्य दृष्टि से देखा जाता है। और अपने परिणामी अस्तित्व में असत भी है। उस एक मात्र आत्म-द्रव्य को समझ, उसी का अनुभव और उसकी ही निर्मलता का ध्यान रख, तभी ऐ योगी ! तू इस भव समुद्र से पार हो सकता है।

भावार्थ :—चैतन्य की साधना शरीर और उससे संबंधित स्वरादि तथा यंत्र मंत्रादि से पृथक है। वह प्रारम्भिक सहायक है। उस पर पूर्णतया निर्भर होकर जो उसी को आत्म साधन मानते हैं वे मिथ्या मार्ग पर हैं क्योंकि इन उपायों से शरीरिक कष्ट मात्र होता है। आत्मदर्शन नहीं अस्तु आत्मा को लक्ष्य करके अपने स्वभाव और आचरण को सही करने पर ही आत्म दर्शन हो सकता है अन्यथा नहीं।

(३७) ज्ञान की दुर्लभता

मिलना कठिन है, कैसे मिलोगी पिय जाय !
समुझि सोच पग धरों जतन से बार-बार डिग जाय।
ऊँची गैल राह रपटीली पाँव नहीं ठहराय ॥१॥
लोक लाज कुल की मरजादा, देखत मन सकुचाय।
नैहर वास बसा पीहर में, लाज तजी नहि जाय ॥२॥
अधर भूमि जहाँ महल पिया को हम पै चढ़ो न जाय।
धन भई बारी, पुरुख भए भोला, सुरत झकोरा खाय ॥३॥
दूती सतगुरु मिले बीच में, दीन्हों भेद बताय।
साहब कबिरा पिय सों भेटयो शीतल कंठ लगाय ॥४॥

दृष्टिकोण :—यह कथन आत्मा का परमात्म शक्ति में विश्वास जमाने वाली अड़चनों का स्पष्टीकरण करता है। बार-बार मार्ग विचलित होने वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को सतगुरु ही सहायक है अन्यथा यह निराधार ज्ञान अति कठिन है।

अर्थ :—(१) संत कबीर ने आत्मज्ञान के इच्छुक नवदीक्षितों को नवोढ़ा और आत्मज्ञान तथा परिचय को पति और उससे भेंट करने के मार्ग से उपमा दी है, जो इस प्रकार है—

वह मार्ग बहुत ऊँचा है, साथ ही सरकने वाला है, जिसमें पैर नहीं ठहरता है। कितना भी सोच समझ कर यत्न पूर्वक पाँव जमाने पर भी वह डगमगाता है। ऐसी परिस्थिति में उस प्रियतम (आत्मदर्शन) के पास पहुँचना और उससे भेंट करना अत्यंत कठिन है। वह कैसे मिले उसका मार्ग ही बड़ा दुस्तर है! सामने जो, और कारण हैं वे ये हैं :—

(२) लोक लज्जा भी शंकित करती है। किसी के कुल में कोई इस मार्ग को नहीं गया है। क्योंकि सभी सम्प्रदाय वाले प्रभु उपासना हेतु भक्ति और आडम्बर की ओर ही आकृष्ट हैं। इसलिये उस ओर दृष्टिपात करने में भी भ्रम होता है। आत्मचिंतन (पीहर) में उस शरीर बुद्धि का (नैहर वास) भी सामंजस्य है। दोनों एक ही स्थान पर एक दूसरे के लगाव में हैं जो एक बाधा है। अस्तु, संकोचवश प्रचलित रूढ़ियों का त्याग करते भी नहीं बनता है। आत्मज्ञान के लिये अन्य अनेकों दुविधाएँ हैं, जिन पर ध्यान दीजिये।

(३) निराधार ज्ञान और निराकार की उपासना से ही आत्म-परिचय हो सकता है। वह बहुत कठिन कार्य है अस्तु हम जैसे साधारण मनुष्यों के लिये असम्भव है। वह जीव बहुत सरल और सीधा है। उसकी नव विवाहिता (नवदीक्षित) बाल्यबुद्धि है, जिससे उसका ज्ञान भी अस्थिर है, अस्तु उसे अपनी सफलता में संदेह है।

(४) आत्म-परिचय या स्वसंवेदन में सहायक सत्‌गुरु भाग्यवश प्राप्त हुए हैं और उन्होंने इस कल्याणमार्ग का भेद बता दिया है। इससे शांति और शीतलता प्राप्त हुई है और अपने प्रियतम (आत्मा) से मिलकर अत्यंत आनन्द का अनुभव किया है।

भावार्थ :—आत्म कल्याण हेतु भेद विज्ञान ही प्रथम सहायक है जिससे आत्मा और शरीर की पृथकता का अनुभव होता है। आत्मा की व्यापकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और समता का रंग आ जाने पर शांति और शीतलता प्राप्त होती है जब तक अंतर शांति और आनन्द का अनुभव न होवे, यह समझना चाहिये कि स्वसंवेदन नहीं हुआ है। स्वसंवेदन ही मुक्ति मार्ग में सहायक है, अस्तु इसका प्रयत्न करना चाहिये।

(३८)

अध्यात्म मार्ग कठिन हो, फिर भी उस प्रियतम का डर तो होना ही चाहिये जो इस 'बाला' की प्रतीक्षा में है। यदि समय इस तरह व्यर्थ खो दिया तो फिर क्या दशा होगी :—

भंवर उड़े बक बैठे आय, रैन गई दिवसो चलि जाय।
हल हल काँपे वाला जीव, ना जानै का करि है पीव ॥१॥
काँचे बासन टिके न पानी, उड़गे हंस काय कुम्हिलानी।
काग उड़ावत भुजा पिरानी, कह कबीर यह कथा सिरानी ॥२॥

(क० बी० शब्द १०६)

शरीर के ममत्व में जीव समता प्राप्त करने में अयोग्य रहा। समय ऐसा आया कि शरीर ने जीव की योग्यता साधने में अशक्ति प्रकट की और उस परमतत्व परमात्मा को अपने जीवन का क्या परिचय दूँगा यह सोच कर भय वश काँपने लगा। अंत में शरीर निष्क्रिय हो गया और उस जीव का वर्तमान इतिहास पूर्ण हुआ। अस्तु, समय रहते चेत जाना चाहिये! आत्महित के कार्य को भविष्य के लिये उठा नहीं रखना चाहिये।

अर्थ :—(१) वृद्धावस्था का संकेत, बालों में शुष्कता (वक) आ गई और स्याहपन (भंवर) दूर हुआ। क्रम, क्रम से रात्रि और दिवस करके आयु समाप्ति पर आ पहुँची। शरीर क्षीण होकर डगमगाने और काँपने लगा। मानों जीव इस डर से काँप रहा हो कि अपने प्रियतम (परमात्म शक्ति) के पास अब नहीं पहुँच सकता हूँ। जब योग्यता थी तब प्रयत्न ही नहीं किया, अब क्या मुँह लेकर वहाँ जाऊँ? इसी डर से वह हल-हल कम्पित होता है।

(२) जिस प्रकार कच्चे बर्तन में पानी नहीं टिकता है, उसी तरह इस अयोग्य शरीर में समता और शांति (पानी) का ठिकाना नहीं रहा। अस्तु,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव (हंस) इसे अयोग्य जान उड़ गया और निर्जीव शरीर पड़ा रह गया। वह शरीर अपने ऊपर झपटते हुए चील कौओं को भी उड़ाने में असमर्थ हो गया। जिस शरीर के ममत्ववश आत्म कल्याण की रुचि से अछूता रहा, वह शरीर अपने प्रभु (आत्मा) के यश और अमरत्व को भी नहीं प्राप्त कर पाया। इस तरह अंत में इसकी कोई कथा या अस्तित्व ही शेष नहीं रहा।

(३६)

चली जात देखी एक नारी, तर गागर ऊपर पनिहारी।
चली जात वह बाटहि बाटा, सोवनि हार के ऊपर खाटा ॥१॥
जाड़न मरै सपेदी सौरी, खसमन चीन्है धरनि भै बौरी।
साँझ सकार दिया लै वारै, खसम छाड़ि संवरे लगवारे ॥२॥
बाही के रस निस दिन राची, पिय सों बात कहै नहि सांची।
सोवत छोड़ चली पिय अपना, ई दुख अबधौ कहब किह सना ॥३॥
अपनी जांघ उघारि के, अपनी कही न जाय।
कै चित जानै आपनो, की मेरी जन गाय ॥४॥

(रमैनी ७३ क० बी०)

दृष्टिकोण :—जो निज वस्तु सर्वश्रेष्ठ, सुखद और ज्ञान पुंज आत्म तत्व है, उसकी अभिलाषा न कर पर वस्तुओं में राग करता है। उस महान् आत्मा की मूर्ति बनाकर उस आकार की पूजा-पाठ, स्तुति और आरती करता है; लेकिन अपने आपको भूला हुआ है। पराश्रय बुद्धि के कारण प्रत्येकप्राणी सुषुप्त अवस्था में ही अपना मानव जन्म त्याग देता है। इस तरह सदैव उस आनन्द से वंचित रहता है, जिसका कि वह भंडार है।

अर्थ :—(१) इस संसार में माया के फन्दे में पड़ा जीव (गागर) शरीर (पनिहारी) के दबाव (तर) में रहता है ऐसा हो सर्वत्र दिखाई देता है। यह प्रचलित रूढ़ियों के पथ पर चलता है जिससे वह सुख सुविधाओं की (खाटा) इच्छा रखते हुए भी उनको प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि वह नीचे पड़ा है और सुख सुविधाएँ उससे परे हैं। भावार्थ—प्रचलित रूढ़ियों पर चलता हुआ सुख शांति के लिये सामग्री जुटाने में प्रयत्नशील यह जीव उस यथार्थ सुख को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त नहीं हुआ है। उसका मार्ग ही अन्यथा है, अस्तु वह खाट के नीचे सोया हुआ सा सुखों का अनुभव करता है। जब कि वह यथार्थ में उससे पृथक है।

(२) वह बुद्धि (धरणि) बावली है जो कि अपने प्रिय आत्म तत्व (खसम) से अपरिचित है। इसीलिये स्वयं सुखद तत्व (सपेदीसौरी) के होते हुए भी वह कष्ट उठाता है (जाड़न मरे)। वह आत्मा से परिचित होने के बजाय शरीर या अनात्म तत्वों (लगवारे) में रमा हुआ है। अर्थात् वह नित्य प्रातः एवं सायंकाल जड़-निर्मित मूर्तियों की आरती व स्तवन करता है लेकिन सुख शांति के भण्डार (चैतन्य) आत्म तत्व को भूला हुआ है। उसकी बुद्धि पराश्रित है। वह अपनी सुखशान्ति को भी विषयाधीन या देवी देवताओं के आश्रित मानता है।

(३) वह इन्हीं पर वस्तुओं और इन्द्रियों के राग (रस) में रमा हुआ है। अपने प्रिय आत्म तत्व को सर्वस्व (पिय) न मानना हुआ उसके साथ कपट व्यहार करता है। अर्थात् पर वस्तुओं के अधीन अपनी सुख शांति की कल्पना कर स्वयं को ठगता है। अपनी योग्यता के विषय में सत्य आभास उसे नहीं है। इस प्रकार मानव जन्म पाकर भी वह आत्मा (पिय) को अचेत (सोवत) छोड़कर ही यह शरीर (नारी) निष्क्रिय हो जाता है। अपनी भूल का यह दुःख किससे कहा जाय। भावार्थ, पराधीन रह कर वह अपनी योग्यता के विषय में अनुभवहीन अज्ञानी रहकर ही यह शरीर छोड़ देता है जो बड़े दुःख की बात है।

(४) अपने में व्याप्त इन दोषों को (अपनी जांघ उघारि के) स्वयं कहते हुए शर्म लगती है। अपना मन ही इस दुःख को अनुभव कर सकता है क्योंकि वह अपने दोषों के कारण ही स्वयं पराधीन हुआ है। यह भूल या तो भक्त या सच्चा ज्ञानी ही अनुभव करता है जो कि इस पद में वर्णित है।

इस पद में संत कबीर ने संसार में प्रचलित रूढ़ियों का वर्णन करते हुए समझाया है कि स्वयं अपनी योग्यता से अपरिचित रहकर यह प्राणी पराश्रय बुद्धि से विषय सुख और देवी देवताओं की पूजा पाठ को ही यथार्थ सुख या दुःख का कारण मान लेता है, जो उसकी भारी भूल है। वह अपना मानव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्म अचेत रह कर ही व्यर्थ नष्ट कर देता है। यह बड़े ही दुःख की बात है जिसे ज्ञानी ही जानता है।

(४०) अपेक्षाकृत विरोध तत्वों का समन्वय

है कोई गुरु ज्ञानी जगत में, उलटि वेद बूझै।
पानी में पावक जरै, अंधहि आँखिन सूझै ॥१॥
गाय तो नाहर खायो हरना खायो चीता।
काग लंगर फादि के बटेर बाज जीता ॥२॥
मूंस तो मंजार खायो, स्यार खायो स्वाना।
आदि की उदेश जानै, तासौं बेस बाना ॥३॥
एकहि दादूर खायो, पाँच ही भुवंगा।
कहहि कबीर पुकार के है दोऊ एक संगा ॥४॥

(शब्द १११ क० बी०)

दृष्टिकोण :—संसार में इस जीव की क्या दशा हुई है, यह कोई विरला ज्ञानी जानता है ? सभी नेत्रधारी उस विपरीतता को नहीं समझते, लेकिन नेत्रविहीन किस तरह इस संसार अवस्था का अनुभव करते हैं। इस विवेचन के साथ संत कबीर ने मनुष्य की विवशता का वर्णन किया है, जो परस्पर विरोधी वाक्यों में वर्णित है।

(१) अर्थ :—इस संसार में ऐसा विवेकी पुरुष दुर्लभ्य है, जो इस पद में वर्णित विरोधी कथन को समझने की योग्यता रखता होवे। देखने में समर्थ नहीं जैसे अंधे की आँखों में ही दृष्टिगोचर हो सकता है। इस पद में सभी पात्रों के स्वभावानुसार उनके गुणों को लेते हुए इस आध्यात्मिक कथन को आकर्षक और प्रभाव शाली बनाया गया है।

अर्थात् प्रत्येक प्राणी शांति और शीतलता (सुख) का पुंज है। उसके इस गुण विशेष को जलाने वाली विषय-कषाय को अग्नि (पावक) सर्वत्र प्रज्वलित है। यह अग्नि साधारण पुरुषों को दिखलाई नहीं देती है। इस अग्नि की दाहकता का आभास उस अन्धे व्यक्ति को हो रहा है जो सांसारिक रुचि से पृथक आत्मबुद्धि के कारण नेत्र विहीन है भावार्थ आत्मा नेत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहित है फिर भी जानने और देखने की शक्ति शरीर की योग्यता नहीं, आत्मा की योग्यता है। क्योंकि शरीर निर्जीव हो जाने पर भी देखने जानने की योग्यता नहीं रखता है। भले ही वह सुदृष्टि और पुष्ट शरीर वाला हो इस दृष्टिकोण से कबीर ने प्रगट किया है कि हमारे सुख शांति (पानी) गुण को दग्ध करने वाली जो विषयाग्नि इस सृष्टि में व्याप्त है उसका ज्ञान आत्म अनुभवी व्यक्ति को ही होता है सर्वसाधारण जनों को नहीं।

(२) हमारे ज्ञान (नाहर) को इन्द्रियों की अधीनता (गाय) ने नष्ट कर दिया है। मोह-बुद्धि के कारण मनुष्य इन्द्रियाधीन सुखों के जुटाने में व्यस्त है अस्तु उसका ज्ञान क्षीण होकर संकुचित हो गया है। हमारी तर्क-शक्ति (चीता) को मन की (हरना) चंचलता ने नष्ट कर दिया है। भावार्थ इस मानव के श्रेष्ठ गुणों को उससे क्षीण शक्ति वाली संसारी वासनाओं ने लुप्त कर दिया है। मन की चंचलता के कारण विवेक या तर्क शक्ति नष्ट हो गई है और इन्द्रियाधीन सुखों में फँसकर अपना ज्ञान विकृत कर दिया है। लेकिन यह सब दुर्बलताएँ साधारण मानवों की समझ में नहीं आती हैं भ्रम और द्वेष के कारण एकांतवादी कथन (काग) के दुराग्रह (लंगर) द्वारा अनेकांतवादी युक्तियाँ (वटेर वान) हार मान गई हैं।

(३) लालच और संग्रहवृत्ति (मूंस) ने बड़े-बड़े संयमी पुरुषों (मंजार) को आचरण विहीन कर दिया है। भावार्थ वस्तु या द्रव्य के अनेकांत कथन को न मान कर उसके एक ही पक्ष को ग्रहण करते हुए बड़े-बड़े संयमी और विवेकी पुरुष लालच में पड़कर पथ भ्रष्ट होकर आचरणहीन हो गये हैं। उदाहरण स्वरूप, जीव शुद्धात्मा अजर अमर और अकर्त्ता है। इस एक पक्ष को लेकर अनेकों कुकर्म कर डालते हैं और जिह्वा लोलुपता की पुष्टि के लिए मांसभक्षण को निर्दोष शाकाहार जैसी मान्यता देकर हिंसा को बढ़ावा देने में संकोच नहीं करते हैं। जड़ और चैतन्य की विभिन्न कोटियाँ और उनके गुणों के विषय में अनेकों भ्रमपूर्ण बातें करते हैं। इस तरह कपटी और वेशधारी साधुओं (स्यार) का बाहुल्य है, जिससे सभी साधुवर्ग घृणा के पात्र बन गए हैं और साधुता लुप्त-प्राय हो गई है। यह प्राणी उस पर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्मा के विधि-विधान से अपरिचित नहीं है। परंतु फिर भी माया के फेर में विषयों की दासता के कारण अनेकों वेश धारण करता हुआ विभिन्न दृष्टिकोणों का पोषक बनकर स्वयं ठगाया हुआ फिरता है।

(४) इस तरह जीव की क्षणिक विकारी अवस्था (दादुर) उसकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को मोहित कर वश में किए हुए हैं। प्रकाश और अन्धकार के एक साथ होने में जिस तरह कोई सन्देह नहीं उसी तरह इस ज्ञानानन्द चैतन्य आत्मतत्व की अनन्त ज्ञान पूर्ण अवस्था का इस माया के चक्रवश अज्ञानी रहने में भी क्या आश्चर्य है ? भावार्थ सृष्टि में यह जीव चैतन्य और जड़ (माया) के मिश्र स्वरूप में विद्यमान होने से उसके परस्पर विरोधी गुण एक साथ वर्तमान हैं। इसका भेद ज्ञात कर चैतन्य के गुणों की रक्षा में लग जाने पर ही कल्याण है।

(४१) सत्यासत्य का यौगिक रूप

नारि एक संसारहि आई, मायने बाके बापहि जाई।
गोड न मूंड न प्राण अधारा, तामहँ भमरि रहा संसारा ॥१॥
बिना सांत लै उनकी सही, बुध अघबुध अचरज का कही।
बाहिक वंदन करु सब कोई, बुध अधबुध अचरज बड़ होई ॥२॥
मूंस विलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय।
अचरज संतो देखहु, हस्ती सिंघहि खाय।

(रमैनी ७२ क० बी०)

दृष्टिकोण:—इस संसार में व्याप्त माया की उत्पत्ति मनुष्य की भ्रम-बुद्धि के कारण है। यह निर्जीव तत्व सजीव प्राणियों को इस संसार में दुःख बढ़ाने का कारण है। लोगों को यह सुधि नहीं कि यह माया एक बहुरूपणी और क्षणिक तत्व है इससे उन्हें कोई लाभ नहीं। सभी भ्रम में पड़े हुए चलचित्र के पात्रों की तरह सुख-दुःख का अकारण ही भार उठा रहे हैं। मूल में जो तत्व है उसकी सुधि ही नहीं, जब कि यह जानते हैं कि सात दिवसों के अंतर्गत ही उन्हें भी एक दिन चला जाना है और साथ कुछ नहीं ले जाना है। लोभ के कारण उनमें कायरता भर गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ :—(१) सम्पूर्ण संसार को मोहित करने वाली एक नारी 'माया' इस संसार में व्याप्त है। उसकी उत्पत्ति किसी माता की कुक्षि से नहीं हुई है, अपितु वह मनुष्य की भावनाओं में जन्म पाई है। इस कारण उसकी उत्पत्ति उसी से हुई है। बिना सिर पैर की अर्थात् अशरीरी यह माया निर्जीव तत्व है। इसके कारण संसार का प्रत्येक प्राणी भ्रमण कर रहा है। भावार्थ, चैतन्य तत्व इस संसार में व्याप्त एक श्रेष्ठ तत्व है। वह अपनी योग्यता और गुणों का आभास प्राप्त न होने के कारण इस संसार में व्याप्त जड़ तत्व माया (लक्ष्मी) के अधीन होकर दुःख सहता हुआ भटक रहा है।

(२) यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि सभी उस जड़ तत्व लक्ष्मी या माया के ही उपासक हैं। क्या संसार के प्राणियों को यह ज्ञात नहीं कि सात ही दिन तो हैं, जिन्हें हम रविवार से शनिवार तक गिनते हैं और इन्हीं दिनों के अंतर्गत वह एवं उसका संग्रह अदृश्य हो जावेगा ? क्या बुद्धिमान और क्या अज्ञानी सभी इस तरह भ्रम में पड़े हुए हैं। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है ? भावार्थ—कवि खेद के साथ यह सम्बोधित करता हुआ कहता है कि अज्ञानी ही इस माया के प्रपंच में उलझा रहे तो कोई बात नहीं, लेकिन बड़े-बड़े ज्ञानी साधुजन भी इस भ्रम में पड़े भ्रमण कर रहे हैं।

(३) आप ही सोचिये, कि संग्रह वृत्ति या लालच (मूंस) और निर्भयता (बिलाई) एक साथ कैसे रह सकती है ? अर्थात् लालची व्यक्ति सदैव कायर और परघाती (द्वेषी) होता है, वह कभी निर्भय या स्वाभिमानी नहीं हो सकता है। यही कारण है कि माया के अभिमान में यह चैतन्य अपनी स्वतंत्रता को खो बैठा है और माया की दासता में कायर हुआ संसार में भ्रमण कर रहा है।

भावार्थ :—यह चैतन्य अपनी स्वतंत्रता अतीन्द्रिय सुख और निर्भयता आदि गुणों से अपरिचित रहकर इस संसार में माया के फेर में पड़ा हुआ भव भ्रमण कर रहा है। ज्ञानी होकर यह जानते हुए कि यह सब नश्वर है और मैं उसका स्वामी नहीं हूँ फिर भी संग्रहवृत्ति और लालच में पड़कर अपनी स्वतंत्रता और सुख शांति को खो बैठा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४२) सद्भक्ति का आडम्बर

ओढ़न मेरी रामनाम मैं रामहि का बनजारा हों ।
रामनाम की करौं बनिजिया, हरि मोरा हटवारा हो ॥१॥
सहस नाम का करौं पसारा, दिन-दिन होत सवाई हो ।
जाके देव-वेद पछ राखा, ताकि होत हटवाई हो ॥२॥
कानि तराजू सेर तिन पौग, उंहकि न ढोल बजाई हो ।
सेर पसेरी पूरा करले पासंग कतहुँ न जाई हो ॥३॥
कहहिं कबीर सुनो हो संतो जो चला जहंडाई हो ।

(कहरा ४ क० बी०)

इस पद में दर्शाया गया है कि भगवान की भक्ति या जय-गान करते हुए यदि हम अन्याय द्वारा पैसा प्राप्त करते हैं तो वह एक मात्र दुःख व अशांति को एकत्रित करना ही है। क्योंकि यह भक्ति तो एक मात्र विज्ञापन या प्रचार है, जिसके द्वारा हम दूसरे लोगों को ठगना चाहते हैं तो जैसा हम करते हैं उसका फल हमें भुगतना ही पड़ता है, उससे भगवान भी हटाने में समर्थ नहीं हैं ।

अर्थ :—(१) एक व्यापारी ने रामनामी दुपट्टा ओढ़ रक्खा है। वह अपने को बड़ा राम-भक्त व्यापारी मानता है। वह लोगों को बताया करता है कि मैं यह श्रीराम जी का व्यवसाय ही चला रहा हूँ। ऐ हरि भक्त ग्राहको, आप मेरे ही ग्राहक हो। इस तरह वह रामनामी कवच धारण करता है और राम का भक्त व्यवसायी होने का विज्ञापन करता है ।

(२) वह प्रतिदिन भगवान के सहस्त्र नाम की माला फेरता है। वह इस आशा में प्रतिदिन सवाया (अधिक) जप करता है कि हमारा व्यवसाय भी प्रतिदिन उन्नति करे। उसे इसकी तनिक भी आशा नहीं है कि वह भी राम जी जिनकी समस्त देव उपासना करते हैं और समस्त वेदों में जिनका गुण गान है उनका भक्त मैं कभी भी इस व्यवसाय में हानि अथवा अनादर का पात्र बनूँगा। फिर भी कभी-कभी आशा के विपरीत उसे कष्टों का सामना करना पड़ता है या हानि उठानी पड़ती है। वह व्यवसायी सोचता है कि यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा अनादर नहीं अपितु भगवान का अनादर है। कैसा अन्धेर कि मुझ जैसे राम भक्त की अप्रतिष्ठा या हानि हो रही है। उसकी समझ में कुछ बैठता नहीं, जिसे अगले पद में समझाया गया है।

(३) ऐ राम भक्त व्यवसायी! तेरा तराजू ठीक नहीं, वह पासंग (असंतुलित) है। सेर भी तीन पाव का है। इस घट-घट व्यापी राम को तूने अब तक नहीं पहचाना है और घट-घट तौल तथा पासंग तराजू से तू ने उन ग्राहकों को नहीं अपने आप को ठगा है। तिलक, भक्ति व राम नाम का ढोंग तू ने अपने व्यवसाय के प्रचार हेतु किया है। लेकिन वह पासंग तराजू और सेर की कमी, इसकी पूर्ति तुझे ही करनी पड़ेगी, वह कहीं भी नहीं जायेगी अर्थात् हानि या अपमान जो तुझे सहना पड़ रहा है वह तेरी ही करनी का फल है। तेरी राम-भक्ति का यह ढोंग तुझे इस कुकृत्य के फल भोग से बचा नहीं सकता है। तूने राम नाम का जप मात्र किया है। राम के यथार्थ रूप व गुणों का परिचय प्राप्त नहीं किया है। वह राम घट-घट व्यापी है। छोटे से बालक या तुच्छ जंतु से लेकर बड़े सयाने अथवा दीर्घकाय हस्ती आदि में भी एक समान व्याप्त है।

अस्तु तू ने अन्याय द्वारा जो यह धन संचित किया है वह मात्र अन्याय, अनर्थ और दुःखों का समूह ही एकत्रित किया है। तुझे अपने इस दुष्कृत्य की पूर्ति में स्वयं दुःख और अशांति भोगनी पड़ेगी इसमें सहायक अन्य कोई नहीं है।

(४३)

तुम बूझहु पंडित कौन नारि।
कर पल्लव के बल खेलि नारि, पंडित होय सो लेय विचारि।
कपरा नहिं पहिरे रहि उघारि, निर्जीवै सो धन अति पियारि ॥१॥
उलटी पलटी बाजे सो तार, काहुंहि मारे काहुंहि उबार।
कहं कबीर दासन के दास, काहुंहि सुख दे काहुहिं उदास ॥२॥

(क० बी० बसंत)

अर्थ :—(१) एक ऐसी नारी है जो कि हाथ के सहारे क्रीड़ा करती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। वह वस्त्र रहित है और निर्जीव (जड़) है। फिर भी धन से उसकी विशेष ममता है। यह नारी पंडितों के लिये विचारणीय है। ऐसी वह कौन सी नारी है, सोचिये। भावार्थ, विद्वानों एवं हिसाब-किताब रखने वाले धनियों के लिये सदैव उपयोगी वह नारी है। साथ ही निर्जीव और वस्त्र रहित भी है एवं सदैव हाथ के सहारे क्रीड़ा करने वाली उपयोगी एवं प्रिय वस्तु लेखनी है। जिस तरह गृहस्थ का स्त्री के बिना कोई गृह कार्य नहीं सधता, उसी तरह विद्वानों का धनोपार्जन एवं धनियों के लेन-देन का सभी हिसाब उस लेखनी के ही आश्रित है।

(२) वह पतला अंग एक तार की तरह दोनों ओर से कार्य करता है। अर्थात् लेखनी उलट-पलट कर भी लिख सकते हैं अर्थात् भलाई-बुराई दोनों की जा सकती है। लेख भी किसी को आनन्दप्रद या रक्षक होता है और किसी को प्राण घातक या फांसी पर लटका देने वाला होता है। दासों के दास संत कबीर कहते हैं कि वह किसी के लिये दुःख और अशांति का कारण बनती है और किसी को आनन्दप्रद या कल्याण मार्ग पर भी चलने में सहायक होती है।

भावार्थ :—हर एक कार्य में सहायक लेखनी विद्वानों और धनिकों का बड़ा सहारा है। उसके द्वारा वे धनोपार्जन भी करते हैं और उसका लेख भी किसी को सुख शांति दायक तथा किसी के लिए घातक कार्य करने वाला होता है। यहाँ पर जड़ वस्तु की शक्ति को प्रकट करते हुए संत कबीर कहते हैं कि यह जड़ तत्व भी चैतन्य की शक्ति से किसी तरह कम नहीं है। जिस तरह माया अदृश्य, जड़ तत्व विशेष प्रभावशालिनी है उसी तरह अन्य जड़ पदार्थों में भी बलवती शक्ति है, जो प्राणियों को इस सृष्टि में नाच नचाती है।

(४४)

तुम बूझहु पंडित कौन नारि।
काहू न ब्याहिल रहि कुमारि, यहि सब देवन मिलि हरिहि दीन्ह।
तेहि चारों युग हरि संग लीन, यह प्रथमहि पद्मिनी रूप आय ॥१॥
है साँपिन सब जग देखि खाय, या वर युवती वे वरहि नाहि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अति तेज तिया है रैन ताहि, कहै कबीर सब जग पियारि ॥२॥
वह अपने बल सबहि रहै मारि ।
(बसंत ५ क० बी०)

दृष्टिकोण :—समुद्र मंथन द्वारा जो चौदह रत्न प्राप्त हुए, उनमें लक्ष्मी जी भी प्राप्त हुईं, जिन्हें विष्णु भगवान को दिया गया। वे जितनी मोहक हैं उतनी ही दुःखद भी। वे विष्णु की प्रिया होते हुए भी अविवाहिता और संसार में व्यापक हैं।

अर्थ :—(१) ऐसी कौन-सी नारी है जो अविवाहिता है और नवयौवना बाला भी विद्वत् वर्ग इसका निश्चय करें। यह चारों युग में श्री विष्णु भगवान की बनकर रहती हैं। इनका ब्याह न होते हुए भी सब देवताओं की सम्मति से यह उन्हें सौंपी गई हैं। ऐसी नव यौवना बाला श्री लक्ष्मी जी हैं जिन्हें पहचानिए।

(२) प्रथम तो यह कमलासिनी हैं परंतु—इतनी दुःखद परिणामी हैं कि सर्पिनी की तरह सर्व जगत के प्राणियों को दुःखदायक भी हैं। अर्थात् यह मनमोहन होने से कमलासिनी होते हुए भी पूर्ण संसार में व्याप्त हैं और उनका स्पर्श भी नागिन की चोट जैसा दुःखद या प्राणघातक है। जिस प्रकार यह नवयौवना बाला होने के कारण सर्वश्रेष्ठ युवती है, उसी प्रकार इसके पाने वाले श्रेष्ठ नहीं हैं। क्योंकि जिन्हें लक्ष्मी प्राप्त होती है, उनका विवेक नष्ट हो जाता है। अहंकार और मायाचारी आदि दुर्गुण उनमें स्वाभाविक होते हैं। अत्यंत तेजस्विनी होते हुए भी जिस पर उसकी कृपा होती है उसके लिये रात्रि-सदृश भयानक समय आ जाता है। अर्थात् अधिकांश लक्ष्मी पति लक्ष्मी प्राप्त होने पर गर्व और अन्याय के कुचक्र में फँस जाते हैं। उनका विवेक और सुखशांति नष्ट हो जाती है।

संत कबीर कहते हैं कि संसार में सर्वप्रिय यह लक्ष्मी अपने प्रभाव से सबको नष्ट करने में सफल होती है। अर्थात् लक्ष्मी के प्रभाव से मनुष्य मान प्रतिष्ठा का पात्र होकर भी अन्याय और अनाचार की ओर प्रवृत्त होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह जीवित रहता हुआ भी मानवीय गुणों से रहित हो जाता है जिससे संत कबीर ने उसे मृतक माना है।

(४५)

बुढ़िया हंसि बोले मैं नितहि बारि,
मौसे तरुनि कहो कवनि नारि।
दाँत गये मोरे पान खात,
केश गये मोरे गंग नहात ॥१॥
नैन गये मोरे कजरा देत,
बैस गई पर पुरुष लेत।
जान पुरुषवा मोर अहार,
अनजाने का करौं सिंगार ॥२॥
कहंहि कबीर बुढ़िया आनन्द गाय,
पूत भतारहि बैठी खाय।

(बंसत ४ क० बी०)

दृष्टिकोण :—यह लक्ष्मी (माया) अनादि काल से इस सृष्टि की जननी है। इस लम्बे युग में वह वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर भी किसी तरह पुरुषार्थ हीन नहीं है। जितना ही वह आकर्षक होती है उतना ही लोगों को भ्रम में डालती है। उसने अपने पुत्र और साधुता के ढोंगियों को सदैव धोखा दिया है और यहाँ तक कि उसके आकर्षण में फँसने वालों का नाश हो गया है।

अर्थ :—(१) लक्ष्मी अति वृद्ध होने के उपरांत भी अपनी मोहकता और पौरुष का गर्व करते हुए हँस कर कहती है कि मैं सदैव नययुवती बाला हूँ। मेरी तुलना में कोई भी नवयौवना नारी नहीं ठहर सकती है। अर्थात् मेरा आकर्षण सभी नवयुवतियों के आकर्षण को पराजित करने वाला है, मेरी तरुणाई स्थायी है। पान खाते-खाते मेरे दाँत तक गिर गए हैं। धन-लुब्ध प्राणियों की हत्या का आक्षेप जो मुझ पर है वह किसी को अव्यक्त नहीं है। इस तरह मेरे होठ अब तक करोड़ों प्राणियों के रक्त से लाल हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई मुझे वृद्ध नहीं कह सकता है जाति भेद रहित गंगा की तरह सर्वस्पर्शी होने के कारण मेरा सिर गंजा हो गया है। इस तरह अभेदभाव से सबकी प्रेम-गंगा में निमग्न होकर लुभाते रहने से मेरी इज्जत (केश) उतर गई है।

(२) मेरे नेत्र नहीं हैं वह भी वृद्धावस्था के कारण नहीं अपितु अपनी चंचलता में मोहकता लाने हेतु मैंने कालिख (कजरा) का उपयोग किया है। इस तरह धन-लोलुपता के कारण लोग अविवेकी हो गये हैं और अन्धे होकर मुझ वृद्धा के स्पर्श के लिये लालायित रहते हैं। अथवा पुरुषार्थियों को लुभाने के लिये मैं अन्धी होकर पीछे पड़ गई हूँ। मेरी जवानी क्षीण हो गई है वह भी अवस्था के कारण नहीं, अपितु पर पुरुषों का स्पर्श करते-करते यह अवस्था आ गई है।

मेरा आहार क्या है! संभव है आपको ज्ञात न हो, क्योंकि मेरा आहार विवेक का भक्षण करना है, जो कि अपौरुषेय है। इसी तरह मेरा शृंगार भी अज्ञात के लिये है अर्थात् मेरा प्रलोभन भी अज्ञानियों के लिये है। ज्ञानवान पुरुष मेरी ओर आकर्षित नहीं होते हैं।

इस प्रकार वह वृद्धा (लक्ष्मी) आनन्दपूर्वक कालयापन कर रही है। उसने अपने प्रभाव से लक्ष्मी पुत्र अर्थात् धनवानों का वैष्णवत्व अर्थात् विवेक का नाश कर दिया है। संत कबीर कहते हैं कि वह लक्ष्मी अपने पति और पुत्रों का भक्षण (विवेकहीन) कर आनन्द मंगल गाती हुई काल बिता रही है।

(४६)

दुनिया ऐसी बावली पत्थर पूजन जाय।
घर की चक्की कोई न पूजै जिसका पीसा खाय ॥१॥
पत्थर पूजे हरि मिलै, तो कबिरा पूजै पहाड़।
यातें यह चाकी भली पीस खाय संसार ॥२॥

दृष्टिकोण :—इस पद में यह व्यक्त किया गया है कि यदि मनुष्य अपने सम्पर्क में आने वाले मनुष्य स्त्री, बालक और पशुओं के साथ सद्व्यवहार करता है, उनके सुख-दुःख और आवश्यकताओं में साथ देता है, तो यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृत्य उस पूजन से कहीं बढ़कर है, जिसके द्वारा परमपद प्राप्त हुए आदर्श पुरुषों की जड़ मूर्ति स्थापित कर निज कल्याण की भावना से द्रव्य व समय व्यर्थ खोता है। क्योंकि यह पूजन सुबुद्धि प्राप्त करने के लिए किया जाता है कि हम चैतन्य के आकार को प्राप्त जड़ मूर्ति के प्रति भी सद्भावना रखते हैं और इस देवता के देवत्व गुणों (विशेषता) को प्राप्त होकर हम भी लोक पूज्य हो जावें।

अर्थ :—इस लोक-मूढ़ता को देखिये जो रूढ़िवश उस पाषाण की तो पूजा प्रतिष्ठा करता है जो सदेह नहीं है, अर्थात् उसकी प्रतिमूर्ति है जो संसार से मुक्त होकर निराकार पद प्राप्त कर चुका है और संसार के राग-द्वेष मोह आदि प्रलोभनों से छुटकारा पाकर कृत-कृत्य हो चुका है। लेकिन भूल यह करता है कि वही पाषाण (घर की चक्की) जो हमारी दैनिक भोजन व्यवस्था में सहायक है उसको पूँछता तक नहीं। अर्थात् हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले घर के प्राणी और सम्पर्क में आने वाले अन्य सदेह जीवित प्राणियों के साथ अपना व्यवहार और प्रेम नहीं सँभालता है, जो कि कर्म-कारण बनकर हमें जन्म जन्मांतर तक भटकाता है। भावार्थ उन निराकार अप्रत्यक्ष महापुरुषों की आकृति (मूर्ति) बनाकर मेवा मिष्ठान्न चढ़ाने और भोग लगाने में जिस स्वार्थ की सिद्धि चाहता है उसकी पूर्ति साकार और नित्य व्यवहार में आने वाले प्राणी व तेरे निकटस्थ सम्बन्धी सज्जनों द्वारा सहज में हो सकती है, यदि तू ऐसा ही प्रेम और सेवा की भावना रखकर अपने प्रत्येक कार्य में सावधानी बरतता है, क्योंकि तेरे सुख और दुःखों का कारण देवता नहीं, अपितु ये लौकिक प्राणी और सगे सम्बंधी ही हैं जिनके साथ तेरा नम्र व दयापूर्ण व्यवहार नहीं है।

(२) यदि भगवत् प्राप्ति की इच्छा से तू इस जड़ मूर्ति की पूजा करता है, तो संत कबीर कहते हैं, मैं उस पूरे पहाड़ की पूजा करने को तैयार हूँ जहाँ से पाषाण लाकर यह मूर्ति बनाई गई है। क्या उस परमात्मा को इस तरह से किसी ने प्राप्त किया है, अथवा प्राप्त हो सकता है? कदापि नहीं। क्योंकि वह परमात्मा इस दुःखद संसार में आने की कामना ही नहीं करेगा। परमा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्मशक्ति की प्राप्ति की योग्यता तो तेरे में और पूर्ण सृष्टि में व्यापक सभी चैतन्य प्राणियों में है जिनके साथ सद्भावना और प्रेम का तेरा लक्ष्य ही नहीं है, तब तुझे मूर्त परमात्मा के दर्शन ही दुर्लभ हैं। अस्तु इस अमूर्ति आत्मा की मूर्ति बनाकर पूजने की अपेक्षा नित्य व्यवहार में आने वाले साकार ये प्राणी अथवा चक्की है जिसकी उपासना (देख-रेख व प्रेम) करने से संसार की क्षुधा (इच्छाएँ) तृप्त होती हैं। हमारा लोक व्यवहार सुधरने से ही आत्म कल्याण, सुख और इच्छापूर्ति संभव है। मूर्तिपूजा प्रारंभिक विधान मात्र है।

(४७)

आपुहिं कर्त्ता भए कुलाला, बहु विधि बासन गढ़ै कुम्हारा।
विधि ने सबै कीन्ह एक ठाऊँ, जतन अनेक के बने कनाऊँ ॥१॥
जठर आगि ति महं दीन्ह प्रजाली तामंह आपु भये प्रतिपाली।
बहुत जतन करि बाहर आया, तब शिव शक्ती नाम धराया ॥२॥
घर का सुत जो होय अयाना, ताके संग न जाहु सयाना।
सांची बात कहीं मैं अपनी, भया दिवाना और कि सपनी ॥३॥
गुप्त प्रगट है एके दूधा, काको कहिये ब्रह्मन शूद्रा।
झूठे गर्व भूलो मत कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई ॥४॥
जिन यह चित्र बनाया साँचा सो सूत्रधार।
कहंहि कबीर ते जन भले चित्रवंतहि लेहि निहार ॥५॥

(रमैनी २६ क० बी०)

दृष्टिकोण :—यह सम्पूर्ण सृष्टि किसी दूसरे की रचित नहीं। स्वयं यह जीव अपने विधिविधान के अनुसार शरीर प्राप्त करता हुआ कभी, ब्राह्मण, शूद्र या हिन्दू-मुस्लिम आदि समाजों में पहुँचता है और अहंकारवश मन के फन्दे में पड़कर जन्म-जन्मातर तक भटकता रहता है। स्वमूल रूप में जीवों में या उसके पोषण और रचना विधि में कोई भेद नहीं है कर्म भेद अवश्य है। जो इस सृष्टि के रहस्य उस जीव को समझ लेता है या आत्म-बोध को प्राप्त हो जाता है, वही सुखी है।

अर्थ :—(१) जिस तरह कुम्भकार चक्र, दण्ड, मिट्टी और सूत्र के द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विविध प्रकार के बर्तनादि वस्तुएँ बनाता है। उसी प्रकार यह जीव स्वयं कर्त्ता बन कर अपनी शरीर रचना के उपयुक्त धातु उपधातुएँ एकत्रित करता है। कर्मानुसार पंच तत्वों और मन चित, अहंकार आदि योग्य वातावरण का समुदाय अनेकों यत्न से बनाए गये विभिन्न आकार-प्रकार की इन्द्रियों की रचना में सहकारी होता है।

(२) माँ के गर्भ में जठराग्नि द्वारा परिपक्वता को प्राप्त होने वाली इस काया का संरक्षक यह जीव ही है। नौ-दस माह तक उस दुर्गन्धित गर्भ के भीतर अनेकों कष्ट भोगता हुआ पुष्ट होता है वह अपनी ही योग्यता से माँ की गर्भ-सन्निकट पेशियों में संचालन उत्पन्न कर यत्नपूर्वक बाहर निकलता है और जन्म के बाद वह पुरुष (शिव) या स्त्री (शक्ति) संज्ञा से सम्बोधित होने लगता है।

(३) यह मानव अपने कुल, जाति, रूप, विद्या या धनादि के गर्व में या तो अविवेकी (दीवाना) और एकान्तदृष्टि हो जाता है, अथवा आशा और तृष्णा के मकड़ जाल में फँसा हुआ भविष्य के सुखों का स्वप्न देखता है। इन सबका कारण वह चंचल मन (घर का सुत) है। यदि वह अज्ञानवश अपने वश में नहीं रहता है तो उसका साथ छोड़ देने योग्य है। अर्थात् मन को वश में करने के लिये नियम, संयम का पालन आवश्यक है। यह कथन मेरे स्वयं का सत्य अनुभव है ऐसा संत कबीर कहते हैं।

(४) व्यर्थ अभिमान में पड़कर अपने को उच्चगोत्रीय ब्राह्मण या शूद्र मानकर भेद मत कर। कोई भला बुरा या ऊँच नीच नहीं है, मूलतः रक्त और दूध एक ही शरीर का है। इन सभी दृश्यमान शरीरों में गुप्त आत्मा एक-सा ही है। पर्याय—दृष्टि से पृथक-पृथक शरीर धारण करने वाला कोई अपने को हिन्दू कहता है और कोई मुसलमान लेकिन यह कुल जाति भेद व्यर्थ है, आत्मोन्नति में बाधक है। अस्तु, इन लोक प्रपंचों में न पड़कर मूल तत्व की खोज कीजिये, जो कि विविध शरीर, रूप, गुण और योग्यता रखते हुए भी मौलिक तत्व की अपेक्षा एक मात्र आत्मा ही है अन्य नहीं।

(५) इस सृष्टि के रंगमंच का सच्चा सूत्रधार (प्रधान तत्व) वह एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा ही है जिसने कि अपने इस रूप का निर्माण किया। अर्थात् संसार की विभिन्न कलाओं और वेशों को धारण करने वाला यह जीव ही सत्य है और वही समझने योग्य प्रधान तत्व है। संत कबीर कहते हैं कि दुःखों से व्याप्त इस सृष्टि में वही विवेकी सुखी है जिसने इस चित्रकार आत्मा को जान लिया है।

भावार्थ :—विभिन्न रूप, गुण और योग्यता से परिपूर्ण यह आत्म तत्व ही इस सृष्टि का नियन्ता है। प्रत्येक आत्मा पृथक होते हुए भी समान गुणों वाला है। सब में व्यापक उस एक तत्व, एक रूप, और उस अदृश्य तत्व के प्रति राग-द्वेष रहित समता बुद्धि जाग्रत करना हो सुख प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट उपाय है। अस्तु, भेद भाव और राग-द्वेष को त्याग कर सन्मार्ग पर चलना ही सुख शांति पाने का उपाय है।

(४८)

नर को ढाढस देखो आई,
कछु अकथ कथो हे भाई।
सिंघ शार्दूल एक हर जोतिन, सींकस बोइन धावे,
बन की मुलुइया चाखुर फेरे, छागर भए किसाने ॥१॥
छेरी बाघहि ब्याह होत है, मंगल गावै गाई,
बन के रोझ घरि दाइन दीन्हों, गोहलो कन्धे जाई ॥२॥
कागा कापड़ धोवन लागे, बकुला किरमहि दातें,
माखी मूड़ मुंडावन लागी, हमहूँ जाव बराते ॥३॥
कहहि कबीर सुनौ हो संतो, जो यह पद अर्थावै,
सोई पंडित सोई ज्ञाता, सोई भक्त कहावै ॥४॥

(शब्द ५५ क० बी०)

दृष्टिकोण :—ज्ञान की अपूर्णता साधु और गृहस्थ दोनों को सुख से वंचित रखती है। मनुष्य ने अज्ञानता के कारण साधु एवं गृहस्थ दोनों में अकर्तव्य को कर्तव्य मानकर कितना अनर्थ किया है—यह इस पद में विवेचन किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ :—(१) अमूर्त आत्मा (राम) का मूर्त शरीर (माया) के साथ संयोग और उसके मोहवश दुःख और चिंताओं के बोझ को उठाने का धीरज जानने की वस्तु है। यह अवर्णनीय कार्य है जिसका कथन इस पद से ज्ञात कीजिये।

पुरुषार्थी चैतन्य (सिंघ) क्षणिक इस कायर अचेतन शरीर के संयोग से अपने भविष्य के लिये उद्यमी हुआ है। इस संयोगी तत्व (जीव) ने अपने मूल गुणों का ज्ञान न होने से तुच्छ सुखों की प्राप्ति का उपाय किया है।

व्यर्थ परिश्रम करने वाले भालू की तरह अथवा साधन का ढोंग करते हुए अपने शरीर को योगी रूप में बनाया है। यह अपने कर्तव्य के फलों को भोगने के लिये संसार से विरक्त बन कर अतृप्त इच्छाओं को या इन्द्रिय सुखों में तृप्ति मानने में लीन है।

(२) यह लम्पटी (बाघहि) इन अतृप्त इन्द्रियों (छेरी) को तृप्त, सुखी, (ब्याह) करना चाहता है। इस कृत्य में इन्द्रियाँ सुख मानती हैं। इस क्षणिक सुख को यथार्थ सुख मानने वाला मूढ़ प्राणी संसार के उलझनपूर्ण (रोझ) कार्यों में सरलता से लगा हुआ है। अर्थात् इन्द्रियों की तृप्ति हेतु मायाचारी, कपट, लोभ, क्रोध, दुःख आपत्तियों और मृत्युभय से भी चिंतित नहीं है। इन कार्यों में अपना विशेष उत्साह रखता है। इस प्रकार चिंता और आपत्तियों का बोझ अपने कंधों पर लिये फिरता है!

(३) कौआ सदृश्य मलीन प्राणी अपनी निर्मलता के लिए बाह्य प्रयत्न करते हैं, अर्थात् कपटी प्राणी भी ऊपरी वेश या वसनो द्वारा अपनी निर्मलता का प्रदर्शन करते हैं। कुछ लोग बकुल भक्ति दिखाते हुए भजन मंत्रादि का जप करते हैं। मक्खी के सिर सदृश तुच्छ परिग्रह वाले प्राणी त्यागी बन कर अपना कपाल चिकना कर साधु बने हैं, लेकिन हृदय में उनके तृष्णा का बड़ा भारी गर्त है जो तीनों लोक की सम्पत्ति की इच्छा रखता है। इस तरह के लोगों का समुदाय इस संसार में व्याप्त है जो कि सुख और शांति की कामना करता है।

(४) संत कबीर कहते हैं प्राणी मात्र के हृदय में व्याप्त उपर्युक्त बुराइयों को जो जानता समझता है। इस माया के विविध रूप और अपने अन्दर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याप्त तृष्णा के गर्त से जो सावधान है, वही पंडित है, ज्ञानी है और सच्चा भक्त भी वही है। आत्मा के अचिंत्य पराक्रम, अतीन्द्रिय सुख, आत्मज्ञान और आत्मदर्शन की इच्छा से संसार में रहता हुआ भी उस पंक से जो प्रथक है, वही ज्ञानी और सच्चा भक्त या प्रभु का उपासक है।

(४६)

साँई के संग सासुर आई, संग न सूती स्वाद नहिं मानी

गयो जोवन सपने की नाई ॥१॥

जना चार मिल लगन सोधाए, जना पाँच मिल मांडो छाए,

सखी सहेलरी मंगल गावें, सुख, दुख माथे हलदि चढ़ावै ॥२॥

नाना रूप परी मन भांवरि, गांठी जोरि भाई पतियाई,

अर्घा दें लै चली सुवासिन, चौके राँड भई संगसाँई ॥३॥

भयो विवाह चली बिन दुलहा, बाट जात समधी समुझाई,

कहै कबीर हम गौने जैबे, रब कंत लै तूर बजैवै ॥४॥

दृष्टिकोण :—यह मानव जन्म पाकर भी आत्मज्ञान का पुरुषार्थ न करके भविष्य के लिये पुनः सुख-दुख का कारण एकत्रित किया। आत्मशक्ति का आभास न होने से सुखद मार्ग को प्राप्त नहीं हुए। संत कबीर को वह समत्व मार्ग प्राप्त हुआ है। अस्तु वह हर्षित है।

(१) इस संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी अपने स्वामी (आत्मा) से युक्त है। वह आत्मभान न होने के कारण आत्म-सुख का अनुभव नहीं करता। भावार्थ संसार के प्राणियों की पराश्रय बुद्धि होने के कारण वह अपने अंतःकरण में व्याप्त परमात्म-शक्ति से अपरिचित है। अस्तु न तो उसका उसे अनुभव है और न उसमें व्याप्त अनंत सुख का आभास ही। इसलिये वह अपने पुरुषार्थ का दुरुपयोग करता हुआ इस अलभ्य मानव जन्म को स्वप्न-वत् व्यर्थ जाने दे रहा है।

(२) इस शरीर के लग्न (प्राप्ति) में सहयोगी क्रोधादि चव-कषाय है। यह पंचेन्द्रियों के व्यापार से युक्त है। अर्थात् स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इंद्रियों की प्रधानता से इनकी तृप्ति और साधना में व्यस्त रहता है। पूर्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कारी जीव जो इसके कुटुम्बी हुए हैं वह इन सभी कार्यों में हर्षित होते हैं। इस संसार में सभी कार्य हमारे भविष्य के सुख-दुख के निमित्त बनते हुए इस समय भी सुख-दुख का कारण होते हैं।

भावार्थ :—मनुष्य की कर्तृत्व बुद्धि एवं पराधीन दृष्टि के कारण प्रत्येक समय सुख-दुख की अनुभूति होती है जिससे दूसरों में राग द्वेष होने से भविष्य के कर्म तैयार होते हैं जो हमारे भविष्य के लिये दुखद या सुखद भूमिका तैयार करते हैं।

(३) इस मन की विकारी बुद्धि के कारण संसार की विभिन्न योनियों में यह मानव जन्म लेता और मरता है। इस कर्मबंध को दृढ़ता प्रदान करने-वाले सगे सम्बन्धी मोह के प्रधान निमित्त हैं। हमारी सहयोगिनी यह अर्द्धां-गिनी (स्त्री) भी इन विविध योनियों में भ्रमण कराने वाली है। चतुर्गतियों में श्रेष्ठ यह मानव जन्म पाकर भी आत्म-श्रद्धा का योग न मिलने से उसकी उपस्थिति में दुखी रहता है। अर्थात् मानव जन्म सभी योनियों में श्रेष्ठ है। देवतागण भी इसे पाने को उत्सुक रहते हैं। ऐसे इस जन्म को पाकर भी यह अज्ञानता के कारण दुखी, अतृप्त और असंतुष्ट ही रहता है, यह बड़े ही खेद का विषय है।

(४) सुखद प्रसंग या संग पाकर भी वह अनुभवहीन रहता है। इसे अनेकों अवसर आत्मानुभव के प्राप्त होते हैं। यहाँ तक कि बड़े-बड़े विद्वान और साधुओं से समता के बखान सुनता है परंतु फिर भी यह अज्ञानी ही रहता है। संत कबीर कहते हैं कि मैं तो अपने प्रियतम (आत्मा) को पा चुका हूँ अतः आनन्द ध्वनि करते हुए इस संसार से मुक्त होऊँगा।

(संत कबीर को आत्मानुभव होने से समत्व-जाग्रत हुआ अस्तु वह दृढ़ता पूर्वक अपने मुक्त होने और आत्मसुख के विषय में कहते हैं।)

(५०)

पांडे बूझि पियहु तुम पानी।
जेहि मटिआ के घर मंह बैठे, तामें सृष्टि समानी ॥१॥
छपन कोटि जादौ जहाँ भीजे, मुनि जन सहस अठासी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पैंग पैंग पैंगम्बर गाड़े सो सब सरि भौ माटी ॥२॥
मच्छ कच्छ घरियार बियाने रुधिर नीर जल भरिया,
नदिया नीर नरक बहि आवैं पशु मानुष सब सरिया ॥३॥
हाड़ झरीझरि गूद गलीगलि, माँस कहाँ ते आया,
सो लैं पांडे जेवन बैंठे, मटियहिं छूति लगाया ॥४॥
वेद कितवे छाड़ि देउ पांडे, ई सब मन के भरमा,
कहहि कबीर सुनौं हो पांडे, ई सब तुम्हरो करमा ॥५॥
(क० बी० शब्द ४७)

दृष्टिकोण :—दूत मान कर एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से द्वेष करना अधर्म है। यह न मानकर खानपान में ही पतित हो रहे हैं। जो अखाद्य है उसकी छूत नहीं मानते हैं पानी की छूत मानते हैं।

(१) हे मानव ! तू अपने कुलजाति के अभिमानवश विजातियों द्वारा पानी के छू जाने पर उनसे द्वेष करता है। तुझे यह विदित नहीं है कि जिस मिट्टी के घर में तू रहता है उसमें करोड़ों नहीं सृष्टि के अधिकांश प्राणियों का कलेवर सड़ गल कर मिल गया है। उसकी छूत तुझे कुछ भी नहीं लगती है अथवा तेरा शरीर जो इतना घृणित है कि उसमें व्याप्त जीवाणु यदि मानव रूप धारण कर लें तो सृष्टि में समावें नहीं। तेरा यह शरीर ही सृष्टि का मूल है तू इससे अनभिज्ञ है।

(२) इसी भूमि पर छप्पन करोड़ यदुवंशियों का मृतकलेवर गलकर मिट्टी हो गया है। इसमें अठासी सहस्र मुनिगण एवं पग-पग पर पैगम्बरों (धर्मानुयाइयों) का कलेवर गड़ा हुआ है। ये सब सड़कर मिट्टी में मिल गए हैं।

(३) यह जल राशि जिसे तू अत्यंत पवित्र मानता है, अपनी वाह्य शुचिता के लिये जिस जल को तू पवित्र मानता है। उस जल में मच्छ, कछुए, तथा घड़ियाल जन्म लेते हैं उनकी जननी उसी जल में प्रसव करती हैं। उसी जल में उनका रुधिर और मल मूत्रादि (अश्प्रष्य) अस्पर्श्य वस्तु भर गई हैं। नदी के जल में पशु मनुष्यादि सभी मरते सड़ते हैं, जो कि नरकों की तरह घृणित जल से पूर्ण हैं, उसको तू पवित्र मानता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) इतना ही नहीं हाड़ और मांस जो कि साक्षात् मल-मूत्र की ही उपज है। गुदा और अतड़ियों में जहाँ मल भण्डार है, उसी मांस को तू अपने भोज्य पदार्थों में सम्मलित करता है। तुझे क्या उसकी उत्पत्ति एवं अस्पृश्यता की सुधि नहीं है ? इस मिट्टी के घट आदि की तो तू छूत मानता है, लेकिन जो प्रत्यक्ष अपवित्रता का भण्डार मद्य-मांसादि है उसका उपयोग करने में जरा भी हिचकता नहीं है।

(५) ऐ पंडितप्रवर ! तू इन वेद शास्त्र या कुरानादि को एक ओर कर दे। यह सब तो तेरे ही रचित हैं। तेरी मिथ्याबुद्धि और अविवेक यह तो प्रत्यक्ष तेरे कर्तव्य बने हुए हैं। इन पर दृष्टि क्यों नहीं डालता ? अर्थात् शास्त्रो की गम्भीर चर्चाओं और विद्वत्तापूर्ण उपदेशों से संसार को क्यों ठगता फिरता है ? जब कि तेरा खानपान व आचरण ही संशयपूर्ण और उच्च कुलीन नहीं है। संत कबीर तुझे सावधान करते हैं, तू अपनी भ्रमबुद्धि हटा-कर उचित मार्ग पर चल।

(५१)

आदम आदि सुधि नहिं पाई,
माया हवा कहाँ से आई।
तब नहिं होते तुरुक रु हिन्दू, माय के रुधिर बाप के बिन्दू,
तब नहिं होते गाय कसाई, तब बिस मिल्लह किन फरमाई ॥१॥
तब नहिं होते कुल औजाती, दोजख भिस्त कौन उत्पाती,
मन मसले की खबरि न जाना, मति भुलान दुइ दीन बखाना ॥२॥

(कबीर बी० रमैनी ४०)

दृष्टिकोण :—आदि और अंत की कथाएँ शास्त्रों और कुरानों में उल्लिखित हैं, लेकिन जाति पाँति और स्वर्ग नरक की रचना करने वाले इन विद्वानों ने ही अपने स्वादपुष्टि के लिये अन्य अविवेकपूर्ण कथानक जोड़ दिये हैं वह ध्यान देने योग्य हैं।

(१) अर्थ :—हे विद्वान ! तूने आदि पुरुष या आदम हौआ का दर्शन तो किया नहीं। तुझे विदित नहीं कि बिना स्त्री जाति के आदि पुरुष किस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरह सृष्टि में आया और उसका वायु सदृश्य सृष्टि व्यापी स्त्री जाति से संयोग कैसे हुआ।

पूर्वकाल में जाति भेद था नहीं, न कोई हिन्दू था न कोई इस्लाम ही था। न तो माँ और बाप रजवीर्यादि के संयोग द्वारा संतानोत्पत्ति करते थे। न तब गायें और उनकी कुर्बानी करने वाले कसाइयों का कहीं उल्लेख मिलता है। उस समय इस कुर्बानी हेतु बिसमिल्लाह का फरमान किसने किया, यह सब तेरा मन गढंत है जो कि तूने अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिये इन कुराण और पुराणों में बाद में जोड़ दिया है।

(२) पूर्वकाल में जबकि उच्च और नीच जातियाँ नहीं थीं तब उच्च कर्म या निंद्यकर्म का फल स्वर्ग और नरक कहाँ से आया? इन नवीनताओं को बनाने वाला या शास्त्रों का गढ़ने वाला कौन है और क्या आदि पुरुष ही इसका लेखक है? तुझे अपनी मिथ्याबुद्धि की जानकारी नहीं है। अविवेक के वश में होकर तूने हिन्दू-मुसलमान या उच्च-नीच कुल की कल्पना कर उन्हें व्यवहारिकता प्रदान की है। अर्थात् यह सब तूने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये भ्रमवश किया है।

(३) संयोग ही कार्य का उत्पादन करता है अर्थात् योगों (मन वचन और क्रिया) की अस्थिरता, जिसका मूल कारण अविधा है, वही भ्रमवश यह सब कार्य करने को बाध्य करता है। बिना योग और क्रोधादि चार प्रकार की कषायों के कोई अनिष्ट नहीं होता है। इस मानव ने अपनी इन्द्रियों को पुष्ट करने और जिह्वा के स्वाद के लिये क्या-क्या अनिष्ट नहीं किया है?

(५२)

एक अचम्भा देखो रे भाई, ठाढ़ा सिंह चरावै गाई,
पहिले पूत पीछे भई माई, चेला के गुरु लागै पाई॥ १॥
जल की मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई,
बैलहि डारि गूनि घर आई, कूता कू ले गई बिलाई॥ २॥
तलि कर शाखा उपरि करि मूल, बहुत भांति जड़ लागे फूल,
कहैं कबीर या पद को बूझै, ताकों तीन्यू त्रिभुवन सूझै॥ ३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टिकोण :—विपरीत बुद्धि ही संसार का मूल कारण है। मनुष्य अपनी योग्यता पर ध्यान न देकर विपरीत पुरुषार्थ करता है इससे अशांति पूर्ण भव-भ्रमण के फन्दे में पड़ गया है ज्ञानियों के लिये यही आश्चर्यकारी कथा है। संत कबीर के इस पद में विपरीत कथानक रखने का तात्पर्य मानव की मिथ्या बुद्धि की ओर संकेत है।

अर्थ :—(१) संसार में जो विचित्रता दिखाई देती है वह बहुत आश्चर्यजनक है। मानव का मन (सिंह) इंद्रियों के पोषण में अपने पुरुषार्थ को खो चुका है। इस शरीर को प्राप्त करने के पश्चात ही माया का आडम्बर उसे अपने आधीन कर लेता है। अस्तु विषय भोगों (चेला) के दासत्व में यह जीव (गुरु) अपनी प्रतिष्ठा खो रहा है।

भावार्थ :—मन की दशा राग द्वेष से विचलित रहती है अस्तु यह प्राणी माया के आडम्बर में फँस कर विषय भोगों का दास होकर अपनी योग्यता और प्रतिष्ठा खो रहा है।

(२) जलवत् निर्मल चरित्रधारी यह जीव परिग्रह के लोभ में फंसा हुआ, माया-बुद्धि में संलग्न है अस्तु लोभ-प्रवृत्ति को विद्वान या भक्तों ने विशेषरूप से अपनाया है। यह प्राणी परिग्रहवाद (गूनि) को स्थान देकर अपने त्याग पुरुषार्थ (बैलहिं) से च्युत हो गया है। तपस्या और भक्ति पर भी लोभ कषाय का अधिकार है अर्थात् लोभ ने भक्तों को भ्रष्ट कर रक्खा है। इस तरह भक्त, विद्वान और तपस्वी, सभी लोभ के आधीन होकर अपने त्यागपुरुषार्थ से च्युत हो गए हैं।

(३) ऊर्द्ध-स्वभावी आत्मगुणों को छोड़कर उपर्युक्त विपरीतता के वश में होकर यह प्राणी निम्नस्तर के कार्य व्यवहारों पर उतर आया है। इसके अज्ञानता के कार्यों से दुखद परिणाम (फल) प्राप्त होते हैं। वह अनेकों प्रकार के दुखद कर्म-फलों के कारण यत्र-तत्र दुखी दिखाई देता है। संत कबीर कहते हैं कि जो प्राणी अपनी विपरीत मान्यता और दुखद कर्मों की ओर से सावधान है, सचेत है, वही प्राणी त्रैलोक्य ज्ञाता या त्रिभुवनपति देवता हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ :—माया, मोहजनित रागद्वेष के कारण यह मानव सुखद क्रिया कलापों में दुख की कल्पना होने से आत्मविरोधी कार्यों को सुखद मान बैठा है। यही संसारी प्राणियों की मिथ्यबुद्धि है जो विवेक को स्थान नहीं दे सकती है। यदि कोई इस तथ्य को जानकर सद्व्यवहार और विवेक का महत्व ज्ञात कर लेता है तो वह त्रिभुवनपति केवलज्ञानावस्था को प्राप्त कर सकता है।

(५३)

उनई बदरिया परिगौ संझा,
अगुआ भूला वनखंड मंझा।
पिया अंते धनि अंते रहई।
चौपरि कामरि माथे गहई ॥ १ ॥

साखी—फुलवा भार न ले सकै, कहै सखियन सों रोय।
ज्यों-ज्यों भीजै कामरी, त्यों-त्यों भारी होय ॥ २ ॥

(क० वी० रमैनी १५)

पद का दृष्टिकोण :—मोहाच्छन्न प्राणी को अज्ञान अन्धकार घिरा हुआ है। ज्यों-ज्यों वह कर्म फलों से छूटने के लिये कर्माडम्बर की ओर झुकता है त्यों-त्यों और कर्मभार से दबता जाता है। इस तरह भव वन में भटक रहा है। जितने उपाय करता है वह सब उसे अधिक जकड़ते जाते हैं।

अर्थ :—(१) इस भव वन को पार करने के लिये स्त्री और पुरुष सभी प्रयत्नशील हैं, क्योंकि सभी सुखद भोगों के परिमाण उसे दुखद प्रतीत होते हैं।

इस भव वन में भटकते हुए प्रमुख पथिक (जीव) मार्ग भूल गया है, क्योंकि मोह माया के बादलों में घिर जाने से उसे अंधकार के कारण कुछ सूझता नहीं है। इस अंधकार में जीव का देवत्व (पिया, पुरुषार्थ) बिछुड़ कर पृथक हो गया है और वह सशरीर (धनि) अलग भटक रहा है। उसके सिर पर कर्म फलों का बोझ है जो कि मन बहलाव के हेतु कषायों के रूप में उसके हिस्से में आया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—वन पार करते हुए दो प्राणियों के रूप में यह दृश्यमान जीव अपने मनोरंजन या भोगने की इच्छा से कुछ कार्य करता है जो कि एक कर्मफल रूपी बोझ की तरह उसके सर पर रक्खा हुआ है। प्रियतम (आत्मरुचि) का संग छूट जाने से प्रियतमा (जीव) उस बोझ को लिये उसे खोजती हुई भटक रही है।

(२) फूलों सदृश्य सुकोमल शरीर धारी यह जीव (फुलवा) इतना बोझ नहीं उठा सकती है। अस्तु, अपनी दुख गाथा परस्पर सहेलियों, मित्रों में रो-रो कर कहती है। ज्यों-ज्यों यह जीव कर्मफलों को भोगता हुआ दुख या सुख का अनुभव करता है त्यों-त्यों उस सुख-दुख के रोमांच से नेत्रों की आर्द्रता बढ़ती है। उधर वर्षा के कारण उसका बोझ भी बढ़ता जाता है।

भावार्थ :—आत्मशक्ति से अपरिचित मानव मोहाच्छन्न बुद्धि के कारण संसार में दुख-सुख की कल्पना करता हुआ पूर्वकर्मों को भोगते हुए नित नवीन कर्मों का संचय करता रहता है। इष्ट-अनिष्ट की कल्पना और कर्तृत्व बुद्धि इस मोह-घन की वृष्टि का जल है अर्थात् अज्ञान का फल है जिसके कारण इसकी कर्म की कामरि का बोझ भीगनें पर बढ़ता ही जाता है।

(५४)

चलत-चलत तहं चरण पिराना, हारि परै तहाँ अति रिसियाना,
गन गंध्रप मुनि अतं न पाया, हरि अलौप जगा धंधे लाया ॥ १ ॥
गहनी बंधन बान न सूझा, थाकि पैर तह किछुउ न बूझा,
भूलि परे जिय अधिक डेराई, रजनी अंधकूप होइ आई ॥ २ ॥
माया मोह उहाँ भरपूरी, दादुर दामिनि पवनहुँ पूरी,
बरसे तपै अखंडित धारा, रैनि भयावनि किछु न अधारा ॥ ३ ॥
साखी—सबै लोग जहंड़ाइया, अंधा सवै भुलान।
कहा कोई न मानहिं, सब एकै मांहि समान ॥ ४ ॥

(क० बी० रमैनी १६)

दृष्टिकोण :—भव सागर पार करने के लिये सभी प्रयत्न विफल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए। एक आत्म तत्व की प्रतीति पर किसी की दृढ़ता नहीं इससे सभी दुखी हैं। अज्ञानतावश भटक रहे हैं।

अर्थ :—(१) भवबन में भटकते हुए यह जीव असमर्थ हो गया है। पराजित होने के कारण अत्यंत दुखी और क्रोधित हुआ है। इस संसार के बड़े-बड़े ऋषिगण तथा गंधर्व मुनि तपस्या करके ज्ञानोपार्जन कर संसार का अंत नहीं पाए हैं। श्री विष्णु भगवान भी इस भ्रमपूर्ण संसार में कारण पाकर भटकते रहे हैं।

(२) कर्मों के प्रगाढ़ बंधन से छूटने के लिये सैकड़ों प्रयत्न किए गए, किन्तु कोई यथार्थ उपाय इससे छूटने का प्राप्त नहीं हो सका। इस संसार में सभी प्रयत्नशील मानव इन कर्मबंधनों को निरस्त करने में थक गये हैं। उन्हें कोई सच्चा उपाय अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। अपनी भूलों पर पश्चात्ताप करता हुआ भी यह जीव अत्यंत भयभीत है क्योंकि अज्ञानांधकार में उसे कुछ सूझता नहीं है। यह संसार उसके लिये अंधकूप सदृश्य है जहाँ से निकल पाना असंभव प्रतीत होता।

(३) इस सृष्टि में माया और मोह का ही बोलबाला है। अर्थात् सभी पदार्थ क्षणिक होते हुए भी विशेष आकर्षक और सुखद प्रतीत होते हैं इष्ट अनिष्ट में प्रेम व द्वेष के कारण अपने पराए की उलझन में वह मकड़ी की तरह उलझा हुआ इस संसार से निकलने के लिये असमर्थ है। सदा छल-कपट से भरे हुए इस संसार में उसे आत्म-निर्भर होने का अवकाश ही नहीं। विषय भोगों को पुष्ट करने वाले इन्द्रियाकर्षक द्रव्यों की बहुलता अपनी ओर आकर्षित करती है। वह बिजली की चमक सदृश्य सुखाभास की ओर ललचाता है। इस तरह चारों ओर से चंचलता का वातावरण इस जीव को व्यग्र किये हुए हैं। किसी भी परिस्थिति में इसे चैन नहीं है, अस्तु सदैव चलायमान और व्यग्र हुआ इस संसार में भटक रहा है।

वर्षा और ताप की अविरल धाराएँ प्रवाहित हैं, जिससे भयानक अज्ञान अंधकार में प्रतिक्षण वह दुख-सुख के हिंडोले में अस्थिर हुआ झकोरे खा रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ :—इष्ट वस्तु की इच्छा उसे संसार में कार्य रत रहने को बाध्य करती है। मार्ग में आने वाली बाधाएँ उसे विलम्ब और अनिष्ट की आशंका से विरोधी तत्वों के प्रति द्वेष और विरोध से उद्वेलित करती है, इस तरह सदैव वह राग-द्वेष की चक्की में अनिच्छापूर्वक पीसा जा रहा है। इस अंधकार निशा में भयभीत हुआ वह निराधार होने से अत्यंत दुखी है।

(४) इस प्रकार सभी जन अन्धों की तरह भूले भटकते फिर रहे हैं। सभी इस माया और मोह के कारण बुरी तरह ठगाए हुए भ्रमित है, विह्वल व दुखीहो रहे हैं। संत कबीर कहते हैं कि सत्य कथन मानने को कोई तैयार नहीं है, चैतन्य तत्व ही उपादेय और एक है। सभी समत्व-बुद्धि ग्रहण कर सुखी हो सकते हैं। आत्म तत्व को पहचान कर अपने एकत्व रूप को प्राप्त हो, जहाँ पर न कोई इच्छा है और न किसी तरह की बाधा ही है।

(५५)

काषायों का निवारण

जस जिव आपु मिलें अस कोई, बहुत धर्म सुख हृदया होई,
जासों बात राम की कही, प्रीत न काहू सो निरवही ॥ १ ॥
एकै भाव सकल जग देखी, बाहर परे सो होय विवेकी,
विषय मोह के फंद छुड़ाई तहाँ जाय जहं काटु कसाई ॥ २ ॥
अहै कसाई छूरी हाथा, कैसहु आवै काटौ माथा,
मानुष बड़ा-बड़ा होय आया, एकै पंडित सबै पढ़ाया,
पढ़ना पढ़हु धरहु जनि गोई, नहिं तो निश्चय जाहु बिगोई ॥ ३ ॥

साखी—सुमरन करहु राम का, छाँड़हु दुख की आस।
तर ऊपर धरि चापि है, जस कोल्हू कोटि पचास ॥ ४ ॥
(क० वी० रमैनी १७)

दृष्टिकोण :—माया मोह की उलझन से बचने के लिये कषाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपी कसाइयों से छुटकारा पाने का उपाय करो। यदि आत्मा "राम" का अनुभव नहीं हुआ तो तुझे यंत्रणा अनिवार्य है।

अर्थ :—(१) मैंने आत्म तत्व के संबन्ध में जिन-जिन बंधुओं से चर्चाएँ छेड़ी किसी से भी साम्य नहीं हुआ अर्थात् वार्ता में अवश्य विरोध हुआ, जिससे द्वेष ही बढ़ता दिखाई दिया। अस्तु कोई यदि अपने स्वभाव का प्राप्त होता है तो आत्मधर्म की चर्चा भी निर्विरोध चलती है और हृदय को अत्यंत आनन्द और उल्लास प्राप्त होता है। उपर्युक्त भावना संत कबीर ने इस पद में व्यक्त की है। विचारों में साम्य होने से हृदय उल्लसित होता है।

(२) सम्पूर्ण सृष्टि के जीवों में व्याप्त एक-सा मिथ्या भाव देख कर जो क्षुभित न होकर संसार से निर्लिप्त हो जावे, वही विवेकी मानव है। वह मोह एवं इन्द्रियों के विषय-कषायादि से विरक्त होकर ऐसी अवस्था को प्राप्त हो सकता है जहाँ से वह जग व्यापी चारों कषायों (काम, क्रोध, मान, लोभ) को पूर्णतः पराजित कर उनके द्वारा प्राप्त बंध अवस्था को काट फेंकता है। वीतराग अवस्था ही इतनी बलशाली होती है, जो कषायों की सैन्य पर बिना अस्त्र-शस्त्र के प्रहार कर उस पर विजय प्राप्त कर सकती है।

(३) संसार में तेरा यदि कोई वैरी है तो वह कषाय ही है। यह कषाय ही वह बलशाली कषाई है जो मानवता को कत्ल करने के लिये अपने पास तेज छुरी लिये रहता है। इस बलशाली दुश्मन से सदैव सावधान रहना चाहिये, वह किसी भी अवस्था में अपने पास न आने पाये, जैसे ही कोई कषाय भाव आपको प्राप्त होवे, उसको निर्मूल करने के लिये सदैव सतर्क रहें।

इस सृष्टि में एक से एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति तथा ज्ञानी पुरुष हुए हैं। सभी को एक ही विषय का उपदेश दिया गया है। उपदेष्टा भी वही एक है जो प्राणी मात्र के लिये सौख्य मार्ग का उपदेश करता है। मत-भेद या विषमता बढ़ाने वाला कोई भी विद्वान, पंडित नहीं कहला सकता है। अस्तु, आत्मधर्म या आत्मसुख का ज्ञान करना आवश्यक है। इस ज्ञान को प्राप्त होकर, विद्वता को सँभाल कर रख नहीं देना चाहिये। अपितु उसे अपने व्यवहारिक जीवन में लाना चाहिये। अस्तु, जो भी ज्ञान प्राप्त करें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसको अपने व्यावहारिक जीवन में अवश्य उतारें अन्यथा दुख और भ्रम में पड़े रहोगे।

(४) यदि दुखों से छूटना चाहते हो तो इस आत्मा-राम का स्मरण करो इसकी अनंत शक्ति और सौख्य का अनुभव करो। स्वानुभव और समता ही दुख व कष्टों से निवृत्ति दिला सकती है, अन्यथा यह कषाएँ तुझे इस तरह दुख देवेंगी जिस तरह पचासों यंत्रों (घानियों) के नीचे दबे हुए व्यक्ति को मिलता है। समय रहते सचेत होकर यथार्थ दुश्मन से सामना करने को कटिबद्ध हो जाओ।

(५६)

भाई रे गइया एक बिरंचि दियो है,
गइया भार अभारभौ भारी—
नौ नारी को पानी पियतु है, तिरषा तेऊन बुझाई ॥ १ ॥
कोठा बहतर औ लौ लावै, बज्र केवार लगाई।
खूंटा गाड़ि दवरि दृढ़ बांधेउ तैयो तोर पराई ॥ २ ॥
चार वृक्ष छौ शाखा वाके, पत्र अठारह भाई।
एतिक ले गम कीन्हिस गइया-गइया अति हरहाई ॥ ३ ॥
ई सातौं औरौं हैं सातों, नौ औ चौदह भाई,
एतिक लै गइया खाय बढ़ायो, गइया तेऊ न अघाई ॥ ४ ॥
पुरता में राती है गइया सेत सींग है भाई।
अवरण बरण किछौ नहिं वाके, खद्ध अखद्धहिं खाई ॥ ५ ॥
ब्रह्मा विष्णु खोजले आए, शिव सनकादिक भाई।
सिद्ध अनन्त वाके खोज परे हैं, गइया किनहु न पाई ॥ ६ ॥
कहंहि कबीर, सुनौ हो संतो, जो यह पद अरथवि,
जो यह पद को गाय विचारे, आगे होय निरवाहै ॥ ७ ॥

(क० वी० शब्द २८)

आत्मा अविकारी है। शरीर के संयोग से हम उसे विकारी मान बैठे हैं।

अर्थ :—(१) विधि-विधान से यह जीव मूर्त रूप धारण किए है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा सृष्टि व्याप्त इस ब्रह्म तत्व ने स्वयं यह मूर्त रूप धारण किया है जो कि वात्सल्य और समता की खानि है। संसार में रमण करते हुए कर्म बोझ के कारण यह बहुत बोझिल हो गया है। वर्तमान अवस्था में नवद्वार रूपी इस मानव योनि को प्राप्त होकर यह जीव अपनी इन्द्रियों के पोषण में लगा हुआ है, इतने पर भी इसकी इच्छाएँ तृप्त होने की अपेक्षा अधिक तीव्र होती जा रही है।

(२) शरीर के बहत्तर कोष्ठकों में जीव व्याप्त रहता है, यह अपनी स्थिति के विषय में आयु की सीमा मानकर निश्चित रहता है। इस जीव को बाँधने वाला मोह है, जिसके कारण यह दृढ़ता से कस कर जकड़ा हुआ है। इतने पर भी इस बंधन को तोड़ कर कब मृत्यु को प्राप्त हो जावे, यह निश्चित नहीं। भावार्थ शरीर पर अत्यंत आशक्त यह जीव इस शरीर में पूर्णतयाः व्याप्त है। अपने कुटुम्बियों के मोह बन्धन में जकड़ा हुआ है। फिर भी समय आने पर यह सबका मोह छोड़ कर चाहे जब मृत्यु को प्राप्त हो जाता है अर्थात् इस देह को छोड़ कर दूसरी देह धारण कर लेता है।

(३) इस जीव की प्रधान चार गतियाँ हैं और प्रमुख छै काय (शरीर) हैं। इन सभी शरीरों में अठारह दोष व्याप्त हैं जिसके कारण यह सदैव दुखी है। इस जीव ने अपने इतने रूपों को प्राप्त होकर संतोष किया है। वैसे तो यह अनेकों जन्म धारण करने वाला है अर्थात् उपर्युक्त प्रधान, रूप और व्याख्या इसके चौरासी लाख जन्मों की पहचान है जिसमें यह जन्म-मरण धारण कर भटक रहा है।

(४) इसके भ्रमण स्थल सात स्वर्ग तो हैं ही, सात नरक भी हैं। इस तरह यह नव खंड और चौदह भुवन रूप सृष्टि में जन्म-मरण धारण करता फिर रहा है। इन सब स्थानों के सुख-दुख यह भोग चुका है। फिर भी यह इन भोगों से तृप्त नहीं हुआ है। अर्थात् यह अभी भी आत्म-कल्याण की बात पसंद न कर भोग कथा में ही अनुरक्त है। (चल-चित्रों द्वारा अपने ही विभिन्न व्यवहार और अवस्थाओं के दृश्य देखते हुए भी तृप्त नहीं हुआ है।)

(५) यह जीव अपनी अपूर्णता से संतुष्ट नहीं है वह अपनी पूर्ण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्था की इच्छा रखता है। वह निर्विकार है, और सम्पूर्ण गुणों की खानि है। इसके न तो कोई रूप है और न कोई रंग, न तो वह कोई खाद्य अथवा अखाद्य से तुष्ट होता है। यह जीव अमूर्त और अरूपी है, अनंत गुणों का भंडार है और अशरीरी होने के कारण खाद्य अथवा अखाद्य किसी भी तरह के पौष्टिक भोजन की इच्छा से रहित है।

(६) इस निर्णायक दशा को ब्रह्मा, विष्णु, महेश से सनकादि ऋषियों ने प्राप्त किया है। इसी सर्वोत्तम अवस्था की खोज में अनन्त सिद्ध योगी संलग्न है और अभी तक उसे प्राप्त करने में समर्थ नहीं हुए हैं अर्थात् ऋषि मुनियों की सिद्धि साधना उसी निर्विकार अवस्था को प्राप्त करने के लिये चल रही है, जो कि वात्सल्य और समता की खानि आत्मदशा को प्राप्त नहीं हो सके हैं।

(७) संत कबीर कहते हैं, हे महापुरुष, जो इस पद का अर्थ लगाकर उक्त अवस्था (गाय) का विचार करते हैं उनका निर्वाह हो सकता है। वही ज्ञानी योगी और सिद्ध है। भावार्थ—जीव अमूर्त और जन्म जरा मृत्यु से परे ज्ञान-स्वभावी एक तत्व है। परंतु इसकी प्रारंभिक अवस्था सभी धातुओं के समान इस लोक में विकार युक्त ही है। खान से निकले हुए सुवर्ण रौप्य आदि धातुओं के सदृश्य यह भी कीट कालिमा युक्त ही है। इस संसार-दशा में अपनत्व मानकर यह मायामोह के वश हो भटक रहा है। इस अनर्थ से स्व-अर्थ का लक्ष्य कर यह युक्त अवस्था को प्राप्त हुआ एक मात्र चैतन्य सत्य, निर्विकार, शुद्ध, स्वतंत्र रूप हो जाता है। वही महापुरुष प्रसंशनीय है जो इस अवस्था का निर्वाह करता हुआ लक्ष्य-सिद्धि में सफल हो जावे।

(५७)

भाई रे नैन रसिक जो जागे।

पार ब्रह्म अविगत अविनासी, कैसहु कै मन लागै ॥ १ ॥
अमली लोग खुमारी तृष्णा, कतहुँ संतोष न पावै,
काम क्रोध दोनों मतवाले, माया भरि-भरि आवै ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्म कुलाल चढ़ाइन भाठी, लै इन्द्री रस चाहै,
संगहि पाँच ह्वै ज्ञान पुकारे, चतुरा होय सो पावै ॥ ३ ॥
संकट सोच पोंच यह कलि महं बहुतक व्याधि शरीरा,
जहाँ धीर गम्भीर अति निश्चल, तहाँ उठि मिलहु कबीरा ॥ ४ ॥
(क० बी० शब्द २९)

दृष्टिकोण :—मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह के वश अचेत है। इसकी जाग्रतावस्था निर्मम निश्चल व निः परिग्रह है। जिसने यह अवस्था प्राप्त कर ली है वही श्रेष्ठ है।

अर्थ :—(१) इस शरीर का नेत्र सदैव सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होता है। यथार्थ सौन्दर्य प्रेमी वह है जो संसारी माया मोह से अचेत न हुआ हो अर्थात् अपनी शुद्धावस्था से परिचित और श्रद्धावान् हो। इस जीव की जो परमात्म दशा है वह नित्य है, अमर है और यही सत्य है उस ओर किसी भी प्रकार निष्ठा जाग्रत हो।

(२) यह मनुष्य जन्म अपनी आदतों के कारण निराश्रय है। यहाँ तृष्णा और लोभ का नशा चढ़ा हुआ है। किसी भी परिस्थिति में यह संतुष्ट नहीं है। यदि दीन गरीब है तो अन्न दाने की चिंता है, अन्नदाना मिला तो कपड़े की चिंता है। कपड़ा गल्ला है तो धन कुटुम्ब की, इस तरह संसार का कोई भी व्यक्ति अपनी अवस्था पर संतुष्ट नहीं है। मनुष्य क्रोध और विषय-वासनाओं के वशीभूत होकर विह्वल हुआ फिरता है, अस्तु माया-परिग्रह आदि का संग्रह करने में यह दुर्लभ नर जन्म खोता है।

(३) संयोग वश तत्व-वेत्ताओं के सत्संग से उसे कुछ विद्या प्राप्त हो तो आत्मसिद्धि का प्रयत्न करने लगे, परन्तु इन्द्रियाँ अपने स्वाद के लिये इस जीव को सन्मार्ग पर स्थिर ही नहीं होने देती हैं। इस शरीर के मोह-वश ज्ञान भी निष्क्रिय हो जाता है। इस आत्मा की चेतावनी को कोई एक योग्य व्यक्ति ही सुन पाता है। अर्थात् मोहवश सभी इन्द्रियों के पोषण में ही व्यस्त रहते हैं विरला कोई आत्मरुचि की ओर आकृष्ट होता है।

(४) इस कलयुग में जीव को अनेकों चिंता, बाधाएँ और व्यर्थ के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्य लगे हुए हैं। शरीर अनेकों रोगों से घिरा हुआ है। संत कबीर कहते हैं कि इन व्याधि और बाधाओं से तनिक ऊपर उठ कर आत्मशक्ति को टटोलो। यहाँ पर कितनी शांति, निश्चलता, गंभीरता और सुख का भण्डार भरा हुआ है। इन्द्रियाधीन तुच्छ सुखों को हटाकर आत्म-सुख का अनुभव करो।

(५८)

रामुरा चली बिनावन माहो, घर छोड़े जात जुलाहा हो
गज नौ गज दश गज उनइस की, पुरिया एक तनाई,
सात सूत नौ गंड बहत्तर पाट लागु अधिकाई ॥ १ ॥
ता पट तुला तुलैं नहिं गजन अमाई, पैसन सेर अढाई ॥
तामें घटै बढ़ै रतियो नहिं, करकच करैं घहराई ॥ २ ॥
नित उठि बैठि खसम सों बरबस, ता पर लागु तिहाई,
भीगी पुरिया काम न आवै जुलहा चला रिसाई ॥ ३ ॥
कहंहि कबीर सुनो हो संतो, जिन यह सृष्टि बनाई,
छाँड पसार राम भजु बौरे भौ सागर कठिनाई ॥ ४ ॥

(क० वी० शब्द १५)

दृष्टिकोण :—माया जनित इस सृष्टि का मूल कारण कषाय और इंद्रियों की चंचलता है। ज्यों-ज्यों इस शरीर के पोषण का प्रयत्न किया जाता है, त्यों-त्यों भव भ्रमण बढ़ता है। इच्छाओं के बढ़ते हुए व्यापार को छोड़ कर "राम" स्मरण में लगना ही एक मात्र सहारा है। इस पद में संत कबीर ने उक्त ताना-बाना डाला है, अपूर्ण सूत जुलाहे को सुमार्ग पर लावे, यही उनकी कामना है, जो स्पष्ट रूप से इस पद से प्राप्त करें।

अर्थ :—(१) संसार में इच्छाओं की बढ़ती हुई शीत से बचने के लिये "राम" सदृश्य यह प्राणी आत्म-रक्षा के लिये वस्त्रों का कवच पहनता है। आत्म-रुचि से विमुख होकर यह जीव संसार में इस (वस्त्र) कवच को प्रकारान्तर से बदलता हुआ भी इस शीत निवारण से अपने को असमर्थ पाता है। अर्थात् अपने यथार्थ निवास से पृथक ही रहता है।

इसने अपना रक्षा-कवच नव द्वार युक्त इस शरीर को बनाया है अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त किया है। इसको पाँच ज्ञान की और पाँच कर्म की इस तरह दस इन्द्रियाँ का सहयोग प्राप्त है फिर भी उसका यह ढ़ाँचा (पुरिया) अपूर्ण-शक्तिधारी है।

यह शरीर तीन योग और चार कषायों का संयुक्त रूप है अर्थात् सप्त-सूत्री है इसका योनि-विस्तार बहुत अधिक है। भावार्थ जीव की कर्म प्रवृ--त्तियाँ भेदों की अपेक्षा बहुत हैं। परन्तु सामान्यतः यह छत्तीस प्रकार के दोषों के द्वारा अपने गुण, रूप, पर्याय आदि में परिवर्तन करता रहता है। इस तरह यह कुल चौरासी लाख योनियों में भटकता हुआ जन्म-मरण के दुःख उठाता रहता है।

(२) कर्माश्रित यह माया का रूप एवं जीव के तृष्णा भाव इतने वि-स्तृत और भारी हैं कि कोई भी संख्या उसकी नाप तौल का निश्चित परिमाण नहीं बता सकती है। जीव की योग्यता इतनी भी नहीं है कि वह अपनी तृष्णा का कोई अंश पूर्ण कर सके।

इन इच्छाओं की पूर्ति में वह अत्यधिक परिश्रम व प्रयत्न करता है। दूसरों से अकारण द्वेष अथवा मोह करता है फिर भी उनमें रंच मात्र भी घटती नहीं हुई है। अर्थात् कोई एक इच्छा पूर्ति हुई नहीं कि दूसरी कामना तैयार है। इस तरह यह जीव सदा उद्विग्न और दुःखी रहता है।

(३) प्रति दिन अथवा समय-समय पर पूजा नमाज करके ईश्वर की उपासना में अपनी लाचारी को व्यक्त कर इच्छाओं की पूर्ति के लिये भावना करता है, परंतु उन इच्छाओं की पूर्ति तो दूर, अन्य अनेकों कामनाएँ आकर उसकी व्यग्रता को द्विगुणित कर देती हैं। उसका यह कर्म विवश शरीर किसी उपयोगी कार्य को पूर्ण करने में असमर्थ रहता है अथवा वृद्धावस्था आने पर अशक्त इन्द्रियों से वह लाचार होकर इस मानव जन्म को व्यर्थ खो देता है। अंत में निर्मोही शरीर को त्याग कर चल देता है।

(४) संत कबीर सम्बोधित करते हैं कि यह भव सागर अपार है, अत्यंत दुरूह है। अस्तु इन इच्छा वासनाओं के ताने वाने (तनाव) को ढीला-कर आत्मा "राम" का स्मरण कर जिसने आत्मविस्मृत होकर इस सृष्टि की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचना में अपना योगदान किया है। भावार्थ—तेरी मिथ्या भावनाओं के फल-स्वरूप यह सृष्टि का फैलाव बढ़ रहा है। जिन पृथक-पृथक आत्माओं से राग द्वेष का सम्बन्ध बढ़ाकर इच्छाओं की पूर्ति में सुख-दुःख की कल्पना से कर्मों का जाल बढ़ाया है, उसे छोड़ने पर ही छुटकारा संभव है। अन्य कोई देवी-देवता अथवा सहयोगी प्रेमी तेरे इन कर्मों के बेड़े को काटने में समर्थ नहीं है। अपने फैलाये हुए ताने बाने को तू ही ढीला कर मुक्त हो सकता है।

(५६)

बुझि लीजै ब्रह्म ज्ञानी,
धूरि-धूरि वर्षा बरषावै, परिया बूंद न पानी ॥ १ ॥
चिउंटी के पग हस्ती बाँधो, छेरी बीग रखावै,
उदधि माँहि ते निकरि छाछरी, चौड़े ग्राह करावै ॥ २ ॥
मेंढुक सर्प रहत एक संगे, विलइया श्वान वियाई,
नित उठ सिंह सियार सों डरपे, अदवुद कथो न जाई ॥ ३॥
कोने संशय मृगावन घेरे, पारध बाना मेले,
उदधि भूख ते तरिवर डाहें, मच्छ अहेरा खेले ॥ ४ ॥
कहँहि कबीर यह अदबुद ज्ञाना, को यह ज्ञानहि बूझै।
बिन पंखे उड़ि जाय अकासै, जीवहि मरण न सूझै ॥ ५ ॥
(शब्द ५२ क० बी०)

दृष्टिकोण :—यह पद आत्मा की शक्ति और उसकी विवशता का चित्रण करता है। यह जीव सृष्टि में सर्वत्र व्यापक है। यह तत्व निराकार और अत्यंत सूक्ष्म है परन्तु जैसा शरीर प्राप्त करता है उसी के आकार में घातक हो जाता है। यह अपनी इच्छाओं के वश में न होकर पराधीन है। अपनी शक्ति और योग्यता का अनुभव नहीं करता है। समय आने पर यह जीव शरीर को छोड़ कर चल देता है। मनुष्य कैसा विवश है कि उसे अपने मरणासन्न होने पर भी आत्म रुचि नहीं होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ :—(१) यह तत्व ब्रह्म ज्ञानियों के अनुभव योग्य है। यह आत्मा स्थान-स्थान पर (वर्षा) सशरीर चैतन्य तत्वमय है अर्थात् यह सृष्टि सर्वत्र ब्रह्ममय है। निराकार ब्रह्म (पानी) का कोई अंश (बूँद) शरीर से पृथक नहीं है अर्थात् ब्रह्म सर्वत्र माया से यौगिक होकर साकार ही है। भावार्थ :—यह चैतन्य तत्व इस सृष्टि के कण-कण में व्यापक है कोई स्थान चैतन्य तत्व से रिक्त नहीं है, फिर भी यह (ब्रह्म) अपने यथार्थ रूप में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है, क्योंकि संसार इस जीव की मलिनावस्था की खानि है। जिस तरह से खानि में स्वर्ण अपने असली रूप में प्राप्त नहीं होता है अर्थात् सभी जीव विकार युक्त हैं अस्तु वह सर्वत्र खानि से निकले हुए स्वर्ण की भाँति विकार युक्त है।

(२) ये शरीर चाहे जितना भी विशाल हो लेकिन उसमें व्याप्त सूक्ष्म जीव उसके कर्तव्यों के अनुसार ही मिला है। अर्थात् जैसी योग्यता है तदनुसार जन्म धारण कर उसी के आकार में व्यापक हो गया है। यह शरीर बिल्कुल ही निकम्मा (छेरी) है फिर भी इतने बलवान जीव (बीग) को अपने में समाए हुए है। जीव अमर और पुरुषार्थी है फिर भी इन नश्वर शरीरों के आश्रित माया मोह के बंधन में दुःख उठाता फिरता है, जन्म-मरण करता रहता है। समुद्र मंथन से प्राप्त लक्ष्मी, (माया) उस भवसागर में पड़े जीवों की इच्छाओं (ग्राह) को विस्तृत (चौड़े) करती है। भावार्थ—जीव अपने शुद्ध स्वरूप की अपेक्षा निर्मल, सर्वशक्तिमान अमर और सुखों की खानि है लेकिन संसार में माया मोह से लिप्त होने के कारण बढ़ती इच्छाओं के आश्रित दुःखों के पर्वत उठाए फिरता है अस्तु जन्म-मरण करता है।

(३) इस क्षणिक जीवन (मेंढक) के साथ मृत्यु (सर्प) लगा हुआ है। वासनाओं की लोलुपता (बिलइया) के कारण दासत्व (श्वान) या भक्ति पूजा का जन्म हुआ है। इस पुरुषार्थी जीव (सिंह) को सदैव भवितव्य (सियार) का डर लगा रहता है। अथवा यह सर्वशक्तिमान होते हुए भी वेषी साधुओं (सियार) के प्रति निष्ठा होने के कारण संशक रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह उनकी कृपा का भाजन बनना चाहता है। यह आश्चर्य की बात है जो कही नहीं जाती है। भावार्थ—जीवन के साथ ही मृत्यु भय व्याप्त है। विषय लोलुपता के कारण दासत्व या भक्ति पूजा का जन्म होता है। अर्थात् इच्छाओं की पूर्ति हेतु एक दूसरे की अधीनता और भक्ति पूजा का प्रसार हुआ है। यह जीव सर्वशक्तिमान होते हुए भी अपनी वासनाओं से विवश है, अस्तु भवितव्य से डरता है या साधुओं का कृपापात्र बनने के लिये उनकी अधीनता में रहता है यह आश्चर्यजनक है।

(४) यह जीव विभिन्न आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु मृग-तृष्णा में पड़कर वस्तुओं का संग्रह करता है उसके घेरे को देख कर अर्जुन-सा पराक्रमी यह जीव जो भव-वन को नष्ट करने हेतु सशस्त्र तैयार (व्याधा) है अपने अस्त्र-शस्त्र डालकर आत्म समर्पण कर देता है। यह अपनी क्षुधा (कांक्षा) के अपार विस्तार के कारण अपनी परोपकारी वृत्ति (तरिवर) को नष्ट कर देता है। मोह मत्सर आदि (मच्छ) इस (अहेरा) को हानि पहुँचाते हैं अर्थात् ये उलटे इस जीव के (अहेरा) वधिक हो जाते हैं। भावार्थ—मृग-तृष्णा में अपनी तृप्ति हेतु यह अपार माया जाल में फंस कर अपने स्वभाव को छोड़कर मोह मत्सर के अधीन हो जाता है और इस तरह कायर होकर भटकता रहता है।

(५) संत कबीर कहते हैं कि आत्मज्ञान बहुत ही आश्चर्यकारी है। इस ज्ञान से विमुख रह कर यह निःसहाय (बिनपंखै) अपार तृष्णा के आकाश में भटकता रहता है क्योंकि इसे अपनी मृत्यु का ध्यान ही नहीं है। भावार्थ—यह जीव अपने आप से अपरिचित रहने के कारण पुरुषार्थहीन (बिन पंखै) हुआ विषय-कषायों के आधीन भटकता फिरता है। अपनी तुच्छ-बुद्धि के अनुसार संसार में प्रचलित भ्रम जाल व आडम्बरों में पड़ा हुआ आत्मज्ञान से विमुख रहता है और इस तरह मृत्यु और जन्म धारण करता हुआ दुःख उठा रहा है। कठिन आत्मा ज्ञान वैराग्य से ही मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६०)

नर को ढाढ़स देखो आई, कछु अकथ कथो हे भाई ॥ १ ॥
सिंह शार्दूल एक हर जोतिन, सींकस बोइन-धाने।
वन की भुलुइया चाखुर फेरे, छागर भए किसाने ॥ २ ॥
छेरी बाघहि ब्याह होत है, मंगल गावे गाईं,
वन के रोझ धरि दाइज दीन्हों, गोहलो कन्धे जाईं ॥ ३ ॥
कागा कापड़ धोवन लागे, बकुला किरपहिं दातें,
माखी मूंड मुंडावन लागी हमहूं जाब बराते ॥ ४ ॥
कहहिं कबीर सुनो हो संतो जो यह पद अर्थावै,
सोई पंडित सोई ज्ञाता सोई भक्त कहावै ॥ ५ ॥
(शब्द ५५ क० बी०)

दृष्टिकोण :—संसार में देखा देखी की बारात है। जिन संसारिक दुविधाओं में फँसा हुआ यह जीव आनन्द की कल्पना कर रहा है, वे मात्र दुःख और सैकड़ों दुश्चिंताओं की जड़ हैं। जिसको यह ज्ञात हो गया है वही विद्वान और भक्त है, शेष व्यर्थ है।

अर्थ :—(१—२) इस मानव का साहस तो देखिये, कैसा आश्चर्य-कारी कृत्य कर रहा है। अर्थात् अपनी योग्यता से पृथक होकर तुच्छ कार्यों में अपना पुरुषार्थ लगा रहा है। परस्पर विरोधी दो तत्व जीव और माया शरीर के योग से (सिंह व सादूॅल) जीव साकार हो इस संसार क्षेत्र में कार्य करने आया है। इस साझे की खेती में प्रबंधक (किसाने) अहं तत्व (छागर) हैं जो आत्म ज्ञान की हरियाली पनपने ही नहीं देते हैं। जोताई का कार्य भूमि का तैयार करना ही जीव को भय-प्रद (वन की भुलइया) है। दाना जो बोया जा रहा है वह तुच्छ है। इस खेती (कार्य क्षेत्र) के सभी तत्व परस्पर विरुद्ध प्रकृति के हैं अर्थात् जो शरीर को इष्ट है वह आत्मा को अभीष्ट नहीं और जो आत्मा को अभीष्ट है वह शरीर को प्रिय नहीं। सभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्य सुखद प्रतीत होते हुए भी अल्प सुख देने वाले हैं।

(३) तृष्णा और कामुकता (छेरी बाघहिं) का गठबंधन ही यहाँ का सुखद कार्य है। इस मंगल महोत्सव में इन्द्रियाँ (गाईं) कार्यरत हो प्रमुदित हैं। अर्थात् संसार में सुख की परिभाषा इन्द्रियों की तृप्ति ही है। इन इंद्रियों की तृप्ति में तृष्णा और कामुकता बढ़ती है जो अग्नि ही है। इसमें उपहार (दाइज) जो प्राप्त होता है वह बाहर नई उलझने (वन के रोझ) खड़ी करने वाला है, इससे सदैव अशांति का मार्ग प्राप्त होता है। इस संसार में दुष्कृत्यों की गोपनीयता नहीं रहती, क्योंकि यहाँ गोपनीयता (गोहलों) का ही प्रदर्शन और प्रचार सर्वत्र हो रहा है।

(४) इस सांसारिक आनन्द को प्राप्त करने के लिये (अग्रणी बराती) दुर्जन (कागा) हैं जो वस्त्रों की निर्मलता और वेशभूषा के प्रदर्शन द्वारा दोषों को गुप्त रखते हैं अर्थात् मन के काले उजले वस्त्रधारी सज्जन बने हुए हैं। साधुता का प्रदर्शन बक-भक्ति द्वारा हो रहा है और बाचाल विद्वान उपदेशक बने हैं। साधु वेषी लोभी और लोलुपी व्यक्ति (मांखी) सिर मुड़ा कर लोगों को ठगते फिरते हैं और वह भी इस बारात का आनन्द पाने को पीछे नहीं रहना चाहते हैं अर्थात् संसार के इस क्षणिक सुख को यथार्थ सुख मान कर लोगों में प्रमुखता प्राप्त करने को तरह-तरह के वेष और आडम्बर बनाने में मग्न हैं।

(५) संत कबीर कहते हैं कि यह पद भी संसार की विचित्रताओं की तरह परस्पर विरुद्ध तत्वों के वर्णन से पूर्ण है। जो ज्ञानी इस पद को समझते हैं वे संसार की क्रियाओं और संसार में व्याप्त प्रलोभनों में नहीं फँसते हैं, वही यथार्थ विद्वान, ज्ञानो और भक्त हैं।

(६१)

नर को नहिं परतीत हमारी,

झूठा बनिज किया झूठे सों, पुंजी सबन मिलि हारी ॥१॥

षट-दर्शन मिलि पंथ चलायो, तिर देवा अधिकारी,

राजा देश बड़ो परपंची, रईयत रहत उजारी ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतते उत उतते इत रहहु, यम की सांड़ सवारी,
ज्यों कपि डोर बाँधु बाजीगर, अपनी खुशी पसारी ॥ ३ ॥
इहै पेड़ उत्पत्ति परलय का, विषया सबै विकारी,
जैसे स्वान अपावन राजी, त्यों लागी संसारी ॥ ४ ॥
कहहिं कबीर यह अदबुद ज्ञाना, को माने बात हमारी,
अजहूँ लेहु छुड़ाय काल सों, जो करे सुरति सम्हारी ॥ ५ ॥
(शब्द ५६ क० बी०)

दृष्टिकोण :—मनुष्य को स्वयं का ज्ञान नहीं है। वह संसार की जानकारी और सृष्टि के अन्य प्राणियों के साथ असद्व्यवहार में अपनी निधि, आत्मगुणों को खो बैठा है। अपनी स्वाधीनता को कर्मों की डोर से बँधा कर जन्म-मृत्यु के फन्दे में नाच रहा है। विषय वासनाओं में इस तरह आनन्द मानता है जिस तरह कुत्ता हाड़ को चिचोरता हुआ निज रक्त पान कर विषय स्वाद का अनुभव करता है। सत्य की खोज और उसके अनुभव में उसकी रुचि नहीं है। सत्य की प्राप्ति के बिना जन्म-मृत्यु से छुटकारा नहीं मिलता है।

अर्थ :—(१) यह मानव जन्म पाकर भी स्व-परिचय प्राप्त नहीं किया है। भौतिक चक्र में पड़कर स्वयं अपने साथ तथा अन्य चराचर प्राणियों के साथ सद्व्यवहार करता है। इससे आत्मगुणों की पूँजी को खो बैठा है। अर्थात् उसे आत्मपरिचय नहीं है, इससे दृश्यमान शरीर के अनुमान से जीव की विभिन्न योग्यता, पद, जाति, रूप, कुल, ऐश्वर्य आदि में आत्मबुद्धि के कारण राग द्वेष और अहंकार करता है जो अपने व पर के साथ असद्व्यवहार है।

(२) दृष्टिकोण के छह प्रथक-प्रथक भेद होने से समस्त मानव समूह छह विभिन्न दर्शनों का मानने वाला हो गया है। मानव ने अपने सत, रज, तम आदि त्रयगुणों के आधार पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाम के तीन देवों को अधिकृत किया है। इस जगत में स्वराज्य प्राप्त कर मन ही राजा बना है। यह मन पाँचों इन्द्रियों के प्रपंच में फ़ँसा है जिससे इसने शरीर और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इंद्रियों को बिगाड़ दिया है। अर्थात् मन की स्वच्छंदता के कारण शरीर निर्बल और अवश हो गया है और इंद्रियाँ मनमाने राह पर चलती हैं।

(३) यह जीव संसार की विभिन्न योनियों में यहाँ वहाँ भटकता फिरता है और सर्वत्र यमराज की बलवान सेना, सवारी इसे त्रास देती रहती है अर्थात् मृत्यु-भय से सदैव शंकित रहता हुआ भव वन में भटकता फिरता है। जिस तरह से खेल दिखाने वाला बाजीगर बन्दर को मनमाना नाच नचाता हुआ उसके गर्दन में बँधी हुई डोर को अपनी इच्छा मुताबिक कड़ी ढीली करता है उसी तरह यमराज कर्म डोरी से बाँध इस जीव को इस उस जन्म में विभिन्न यातनाएँ देता हुआ अपना अधिकार रखता है।

(४) संसार की उत्पत्ति और प्रलय का कारण जीव की अवस्थाएँ ही हैं। विषय वासनाएँ जीव की विभिन्न योनियों का कारण हैं क्योंकि सभी दूषणों का मूल इच्छाएँ व विलास हैं। जिस तरह कुत्ते को सुस्वादु भोजन की अपेक्षा हड्डी व मांस खाने की विशेष रुचि होती है उसी तरह संसारी प्राणी को आत्मकल्याण की अपेक्षा भोगादि की विशेष रुचि रहती है। इन भोगादि के सेवन द्वारा वह अपनी क्षीणता को प्राप्त होते हुए भी उसके क्षणिक सुखों में तृप्ति मानता है।

(५) संत कबीर कहते हैं कि आत्मज्ञान ही सर्वोत्कृष्ट और आश्चर्यकारी है। हमारी इस बात को क्यों नहीं मानते ? यदि कालभय है तो आज ही आत्मरुचि जाग्रत करो और इस तरह से जन्म-मृत्यु का निवारण कर अमरत्व की प्राप्ति में संलग्न हो जाओ। भावार्थ यह संसारी प्राणी विषय-भोगों के क्षणिक सुखों में ऐसा निमग्न है कि वह अतीन्द्रिय आत्म सुख की कल्पना ही नहीं कर सकता है जिस तरह से विभिन्न व्यंजनों के अलग-अलग स्वादों का वर्णन असंभव है उसी तरह आत्मानुभव होने पर प्राणी को जिस आत्मसुख की झलक मिलती है वह वर्णनातीत है। इसे स्वसंवेदन कहते हैं और इसके सुख का अनुभव शरीर को नहीं आत्मा को होता है। आत्मा को इन्द्रियजनित सुखों से विरक्ति होने पर ही आत्मरुचि जाग्रत होती है। सुख का भण्डार और अमर तत्व प्रत्येक आत्मा है यह सुन लेने मात्र से ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुख मिलता है, लेकिन जब वह उस सुख का अनुभव कर उस ओर प्रयत्न शील हो जाता है तब उसको सांसारिक सुखों से छुटकारा पाने की ही शीघ्रता होती है।

उदाहरण स्वरूप गौने के समय अपने माँ-बाप से पृथक होती हुई युवती का वियोग दुःख उसको प्राप्त होने वाले भावी सुखों की कल्पना में नगण्य है। प्रियतम के प्यार की सुधि उसकी आंतरिक दशा है जिसे वह व्यक्त नहीं कर सकती है वह वियोग दुःख को ही व्यक्त करती है।

(६२)

ना हरि भजसि न आदत छूटी।

शब्दहि समुझि सुधारत नाहीं, आँधर भए हियहु की फूटी॥ १॥
पानी माँहि पषान की रेखा, ठोंकत उठे भभूका,
सहस घड़ा नित उठि जल ढारे, फिर सूखे का सूखा॥ २॥
सेतहि सेत सितङ्ग भयो है, सेन बाढ़ु अधिकाई,
जो सन्निपात रोगियन मारे सो साधुन सिद्धि पाई॥ ३॥
अनहद कहत-कहत जग बिनसे, अनहद सृष्टि समानी,
निकट पयाना यमपुर धावे, बोले एकें बानी॥ ४॥
सतगुरु मिले बहुत सुख लहिये, सतगुरु शब्द सुधारे,
कहहिं कबीर ते सदा सुखी हैं, जो यह पदहि विचारे॥ ५॥

(शब्द ५७ क० बी०)

दृष्टिकोण :—राम-रट करना ही भक्ति नहीं है। राम का ज्ञान और अनुभव होना चाहिये। लोग अनहद-नाम-जप और सिद्धि करने में प्रयत्न शील हैं लेकिन उन्हें यह ज्ञात नहीं कि सृष्टि का यह सर्वव्यापी आत्मा "राम" ही है। अज्ञान के कारण पक्षा-पक्ष की खींचतान रहती है। विवेक न होने से विद्वान भी दुःख पाते हैं और जन्म-मरण से छुटकारा नहीं पाते। अस्तु; विवेक जाग्रत करना चाहिये।

अर्थ :—(१) प्रथम तो मनुष्य भगवान का नाम ही नहीं लेता है और यदि भगवत् भजन करता भी है तो अपने विकारी स्वभाव को छोड़ नहीं पाता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस तरह शब्दों (ज्ञान) को सुनकर अपना सुधार करने में प्रयत्न शील नहीं है। क्योंकि वह अंधा ही नहीं है उसके हृदय की आँखें भी फूट गई हैं। यदि मात्र अन्धा होवे तो दूसरों के समझाने से सुमार्ग पर चल सकता है। लेकिन आचरणहीन और अविवेकी होने से किसी को बात नहीं सुनता।

(२) इस पुरुष की अवस्था इस प्रकार है जैसे जल में पड़ा हुआ पत्थर भी ठोकर लगने पर ऊष्णता प्रकट करता है। तदनुसार शांति पुञ्ज यह आत्मा कषायों की कठोरता से पत्थर की तरह तुच्छ कारणों को पाकर उत्तेजित हो उठता है। आत्म-शान्ति हेतु सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी यह नम्र नहीं होता है क्योंकि इसमें विवेक रूपी जल का प्रवेश न होने के कारण यह शुष्क ही रहता है। अथवा नित्य प्रातः उठकर स्नान भजन करने वाले महानुभावों के हृदय में शीतलता व शांति का प्रवेश नहीं हुआ है। वह ज्यों का त्यों शुष्क और अशांत है।

(३) शरीर में शुक्लता का यहाँ तक प्रभाव हुआ है कि बालों की श्यामता तो नष्ट हो ही गई है शरीर भी रक्तहीन होकर श्वेत हो गया है। वह यहाँ तक क्षीणता प्रदर्शित करता है कि हाँथ-पाँव डगमगाने लगे हैं। ऐसी अवस्था के प्राप्त होने पर भी अवरंग की विकार-कालिमा में अंश-मात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ है। ऐसी अवस्था में इसकी जीवत्व शक्ति क्षीण हो गई है और वायु, पित्त, कफादि त्रिदोषों के उभड़ने से सन्निपात की अवस्था को प्राप्त होकर मृत्युगत होता है। साधु पुरुष इन्हीं त्रिदोषों का साधन कर सिद्धि को प्राप्त होते हैं। अर्थात् इन त्रिदोषों का शमन करने हेतु साधु पुरुष मन को वश में करके वायु का संतुलन रखते हैं। वचनों का सदुपयोग कर सत्यता और प्रेम वचनों द्वारा कफ को संतुलित रखते हैं। फिर मन और वचनों के अनुसार क्रिया और व्यवहार को सर्व प्रिय बनाकर इस शरीर की उष्णता के मूल पित्त को संतुलित करते हैं। इस तरह मृत्यु समय भी सावधान और नीरोग रह कर आत्मच्युत नहीं होते हैं। इस प्रकिया के द्वारा उन्हें परम्परया शुभ गति और उत्तरोत्तर आत्मकल्याण का साधन करने से मुक्ति प्राप्त होती है। अस्तु, साधु पुरुषों की साधना सिद्धि प्रदायक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है।

(४) अनहद नाद की साधना और अनाहत मंत्रों का जप करते-करते इस संसार के साधारण प्राणी ही नहीं योगी पुरुष भी सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाते हैं, कारण यह कि उक्त अनहद क्या है, उसका उन्हें भान ही नहीं है ? अनहद वह अनन्त चैतन्य तत्व है जिसकी कोई सीमा नहीं, वह इस सृष्टि के कण-कण में व्यापक आत्म तत्व है। इस आत्म तत्व की न तो किसी को सुधि है और न उसकी लगन है। अस्तु, अंत समय जब यह माया प्रथक होती है, तब यह मोही प्राणी स्वर्ग की आकांक्षा करता हुआ भी इस योग्यता को प्राप्त न होने से यम लोक (नरक) को पहुँचता है। अर्थात् प्रत्येक जीव की आकांक्षा यही होती है मृत्यु के समय भी अचेतनता को प्राप्त न होऊँ, अथवा मृत्यु के पश्चात् मुझे यहाँ से भी उत्कृष्ट भोग-भोग और सुख शांति प्राप्त हो। लेकिन गाँठ में जितना दाम होगा वैसी ही उत्कृष्ट वस्तु वह प्राप्त कर सकेगा। अब उसके पास उतनी योग्यता ही नहीं है तो बाध्य होकर उसे नरक जाना होगा। अस्तु, यह प्राणी मृत्यु समय भय, दुश्चिंता, रोग और दुःखों के कारण बेसुध हो जाता है।

(५) अस्तु हे जिज्ञासु ! तुझे सतगुरु का संस्कार प्राप्त हो, उससे ही तुझे यथार्थ सुख अथवा अनंत सुख प्राप्त होगा। सत्गुरु ही तेरे ज्ञान को निर्मलता प्रदान कर सकेगा। तेरा कल्याण सत्संग और सत्गुरु का संपर्क प्राप्त होने पर ही संभव है। अस्तु, जो इस पद के अर्थ और उसके महत्व को जानता है, वही सदैव सुखी है। संत कबीर का यह शुभाषीश है कि, हे मुमुक्षु प्राणियों ! ये भौतिक सुख तुझे भ्रम में डालने वाले हैं, क्योंकि जब तक तुझे यह भान नहीं है कि सुख कहाँ है ? क्या है ? और कैसा है ? तब तक तुझे उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती है। यह सब जानने में सहायक यदि कोई है तो सच्चा गुरु ही है। अस्तु, तू ऐसे ही सत्गुरु की संगति को प्राप्त कर।

(६३)

नरहरि लागी दव विकार बिनु इंधन, मिले न बुझावन हारा।
मैं जानौ तोही सो व्यापे, जरत सकल संसारा॥ १॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पानी माहि अग्नि को अंकुर, जरत बुझावे पानी।
एक न जरै-जरै नौ नारी, युक्ति न काहू जानी ॥ २ ॥
शहर जरै पहरू सुख सोवै, कहै कुशल घर मेरा,
पुरिया जरै वस्तु निज उबरे, विकल राम रंग तेरा ॥ ३ ॥
कुब्जा पुरष गले एक लागा, पूजि न मन की सरधा,
करत विचार जन्म गौ खीसै, ई तन रहत असाधा ॥ ४ ॥
जानि बूझि जो कपट करतु है, तेहि अस मंद न कोई।
कहहिं कबीर तेहि मूढ़ को, भला कौन विधि होई ॥ ५ ॥
(शब्द ५८ क० बी०)

दृष्टिकोण :—इस मानव जन्म को पाकर भी मनुष्य का सुख-शांति रूपी जल विषयाग्नि की दावाग्नि से जल गया है। इस अग्नि ने इसको विशेष हानि पहुँचाई है। इसके सर्वगुण और विशेष योग्यताओं की हानि कर दी है। मिथ्या विचार जो इसे सत्मार्ग पर नहीं जाने देता है की संगति से यह भटक गया है।

अर्थ :—(१) हे भगवन्! बिना इंधन के ही जो विषय कषायादि की दावाग्नि लगी है उस अग्नि को बुझाने वाला कोई नहीं मिलता है। मेरी जानकारी में यह आता है कि इस कषायादि का कारण आप ही हैं। यही कारण है कि पूर्ण सृष्टि इस विषयाग्नि में जलती है। भावार्थ—विषय-कषायादि का कारण माया है और माया को अपनाया किसने, इस आत्मा ने। आत्मा यह आपका ही अंश है जिसने भ्रमवश अग्नि को सुखद और शांति प्रद मानकर अपनाया है जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि ही जल रही है। अस्तु हे ईश्वर! आप ही इसके लिये दोषी हैं।

(२) इस सुख शांतिमय आत्मा में मायाबुद्धि—एक अग्निकण—इस आत्मा की शीतलता के कारण, भड़कने से दबी है अन्यथा इसने इस सृष्टि को शून्य कर दिया होता। इस वड़वाग्नि में आत्मा का एक चैतन्य गुण नहीं जल पाता है लेकिन अन्य नौ गुण भस्मसात हो जाते हैं। इन नव विशेष-गुणों को नष्ट होने से बचा सके ऐसी युक्ति किसी ने नहीं पाई अर्थात् विरले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राणी इस अग्नि कोप से वंचित होते हैं। भावार्थ—यह विषयाग्नि उस प्रज्वलित अग्नि के समान है जो एक भूमि या आकाश (आत्मा के चैतन्य गुण) को छोड़कर अन्य गुणों को जला देती है। इससे बच निकलने की युक्ति बिरले ज्ञानी प्राप्त कर पाते हैं।

(३) इस अग्नि का व्यापक प्रभाव होने के कारण जीव की विशिष्ट योग्यताएँ नष्ट हो रही हैं फिर भी आत्मा (पहरू) सुख-निद्रा में मग्न है और जगाने पर कहता है कि मेरी तो क्षेम-कुशल है क्योंकि मेरे शरीर को सुख सुविधाएँ प्राप्त हैं। उसे अपनी यथार्थ अवस्था का भान नहीं है। हे मुमुक्षु ! तू अशरीरी और राम (परमात्मा) के अनुरूप ही है। जब तेरा यह कर्मावरण (पुरिया)—जिससे तुझे यह दृश्यमान अवस्था प्राप्त हुई है—नष्ट होगा तब निज स्वरूप प्रगट होगा। अस्तु कर्मावरण को नष्ट करने का प्रयत्न कर।

(४) मिथ्या विचार जो इसके साथ दृढ़ता से बँधे हुए हैं, कभी भी आशा तृष्णा को पूर्ण नहीं होने देते हैं। इस तरह चिंता में पड़े हुए यह जन्म व्यर्थ चला जाता है और यह शरीर (माया) इसी तरह अनिर्वार्य रह जाता है। अर्थात् यह अज्ञानी रहकर ही जन्म-जन्मांतर धारण करता रहता है।

(५) संत कबीर कहते हैं कि वह जीव बड़ा ही मंद भागी है जो समझता हुआ भी आत्म प्रवंचन करता है। ऐसे मूर्ख का भला किस तरह से होगा अर्थात् जो आत्म कल्याण के मार्ग को जानता समझता हुआ भी उस मार्ग पर नहीं चलता है। वह अपने आप को ही ठगता है। उसका भला किसी प्रकार से होने वाला नहीं।

(६४)

मैं कासों कहों को सुने को पतियाय, फुलवा के छुवत भँवर मर जाय।
जोतिए न बोइए सिंचिये न सोय, बिनु डार बिनु पात फूल एक होय।
गगन मंडल बिच फूल एक फूला, तर भौं डार ऊपर वाके मूला ॥ १ ॥
फूल भल फूलल मालिन भल गांथल, फुलवा बिनसि गौ भँवर निरासल।
कहहिं कबीर सुनो संतो भाई, पंडत जन फूल रहल लुभाई॥ २ ॥
(शब्द ६३ क० बी०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टिकोण :—इस संसार में लक्ष्मी को संजोनेवाली स्त्री जाति विशेष है। मानव इस लक्ष्मी को छूते ही विवेक शून्य हो जाता है। बिना उद्यम के इस लक्ष्मी का प्रसार इस सृष्टि में हुआ है जिस पर विद्वान् भी लुभाए हुए हैं।

अर्थ :—(१) संत कबीर कहते हैं कि कौन इस पर विश्वास करेगा ? कौन इसको सुनेगा कि धन पैसा (लक्ष्मी) के सम्पर्क में पहुँचते ही विवेक नष्ट हो जाता है ?

माया का वृक्ष बिना डार-पात का है और बिना प्रयत्न ही सर्वत्र इस लोक में फैला हुआ है। इसका फूल बहुत आकर्षक है उसे लक्ष्मी (धन पैसा) ने गुंफन किया है। कहते हैं सृष्टि में यह एक ही फूल ऐसा है जो सदैव खिला रहता है, उसकी शाखाएँ सर्व प्राणियों में व्याप्त हैं लेकिन इसका मूल कारण एक माया है जो सर्वोपरि है। भावार्थ—जीव और माया का सम्बन्ध सर्वोपरि है, इसके कारण ही सृष्टि में सभी प्राणियों का आकर्षण इस लक्ष्मी की लुभावनी प्रकृति (फूल) पर है। यह लक्ष्मी (फूल) बिना जोते, बोए या सींचे हुए ही असीम रूप में विस्तृत है।

(२) यह लक्ष्मी भले प्रकार से फूली है, अर्थात् विस्तारित है जिसको और अधिक लुभावना बनाने वाली स्त्री जाति ने इसे अपने हाथों से भले प्रकार संजोया है। फूल के नष्ट होने पर पुरुष (भँवर) निराश हो जाता है। संत कबीर कहते हैं कि इस लक्ष्मी के लोभ में बड़े-बड़े विद्वान भी लुब्ध भौंरे की तरह आकर्षित हैं, फिर हे संतों, तुम्हारी क्या बात है ? यदि संत जन भी उस ओर आकृष्ट होवें तो कोई आश्चर्य नहीं।

(६५)

जोलहा बीनहु हो हरि नामा, जाके सुरनर मुनि धरैं ध्याना।
ताना तनै को अहुठा लीन्हा, चरखी चारिउ वेदा।
सर कूंडी एक रामनरायण पूरण प्रगटे कागा ॥ १ ॥
भवसागर एक कठवत कीन्हा, तामें मांड़ी साना।
मांडी के तन सान रहा है, मांड़ी बिरले जाना ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाँद सूर्य दुइ गोड़ा कीन्हा, माँझ द्वीप कियो मांझा।
त्रिभुवन नाथ जो भांजन लागे, श्याम मुररिया दीन्हा ॥ ३ ॥
पाई के जब भरना लीन्हा, वय बाँधन को रामा।
वे भरा तिहु लोकहि बाँधे, कोई न रहत उबाना ॥ ४ ॥
तीन लोक एक करिगह कीन्हा, दिग मग कीन्हों ताना।
आदि पुरुष बैंठावन बैठे, कबिरा ज्योति समाना ॥ ५ ॥
(शब्द ६४ क० बी०)

दृष्टिकोण :—कर्म जाल बुनते और उसमें लिपटते हुए इस प्राणी को अनन्त काल व्यतीत हो गया। वह न तो इस संसार के सुखों से तृप्त हुआ है और न शांति को प्राप्त हुआ है। इस मानव जन्म में उसे हरिनाम रूपी काया-वस्त्र बुनना चाहिये जो सभी इच्छाओं का नाश कर निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करा दे। यह वस्त्र इसी ताने-बाने को सुमार्ग पर ले जाने से बनेगा। इस पद में वही कर्मावरण हीन अवस्था की बुनाई का योग व्यक्त किया गया है।

अर्थ :—(१) मन वचन और कार्यों का ताना-बाना बुनता हुआ यह प्राणी एक बुनकर है। संत कबीर कहते हैं कि भगवत भजन करते हुए निम्न-आशय की बुनाई प्रारम्भ कर सभी सुरनर मुनि गण इस परमात्मा का ही ध्यान करते हैं, और सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस साधना की भूमि का प्रारम्भ करने हेतु निवृत्ति ही वह कैड़ा है जो चारों वेद के सुलझाए हुए ज्ञान को विस्तृत करता है। ताना को सुलझाने वाली कंघी अर्थात् सत् मार्ग पर चलने में सहायक ईश भक्ति ही है जो कार्य की पूर्णता प्राप्त कराती है। इस तरह भक्ति, ज्ञान और वैराग्य इन तीनों का संयोग साधना में उपयोगी है।

(२) इस भवसमुद्र को तू मात्र एक कठौती जान जिसमें कर्मावरण रूपी मांड़ी से लिप्त तेरी आत्मा डुबोई गई है। यह तेरी देह ही माड़ी है जिसमें यह आत्मा लिप्त है। इस माड़ी का ज्ञान विरले प्राणियों को होता है। भावार्थ—वैराग्य जाग्रत होने पर सत् ज्ञान का प्रारम्भ होता है और सत् ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने पर ही कर्मावरण रूपी काया से प्रथक अपने आत्मा की प्रतीति होती है।

(३) चाँद सूर्य दो स्वरों में, अर्थात् प्रत्येक स्वांस में, या दिन रात आत्म जागृति का ध्यान रखते हुए आत्म स्थिरता का अभ्यास किया, जिससे निरालम्बी आत्म स्थिरता हो सके। इस प्रयत्न द्वारा त्रिभुवननाथ यह आत्मा निखर उठी और श्री कृष्ण की आकर्षक मुरली के संगीत की तरह इस प्राणी का व्यवहार विशेष आकर्षक और प्रेममय हो गया।

द्वितीय कथन इस प्रकार है कि श्वास-प्रश्वास (दोनों स्वरों) पर आधारित इस शरीर को दुई गांड़ा की तरह सहायक यंत्र जान कर उसके मोह को त्याग किया और शरीर रूपी द्वीप का केन्द्र अपनी आत्मा का ध्यान (मज्जन, माझा) किया। इस प्रकिया से आत्मा (त्रिभुवन नाथ) का जो निखार हुआ उसमें कृष्ण की मुरली की तरह मोहकता और आकर्षण आ गया। भावार्थ—सृष्टि के सभी तत्व एवं जीवों के प्रति समत्व जाग्रत हुआ और आनन्द व प्रेम सागर में यह आत्मा निमग्न हो गया।

(४) आत्मा को राग द्वेष की उलझन से सुलझा कर आत्म योग किया, इससे मन वश में हो गया। मन के वश में होने से तीनों लोक के पदार्थ स्पष्ट प्रतीति में आए। कोई भी तत्व अज्ञात नहीं रहा और कोई सन्देह मन की चंचलता का कारण नहीं रह गया, अर्थात् स्वसंवेदन द्वारा सर्व वेदन हुआ।

(५) करघे को ग्रहण करने पर सम्पूर्ण बुनाई की प्रक्रिया सहज हो गई। इसी प्रकार सर्व चिंताओं से मुक्त होने पर तीनों लोक एक मुट्ठी में आ गये, अर्थात् आत्मा की सर्वज्ञता का आभास होने पर कुछ भी कर्तृत्व नहीं रहा। इससे आत्म ज्ञान का प्रसार सर्वत्र हो गया और आत्म लाभ हो आदि ब्रह्म की प्राप्ति हुई। कबीर नाम का शरीरधारी आत्मा ज्योतिर्मय होकर उस निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त कर ज्योतिर्मय परम ब्रह्म हो गया।

इस पद में सगुण द्वारा निर्गुण की प्राप्ति का प्रयत्न किया गया है। जो यथावत आत्मा से परिचय प्राप्त कर लेता है वह राग-द्वेष रहित होकर प्रेममय हो जाता है। प्रेममय हुए बिना कोई भी ज्ञानी यदि अपनी योग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सफलता अथवा भगवत् भक्ति का प्रचार करता है तो वह अपने आपको ठगता है। परम तत्व एक आत्मा ही है। वह संसार व्याप्त है। जिसे उक्त तत्व का परिचय हो जाता है उसकी बुद्धि निष्पन्न हो जाती है और कार्य तथा वृत्ति तटस्थ होती है। यह वृत्ति आत्मा के पूर्व कर्मों का क्षय करती है और भविष्य कर्म नहीं उत्पन्न होंने देती। इस वृत्ति से मानव की दृष्टि सम्यक होती है जो आत्मा को परमात्म पद प्राप्त कराने का सर्व प्रथम उपाय है।

(६६) कलाकार का दृष्टिकोण

जंत्री जंत्र अनूपम बाजे, वाके अष्ट गगन मुख गाजे।
तूं ही बाजे तूं ही गाजे, तूं ही लिये कर डोले।
एक शब्द में राग छत्तीसों, अनहद बानी बोले॥ १॥
मुख के नाल श्रवण के तुंबा, सतगुरु साज बनाया।
जिभ्या के तार नासिका चरई, माया का मोम लगाया॥
गगन मंडल में भयो उजियारा, उलटा फेर लगाया।
कहहिं कबीर जन भए विवेकी, जिन जंत्री सों मन लाया॥ ३॥
(शब्द ६९ क० बी०)

दृष्टिकोण :— इस सृष्टि का कलाकार यह आत्मा है जो शरीर रूपी यंत्र के सहारे अपनी कलाओं का प्रदर्शन सदैव से विभिन्न योनियों में करता आया है। अभी तक जिस मार्ग पर वह चलता आया है उस मार्ग में परिवर्तन कर यदि स्वयं की प्रतीति करे, उस ओर अपने मन को लगाये, तो वही विवेकी होकर इस यंत्र को वश में करके, अपने आनन्दपूर्ण (पूर्णानन्द) राग में मग्न हो सकता है।

अर्थ :--(१) हे कलाकार ! तेरा यह शरीर एक अनुपम वादित्र है। इसका अष्टांग शरीर अष्ट मदों का श्रोत है अस्तु मिथ्याभिमान में गरजता रहता है।

इस वादित्र में स्वयं शब्द करने या अहं प्रकट करने की शक्ति नहीं है। इसमें तेरी ही ध्वनि तेरी ही गर्जना और तेरा ही समर्थन या सहयोग है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस एक ही शरीर में छत्तीसों कलाएँ और राग निकालने की शक्ति है। इसका मूल नाद तू ही है, अर्थात् इन रागों का प्रेरक तू ही है, जो इसे उठाए फिरता है।

(२) सतगुरु ने इस साज के पृथक-पृथक यन्त्रों की इस तरह विवेचना की है। मुख तो इस यन्त्र की नलिका है। श्रवण इस यंत्र की तुम्बी है। जिह्वा इस यंत्र का तार है और नासिका शब्द-सहायक तार की खूँटी (चरई) है। इस पर मायारूपी मोम की चिकनाई दी गई है। भावार्थ—यह शरीर जो देखने में अत्यंत सुन्दर प्रतीत होता है इसमें माया जनित चर्म-चादर जो मोम जैसा नरम और चिकना है चढ़ा हुआ है। मुख की नलिका है जिसकी योजक खूँटी नासिका है। जिह्वा इस यंत्र का तार है और कान इसकी तुम्बी है, इसी से सुनना और कहना तथा स्वयं का मनोरंजन होता है। इस तरह यह यंत्र आत्मा का एक सुन्दर वाद्य यंत्र है।

(३) यदि इसका दृष्टिकोण पलट दिया जावे तो यही शरीर आनन्द और ज्ञान प्रकाश द्वारा स्वयं प्रकाशित हो सकता है। यथार्थ विद्वत्ता और कलाकार की सफलता इसी में है कि वह दूसरों का मनोरंजन व आत्म-विस्मृति को त्याग कर स्वयं की जानकारी प्राप्त करे। अपनी योग्यता को अपने आप की जाग्रति में लगावे। स्वरुचि प्राप्त होने पर यह एक सफल कलाकार सिद्ध हो सकता है। भावार्थ—कलाकार की कला ही वाद्य यंत्र की सफलता और मोहकता का कारण है। यदि कलाकार अपनी योग्यता पर ध्यान न देकर, उसे प्रकट नहीं करता है मात्र वाद्य यंत्र की सफाई, सुंदरता और देख-रेख पर ही ध्यान देता है, तो वह एक कलाकार नहीं हो सकता है। इसी प्रकार इस शरीर रूपी वाद्य यंत्र में एकाग्रता, चिन्ता और मोह न रख कर यदि मनुष्य अपनी दृष्टि आत्मा की ओर पलट दे तो उसकी उपयोगिता और योग्यता बढ़ जावे। प्रत्येक कला में कलाकार की प्रधानता होती है यंत्र और आवश्यक उपकरण उसी की योग्यता के अनुसार आकर्षक बनते हैं। इस हेतु आत्मा ही प्रधान तत्व है उसके गुण और योग्यता पर ध्यान देना आवश्यक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संत कबीर उस सोम-रस का वर्णन कर रहे हैं जिसे पीकर बड़े-बड़े ऋषि महर्षि और देवता मस्त हुए पड़े हैं। उन्हें संसार की कोई चिन्ता नहीं— उस रस और प्याले का वर्णन गूँगे के गुड़ खाने और उसका स्वाद बताने की अयोग्यता सदृश्य अवर्णनीय है।

(६७)

संतो मते मातु जन रंगी
पियत पियाला प्रेम सुधारस, मतवाले सतसंगी
अर्धे उर्धे भाठी रोपिन, लेत कसारस गारी।।
मूंदे मदन काटि कर्म कस्मल, संतत चुवत अगारी ।। १ ।।
गोरख दत्त, वशिष्ट, व्यास, कपि, नारद सुख, मुनि जोरी।
बैठे सभा शंभु सनकादिक तहां फिरे अधर कटोरी ।। २ ।।
अंबरीस और याज्ञ, जनक जड़ शेष सहस मुख फाना।
कहंलौं गनौ अनंत कोटि लौ, अमहल महल दिवाना ।। २ ।।
ध्रुव प्रहलाद, विभीषण माते, माती शबरी नारी।
निर्गुण ब्रह्म माते बृन्दावन, अजहूँ लागु खुमारी ।। ४ ।।
सुर नर मुनि यति पीर . औलिया, जिन रे पिया तिन जाना,
कहंहि कबीर गूंगे की शक्कर, क्यों करि करै बखाना ।। ५ ।।

(शब्द १२ क० बी०)

दृष्टिकोण :—लोग कहते हैं कि प्राचीन काल में ऋषि महर्षि एक तरह की शराब जिसे सोम-रस कहते हैं का पान कर सब सुध-बुध भूल कर मग्न रहते थे। उक्त रस प्राप्त करने की विधि, उसका प्रचार और स्वाद का वर्णन इस पद में किया गया है जो गूँगे के अवर्णनीय स्वाद की तरह अवक्तव्य है।

अर्थ :— (१) उन प्रेम दीवानों का वर्णन नहीं हो सकता है जो प्रेम के रंग में रंगे हुए हैं। वह सप्त-रंगों के सम्मिश्रण से अथवा सप्त-नयों के द्वारा आत्मबल की शुक्लावस्था का बोध करके सोम रस-पान कर मस्त हो गए हैं, वे सदैव मग्न और सुखी रहे हैं एवं रहेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्य को ग्रहण करने वाले ये सतसंगी प्रेमामृत का प्याला पीकर मग्न हो गये हैं। उन्हें कोई चिंता नहीं है, वह निर्द्वन्द हैं और अनंत सुखी हैं। इन संतों ने पूर्णतया या अपूर्णतया त्याग की उष्णता द्वारा कषायों को निर्मूल किया है, अर्थात् कोई पूर्ण त्यागी होकर अथवा कोई सद् गृहस्थ भी जल कमलवत् गृहस्थी (जल) से भिन्न रहकर आत्म साधन में सफल हुए हैं।

जिस कामदेव ने संसार को भ्रम में डाल रखा है उसका इन संतों ने निग्रह किया है और निष्काम कर्म के द्वारा कर्म कालिमा हटा दी है। उक्त विधि से प्राप्त सौम्य-रस आनन्दकण रूपी निर्मल श्रोत की तरह सदैव सज्जनता की वृद्धि करता है। भावार्थ—जिस तरह शराब कों भभका यंत्र द्वारा वायु से द्रव पदार्थ में परिणत करते हैं, उसी प्रकार समत्व द्वारा आनन्द श्रोत की प्राप्ति होती है जो पति-पत्नी अथवा अन्य लौकिक सुख-साधनों के बिना भी स्वयं अपूर्णता का अनुभव नहीं होने देती है।

(२) गोरख दत्त, व्यास, वशिष्ठ ऋषि, हनुमान जी, नारद व सुखदेव आदि मुनि सभी उस सभा के सभासद हैं जहाँ पर देवाधिदेव शंकर (महादेव) और सनकादि ऋषि उस तृप्ति दायक आनन्दामृत का निरंतर पान करते रहते हैं। उक्त अवस्था को प्राप्त हुए सभी ऋषि-मुनि अमरत्व के आनन्द में मग्न हैं।

(३-४) अम्बरीष, याज्ञवल्क्य, जनक,जड़-भरत, सहस्रों फनधारी शेषनाग, इस प्रकार अन्य अनंत प्राणी जो रागी, वैरागी होकर या भक्ति के द्वारा उक्त सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण यहाँ तक कि शवरी जो शूद्र नारी थी वह भी इस निर्गुण-ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर मग्न हो गई है। श्रीकृष्ण की गीता का उपदेश वृंदावन के कण-कण को आनन्दमग्न कर रहा है, क्योंकि वह एकमात्र निर्गुण ब्रह्म की गाथा से पूर्ण है। वह आज भी आत्म-कल्याण का सर्वोत्तम मार्ग बना हुआ है।

(५) जिन महानुभावों ने प्रेमामृत के मूल इस सौम्य-रस का पान किया है वह देवता, मानव, मुनि, यति, पीर अथवा औलिया जो भी हो वही इसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जान सका है। यह आनन्द वर्णनातीत है, जिस तरह किसी गूँगे मनुष्य को शक्कर (मिष्ठान्न) खाने से जो स्वाद मिलता है उसका वर्णन वह नहीं कर सकता है उसी तरह से यह प्रेमामृत कितना आनन्ददायक है, इसको अनुभव करने वाला ही जान सकता है। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

(६८)

एक अचम्भा देखो भाई, ठाढ़ा सिंह चरावै गाई,
पहले पूत पीछे भई माई, चेला के गुरु लागे पाई ॥ १ ॥
जल की मछली तरबर व्याई पकड़ बिलाई मुरगे खाई,
बैलहिं डारि गूंनि घर आई, कूता कूं लै गई बिलाइ ॥ २ ॥
तलि कर साखा उपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल,
कहंहि कबीर या पद को बूझै ताकू तीन्यू त्रिभुवन सूझै ॥ ३ ॥

सामान्य अर्थ :—यह वैचित्र्य देखने योग्य है कि सिंह गाय को चरा रहा है अर्थात् सिंह गाय की सेवा कर रहा है। पुत्र का जन्म माता से पूर्व ही हुआ है, गुरु चेला की भक्ति करता हुआ चरण स्पर्श करता है। मछली जल के बाहर वृक्ष पर अपने अंडे-बच्चे देती है। मुर्गा बिल्ली को पकड़ कर खा लेता है। गौन बैल को छोड़ कर घर आ जाती है, कुत्ते को बिल्ली पकड़ ले जाती है। वृक्ष की शाखाएँ नीचे हैं जिसमें तरह-तरह के फूल लगे हुए हैं और उसकी जड़ ऊपर है। संत कबीर सुझाते हैं कि जो इस पद की विशेषता को जान लेता है उसको तीनों लोक संबंधी ज्ञान हो जाता है।

दृष्टिकोण :—संसार में भ्रमता हुआ प्राणी अपने स्वभाव को भूल कर अचम्भे की वस्तु बन गया। आत्म-ज्ञान होने पर ही यह वैचित्र्य समझ में आता है। उपर्युक्त पद में वर्णित वैचित्र्य निम्न प्रकार से सत्य प्रतीत होते हैं जिसका अनुभव होना ही ज्ञान का मूल है।

(१) हे भाइयो ! यह कितने आश्चर्य की बात है कि सिंह सदृश्य इन्द्रियों में श्रेष्ठ मन इन्द्रियों (गाई) के वशीभूत इनकी सेवा कर रहा है। इस प्राणी को शरीर (पूत) धारण करने के पश्चात् ही माया अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्र में डालती है और यह ज्ञानी जीव (गुरु) सम्पत्ति परिग्रह (चेला) के चरणों पर पड़ा हुआ है अर्थात् अपने ज्ञान और गुरुता का भान न होने के कारण यह जीव धन, सम्पत्ति या लौकिक प्रलोभन के अधीन हुआ स्वाभिमान और आत्म-गौरव को नष्ट कर चुका है, इस तरह दासत्व में भटक रहा है।

(२) सांसारिक सुख शांति के लिये, आत्म शीतलता (जल) को त्याग कर यह जीव (मछली) धन वैभवादि परिग्रह (तरवर) का आश्रय (ब्याई) लेता है। अपने संतोष और प्रतिष्ठा के आधार विनम्रता और भक्ति आदि (मुरगे) सद्गुणों ने विषय-वासना (विलाई) को ग्रहण किया है, अर्थात् सद्-गुणों की इच्छा को त्याग कर शरीर की चिंता में अपनी प्रतिष्ठा, नम्रता आदि खो चुका है। अस्तु, जीव अपने पुरुषार्थ को (बैलहिं) त्याग कर संग्रह वृत्ति (गूनि) में ही अपनी शक्ति को क्षीण कर रहा है। इन्द्रियों की तृप्ति के लिये वासनाओं को अपनाते हुए सेवा-भाव और ईश-भक्ति, (कूता) को खो चुका है।

(३) इस संसार वन में भटकते हुए प्राणी का मूल स्थान ऊर्ध्व लोक है, जो कि स्वातंत्र्य या पूर्ण विश्राम का स्थल है लेकिन यह अपने स्वभाव को लक्ष्य में न रखने के कारण अपने निस्तार और निवास को संसार में ही मानता है। स्वर्ग-सुख की कल्पना कर (जड़ लागे फूल) अनेकों जड़ कार्य में उलझा हुआ है, अर्थात् चैतन्य तत्व और परमधाम को भूल कर वह जड़ पदार्थों और धन-सम्पत्ति शरीरादि में उलझा हुआ है। स्वर्ग-सुख की कल्पना में अनेकों लौकिक क्रिया-काण्ड में उलझ कर अपने कर्तव्यों की इति समझता है। संत कबीर कहते हैं कि सांसारिक प्राणियों की इन कुचेष्टाओं और मिथ्या बुद्धि को अनुभव करने वाला विज्ञ पुरुष तीनों लोक का ज्ञाता द्रष्टा हो जाता है। अस्तु जड़ पदार्थों की प्रतीति और मोह छोड़कर आत्मानुभव या चैतन्य प्रतीति ही श्रेयस्कर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६६)

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे के ताना काहें के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया,
इला, पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया ॥ १ ॥
आठ कंवल दल चरखा डोले, पांच तत्व गुन तीनी चदरिया,
सांई को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक के बीनी चदरिया ॥ २ ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीनी चदिरया,
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ॥ ३ ॥

दृष्टिकोण :—शरीर एक झीनी चादर सदृश्य निर्बल है। यह बड़े यत्न से प्राप्त हुआ है। इसका सदुपयोग करना ही मानव जन्म की सफलता है। विरला कोई मानव इसे सुकृत्य के द्वारा सफल बनाता है लेकिन बहुधा इसका दुरुपयोग ही करते हैं। इसी प्रकार का अर्थ प्रकट करने वाला अगला पद भी है जो कि कुछ भिन्नता रखता है। उसको पृथक दर्शाया जा रहा है।

अर्थ :— (१) यह शरीर एक महीन चादर सदृश्य झिल्ली का वेष्टन मात्र है। इसका ताना, बाना क्या है। किस धागे से यह चद्दर बुनी गई है? ऐसा प्रश्न करते हुए संत कहते हैं कि निरंतर चलने वाले दायें व बाएँ स्वर जो हमारे शरीर की स्थिरता में सहायक हैं वह इला पिंगला नाम की स्वरवाहिनी नाड़ियाँ हैं। सुषुम्ना तीसरा यौगिक स्वर है, जो इस पूरे शरीर में व्याप्त वायु का सूचक है। वायु और जल के आश्रित इस मानव पुतले का यही संक्षिप्त परिचय है।

(२) इस शरीर को अवधारण करने में सहयोगी हृदय है जो अष्ट पांखुरियों के कमल सदृश्य है। अथवा अष्ट-कर्म समूह के संस्कार से यह विभिन्न आकृति या योनियों में परिभ्रमण करता हुआ चंचल चरखा है। इसका संस्कार पंच भौतिक तत्वों से हुआ है और यह त्रिगुणात्मक है। जीव इस शरीर की पर्याप्ति हेतु माँ के गर्भ में नौ दस माह तक सिकुड़ा बँधा रहता है, इस तरह बड़े यत्न से क्रमशः यह ठोस आकार को धारण कर जन्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेता है। इस देह को बनाने वाला इसका स्वामी दृश्यमान हुआ प्रत्येक शरीर में वास करता है।

(३) इस देह को पाकर देवता, मानव और मुनिजन भी अपना जन्म सफलीभूत नहीं कर सके हैं। बहुधा लोगों ने इसे कुकर्मों से मलीन कर डाला है, अस्तु, अब ऐसी भूल न करनी चाहिए। सृष्टि-सेवक कबीर आत्म सम्बोधन करते हैं कि यत्नपूर्वक शुद्धाचरण से मैं इस देह को धारण करता हुआ ज्यों-का-त्यों ही रख दूँगा। अर्थात् यदि मानव जन्म पाकर मैं जीवन मुक्त नहीं हो सका तो इस शरीर पर कर्म-कलंक भी न लगने दूँगा। इसे यत्नपूर्वक सद्व्यवहार और सदाचरण से यथावत रखने में समर्थ रहूँगा। कर्म कालिमा से मलिन नहीं होने दूँगा।

(७०) अथवा

चादर झीनी हो राम झीनी
ये तो सदा नाम रंग भीनी ॥ १ ॥
अष्ट कमल दल चरखा चाले, पांच तत्व गुण तीनी,
कर्म की पूनी कातन बैठी, कुकुरी सुरति महीनी ॥ २ ॥
स्वाँस को तार संसार के कात्या नौ मन प्रकृति प्रवीनी,
सो ले सूत जुगति से जग की रचना रची नवीनी ॥ ३ ॥
इला पिंगला ताना कीनों सुषमन भरनी दीनी।
नव दस मास बीनते लागे ठोक ठोक कर बीनी ॥ ४ ॥
ले चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीनी,
ताहि कबीर जुगति सो ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी ॥ ५ ॥

दृष्टिकोण :—इस मनुष्य जन्म को पाकर आत्म कल्याण करने की प्रेरणा।

अर्थ :— (१) इस शरीर की सुन्दरता को बढ़ाने वाला ऊपर से चिकना चर्म वेष्टन बहुत ही पतली झिल्ली है। इस चमड़े के अन्दर ढका हुआ यह देह बहुत घृणित व अपवित्र है। यह जीव इसके रंग रूप और नाम पर मोहित है और आत्म-गुणों से अपरिचित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) पंच-तत्वों के आश्रय से दृश्यमान यह शरीर त्रिगुणात्मक है। इसमें हृदय का स्पंदन होता रहता है और यह शरीर अष्ट-कर्म[1] समूह से संस्कारित है। यही कर्म की पूँजी है जो प्रति समय के हमारे सूक्ष्म विचार और कार्यों के द्वारा नवीन कर्म-सूत्र की लच्छी (कुकरी) तैयार करता है। अर्थात् वर्तमान ही भविष्य का जनक है।

(३) श्वास-प्रश्वास के प्रति समय हमारी मानसिक भावनाओं के नौ भेद नई-नई कर्म प्रकृतियों को ग्रहण करते हैं और हमारी भविष्य-सृष्टि की रचना का सूत्र युक्तिपूर्वक तैयार होता है। इस प्रकार नई-नई सृष्टि बनती रहती है और संसार का क्रम एक क्षण के लिये भी रुकता नहीं।

(४) इला, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ इस शरीर के ताने-बाने का कार्य करती हैं। इस शरीर के पूर्ण होने में नौ दस माह का समय लगता है। इसे अच्छी तरह से पुष्टता प्राप्त होती है तब दृश्यमान होता है।

(५) इस शरीर रूपी चादर को देव, मानव और मुनिगण भी अज्ञानता के कारण मलीन कर देते हैं। दुर्लभ मानव-जन्म पाकर आत्म-कल्याण नहीं कर पाते हैं। संत कबीर इसे युक्ति पूर्वक उपयोग में लाते हैं और यदि उज्वलता में वृद्धि नहीं कर पाए हैं तो इसे मलीन भी नहीं होने दिया है अर्थात् दुष्कृत्यों से बचते रहे हैं।

(७१)

मोरे लग गए बान सुरंगी हो,
धन सतगुरु उपदेश दियो है, हो गयो चित्त भिरंगी हो,
ध्यान पुरुष की बनी है तिरिया, घायल पांचों संगी हो ॥ ५ ॥
घायल की गति घायल जाने, के जाने जात पतंगी हो।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, निशिदिन प्रेम उमंगी हो ॥ २ ॥

---

१. ज्ञान का आवरक, दृष्टि का आवरक, मोहनीय, वेदनीय, अंतराय, आयु, नाम (रूप) गोत्र—यह अष्ट कर्म समूह जीव की संसारावस्था के कर्म-संस्कार हैं जो सदैव परिवर्तन करते हुए भव-परावर्तन में कारण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टिकोण :—निर्दोष या पवित्र भावनाओं से व्यक्ति, प्राणी मात्र के प्रेम में मग्न हो जाता है। उसके प्रेमोन्माद में जगत व्यापी समस्त प्राणियों के प्रति वात्सल्य का लक्ष्य होने से उसमें निरंतर वृद्धि होती है। उसका आनन्द अक्षीण और स्थायी हो जाता है।

अर्थ :— (१) उस सद्गुरु को साधुवाद है, जिसने उपदेश द्वारा मेरे मन को भौंरों की तरह बना दिया है। जिस तरह भौंरा विभिन्न फूलों की सुगन्ध और उसकी मधुरता का पान करता है लेकिन उनको कोई हानि नहीं पहुँचती है, अपितु भौंरों के गुन्जार से पुष्प वन की शोभा एवं श्री वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार से तीर की तरह लक्ष्यवेधी हितोपदेशी शब्दों का श्रवण करने से मेरे हृदय में वह पवित्रता आ गई है कि मैं प्राणी मात्र पर मुग्ध हुआ उनके गुण आदि विशेषताओं को ग्रहण कर लेता हूँ और सभी पर वात्सल्य होने से उनका प्रेम भाजन भी हो गया हूँ। चित्त की एकाग्रता मेरे पुरुषार्थ के लिये अर्द्धांगिनी सदृश्य अनुगामिनी हो गई है।

इस तरह प्राणी मात्र के प्रेम में बिंधे हुए व्यथित पुरुष की अवस्था का ज्ञान उसी अवस्था को प्राप्त हुए घायल व्यक्ति को हो सकता है, अथवा पतिंगों को जो कि दीपक की लौ से प्रेम रखकर उसी में भस्म हो जाने में अपना कर्तव्य समझते हैं। संत कबीर कहते हैं कि वात्सल्य का यह सागर मेरे हृदय में अहर्निशि उमड़ता हुआ अपार हो रहा है। मुझे कोई चिंता या बाधा इस सृष्टि में नहीं है मैं अत्यन्त आनन्द मग्न हूँ।

(७२)

गुरु बड़े भृंगी हमारे गुरु बड़े भृंगी,
कीट सौ ले पतंग कीन्हों, आपसों रंगी।
पांव औरे कोई काया[१] सब भये भृंगी।
पंख और रंग[१] औरे रंग सो रंगी।
जाति कुल ना लखै कोई सब भए भृंगी।

१, रंग और काया—यह दो शब्द पद के अर्थ व राग मिलाने को जोड़े गए हैं बीजक में नहीं मिलते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नदी नाले मिले गंगे सब कहें गंगी।
दरियाव दरिया जा समावे संग में संगी।
चलत मनसा अचल कीनो मन हुआ पंगी।
तत्व में नितत्व दरसा, संग में संगी।
बंध ते निरबंध कीन्हा तोड़ सब संगी।
कहं कबीर अगम गम, नाम रंग रंगी

दृष्टिकोण :—सतगुरु के संयोग से तुच्छ प्राणी भी उच्चता को प्राप्त होता है। यदि मानव अपना हठ और अहंकार छोड़कर सार्वभौमिकता के पथ पर आ जावे तो उसमें आश्चर्यकारी परिवर्तन असंभव नहीं। नाम का महत्व नहीं, भावना और कार्य महत्वपूर्ण होने चाहिये। आत्म कल्याण का यही उपाय है।

अर्थ :—(१) हमारे गुरु श्रेष्ठ पुरुष हैं। वह भौंरे की तरह गुण ग्राहक और सर्व प्रिय हैं। इन सतगुरु के संसर्ग से कीट सदृश्य तुच्छ मेरी आत्मा में बड़ा परिवर्तन हुआ है। मैं अब निरर्थक कीट न रह कर पतिंगा बन गया हूँ। और आलोक की ओर आकृष्ट हुआ हूँ। मैं परमतत्वोपासक होकर उसी रंग में रंगा गया हूँ।

एक विशेष परिवर्तन जो मेरे आचरण (पैरों) में हुआ है उसके कारण मेरा रूप गुण बदल गया है। अर्थात् मेरे आचरण में सत्यता का समावेश होने से मैं सत्याचरणी हो गया हूँ। मेरे रूप और गुणों में परिवर्तन होने से मैं भी दूसरे भृंगों सदृश्य मोहक और यथार्थ दृष्टि में स्वार्थी हो गया हूँ। दूसरों को कष्ट पहुँचाए बिना मैं गुणग्राही व उपकारी हो गया हूँ, ऐसी विशिष्टता मुझमें आ गई है।

(२) मेरी शक्ति (पंख) पहले जैसी नहीं रही। मेरे दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हो गया है। मैं अब पूर्णतया बदला हुआ हूँ। मेरा कोई भी जाति-कुल नहीं रहा है। सृष्टि व्यापी प्राणियों में मैं घुल-मिल गया हूँ। मैं एक-सा काला भौंरा हो गया हूँ।

(३) जिस प्रकार गंदे नाले व छोटी बड़ी नदियाँ बरसात पड़ने पर एकत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर गंगा में मिल जाती हैं। वे गंगा से पृथक न रह कर उसी के समान पवित्र और श्रेष्ठता कों प्राप्त हो जाती हैं, अर्थात् स्वार्थ और अहं को हटा कर सभी अपने अस्तित्व को मिटाकर पूज्य बन सकते हैं।

(४) सद्गुरु के उपदेशों का जो अमिट प्रभाव हुआ वह अवर्णनीय है। हमारे मन की चंचलता समाप्त हो गई है और हमें मानसिक स्थिरता प्राप्त हुई है। अश्व सदृश्य चंचल मन पंगु हो गया है, अर्थात् मन स्थिर हो गया है। विश्वव्यापी आत्मतत्व में जड़ता का जो लेप चढ़ा हुआ है, उसकी निस्सारता का अनुभव भी हुआ है। भावार्थ, विदेह आत्मा की सदेहावस्था औपचारिक व क्षणिक है इसका आभास प्राप्त हुआ है। स्वतंत्र सुखी, और निष्काम आत्म-तत्व, स्वानुभव न होने से, माया और मोह के कारण असंख्य प्राणियों से नाता जोड़ कर किस प्रकार उलझा हुआ है, इसका अनुभव हुआ है।

(५) अतत्व और तत्व का सम्बन्ध विच्छेद करने की योग्यता और उसके कारणों से भलीभाँति परिचित होने से अबन्ध दशा का अनुभव करता हूँ। संत कबीर कहते हैं कि इस प्रकार शरीरादि बंधन से पृथक होकर मैं अब एक मात्र नाम (आत्मा) के गुणों में रंगा हुआ हूँ। यह अगम्य परमात्म तत्व अब मुझे गम्य व सहज प्रतीत होता है। भावार्थ, आत्म-तत्व की व्यापकता, परिचय और योग्यता का आभास मिल जाने से सृष्टि-व्यापी इस एक आत्म-तत्व की निष्ठा और प्रेम का सहज प्रादुर्भाव हुआ है।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्ड २

संत कबीर की साखियों की टीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कबीर की साखियां

(१)

जहियाँ जन्म मुक्ता हता तहियां हता न कोय,
छठी तुम्हारी है जगा तू कहां चला बिगोय ।

अर्थ :—तेरी मुक्तावस्था में तू एक मात्र ब्रह्म है, द्वितीय कोई वस्तु या तत्व तेरे साथ नहीं है। तू पंच तत्वों से प्रथक छठा तत्व है, तुझे ही सत्य या शिव रूप कहते हैं। तू अपने स्थान को प्राप्त न होकर कहां भटकने जा रहा है।

भावार्थ :—संसारी जीवों को सम्बोधित करते हुये संत कबीर उसके सत्य रूप को समझाते हैं। हे प्राणी। तू एक मात्र ब्रह्म है। यह वर्तमान पंच-तत्व शरीर तू नहीं, तू इनसे प्रथक छठा सत्य तत्व है। अपना परिचय प्राप्त होने से माया जनित शरीर तथा परपदार्थों में अपनत्व का भ्रम छूटेगा तब तू स्वतंत्र हो सकेगा अन्यथा संसार भ्रमण करता ही रहेगा। अस्तु चेत जा !

(२)

शब्द हमारा तू शब्द का, सुन मति जाहु सरक,
जो चाहो निज तत्व को, तो शब्दहि लेहु परख ।

अर्थ :—ज्ञान आत्मा की वस्तु है, यही निज है, अन्य दृश्य पदार्थ मेरा नहीं। मैं ज्ञान का भण्डार हूँ, यह सुन कर संतुष्ट होने या टाल देने जैसी बात नहीं है। जो आत्मतत्व की चाह है, आत्म-रुचि है, तो ज्ञान की परीक्षा कर यथार्थतया स्वीकार करो।

भावार्थ :—संसार के प्राणी वर्तमान अवस्था में पूर्ण ज्ञानी नहीं हैं। अपनी शुद्धावस्था में ज्ञान ही आत्मा है, अथवा आत्मा पूर्ण ज्ञाता-दृष्टा है। यही उसकी परमात्म दशा है। यह बात सुनकर टाल देने की नहीं अथवा संतुष्ट हो कर बैठने की नहीं। यदि तुझे अपने पर गर्व है और आत्म रुचि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तो ज्ञान को अपने जीवन में उतारो। अर्थात् आत्मभान होने पर निज-पद की प्राप्ति में लग जाओ, विवेक पूर्वक आचरण करो।

(३)

शब्द हमारा आदि का, शब्दै पैठा जीव,
फूल रहनि की टोकरी, घोरे खाया घीव।

अर्थ :—आदि तत्व यह आत्मा ही है जो कि विभिन्न शब्दों में वर्णित है। यही सत्य है। जीवन के रूप में साकार हुआ यह आत्मा ही आदि शब्द भी है। अपने इस नश्वर शरीर को जो सैकड़ों छिद्र युक्त (दोष युक्त) है उसी को देख कर तू आनन्दित हो रहा है। तेरा विवश मन इन्द्रियों की सहायता से अपने अदृश्य तत्व जो सत्य पदार्थ है से अनभिज्ञ होने के कारण उसे नष्ट कर रहा है। अर्थात् उसकी योग्यता का मूल्यांकन नहीं कर सकता इस कारण उसकी ओर से निश्चिन्त (उदासीन) है, यही सत्य की उपेक्षा है।

भावार्थ :—भौतिकता में आबद्ध तू अपने आप को भूला हुआ है। जिस प्रकार श्रृगालों में पला हुआ शावक अपनी योग्यता और शक्ति का भान न होने से अपने को श्रृगाल ही मानता है उसी प्रकार तू अपने शरीर और भौतिक सुखों को ही यथार्थ सुख मान कर अपनी अमूल्य आत्मा इन्द्रियों को सौंप कर निश्चित हुआ पड़ा है।

(४)

शब्द बिना सुरति आंधरी, कहो कहां को जाय,
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय।

इस लोक में सत्यासत्य एकामेक हो रहा है। जब तक मनुष्य एक मात्र सत्य "चैतन्य" जो ज्ञानमय है, का परिचय प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक इस संसार के चक्र से नहीं छूटता है, अर्थात् जन्म-जन्मान्तर में सुख-दुःख का बोझ लिये भटकता फिरता है। ज्ञान अथवा चैतन्य परिचय के बिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेक जाग्रत नहीं होता है, अर्थात् जाग्रत मनुष्य भी ज्ञान के बिना (सुप्त) अन्धा ही है। इसलिए वह सन्मार्ग को प्राप्त नहीं हो रहा है, क्योंकि उसे सत्यासत्य का विवेक ही नहीं है।

इस पद में विद्वत्ता को गौण कर चैतन्य-परिचय को प्रधानता दी गई है। ज्ञान का प्रमुख कारण सत्य-परिचय है, और यही विवेक का मूल्य है। ज्ञान के बिना विद्वत्ता तो अन्धे के सदृश्य है। लौकिक ज्ञान भी तभी श्रेष्ठ हो सकता है जब जड़ और चैतन्य के भेद को प्राप्त होकर, चैतन्य की श्रद्धा और प्रेम प्राप्त हो जावे।

(५)

शब्द शब्द जहु अंतरे, सार शब्द मन लीजै,
कहहि कबीर जहाँ सार शब्द नहिं, धृग जीवन सो जीजै।

दृष्टिकोण :—संत कबीर कहते हैं कि थोड़े-थोड़े अन्तर से जाने गये अनेकों सत्य यथार्थतः सत्य नहीं हैं। इनमें और निश्चय सत्य में बहुत अन्तर है। उदाहरणतः श्री रामचन्द्र भगवान हैं। कौन से रामचन्द्र ? श्री दशरथ के पुत्र, लक्ष्मण के भ्राता, भरत के भाई 'राम', श्री सीता के कंत, अयोध्या के राजा, वही तो भगवान हैं। यह सब कथन विभिन्न दृष्टियों से सत्य होते हुए भी निश्चय सत्य नहीं है क्योंकि भगवान उपर्युक्त सभी उपाधियों से रहित होते हैं। जहाँ उपाधि है, वहाँ व्याधि है। लेकिन भगवान तो आधि, उपाधि और व्याधि रहित होते हैं। हां यहां तक तो सत्य हो सकता है कि उपर्युक्त विशेषणों सहित जो 'राम' हैं वह 'राजा' राम हैं। उपरांत इन उपाधियों से पृथक—सच्चिदानन्द चैतन्य स्वरूप—उपर्युक्त आत्मा वह आत्मा चाहे जिस नाम से पहिचानी गई हो अपनी पूर्णता को प्राप्त होने पर भगवान है, 'राम' है, 'आत्मा राम' है। संत कबीर इन्हीं आत्मा 'राम' के उपासक थे और इसी रहीम के अनुयायी थे। वह न तो हिन्दू थे न मुसलमान, न फकीर थे न संत या गृहस्थ, वह जो थे वही थे। वह तो मानव थे। मानवीयता के उपासक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे, इसीलिए सभी विद्वानों ने उनके द्वारा प्रतिपादित रहस्यमय वाङ्मय को अपनी रुचि अनुकूल इधर-उधर खींचा ताना है। जो तटस्थ हैं, ज्ञानी हैं वह सम्पूर्ण सृष्टि में पूज्य होते हैं। उसे किसी सम्प्रदाय के ढांचे में ढाल देना सहज है, लेकिन वह क्या है, इसका विवेचन कठिन होता है।

अर्थ :—सत्य क्या है? कौन है? इस पचड़े में न पड़ कर, निश्चय सत्य का अनुभव करने वाला इस सत्य को हृदयंगम कर लेता है। संत कहते हैं कि वह जन्म ही व्यर्थ है अथवा ऐसा जीवन निरर्थक हैं जिसमें निश्चय सत्य का अनुभव न हुआ हो। एक चैतन्य का ज्ञान और उसकी रुचि मानव मात्र को निश्चय सत्य का ज्ञान करा सकती है। विवेक ही सुख का मूल है, अस्तु यह किसी कसौटी पर कसने के सिवाय अंतरंग की कसौटी पर परखा जा सकता है। जहाँ सत्य प्रतीति है वहीं सुख है। संसार के किसी बाह्य पदार्थ या जड़ चैतन्य में सुख का बीज नहीं है, वह तो प्रत्येक घट में निवासी आत्मा का ही गुण है। जहां राम है वहाँ निश्चय आराम है।

(६)

शब्दै मारा गिर परा, शब्दै छोड़ा राज,
जिन जिन शब्द विवेकिया तिनका सरिगो काज ॥

संकेत :—सत्य की बहुरूपता और बहुगुण समुदाय में, सत्य का स्पष्ट रूप मुखरित नहीं होता है। मनुष्य चाहे जितना विद्वान क्यों न हो सत्यासत्य के यथावत् परिचय के बिना इस भव-भ्रमण के चक्र से बचता नहीं।

अर्थ :—यह संसार शब्दमय है अर्थात् ब्रह्ममय है। एक जीव प्रतिपक्षी पर आघात करता है दूसरा पराजित होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से वह अकर्त्ता है, तब यह समझ में नहीं आता है कि यह सांसारिक लीला क्योंकर संभव है? अभी सबने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि महात्मा गांधी के शब्दों से प्रभावित होकर ही आंग्ल कि भारत को स्वतंत्र घोषित करने को बाध्य हुआ। इससे ब्रह्म का अकर्त्तापना भी सत्य सिद्ध नहीं होता है।

यह सृष्टि न पूर्णतया ब्रह्म मय है और न पूर्णतया जड़ की क्रियाओं से व्याप्त होने के कारण असत्य या मायापूर्ण है। अनेकांत दृष्टि से विचारने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर यह मायामय ब्रह्म से परिपूर्ण है। इस कर्ममल सहित स्वर्ण-खान से स्वर्ण-कणों को पृथक करने हेतु विशेष श्रम आवश्यक है, जो कि सत्यासत्य निर्णय (विवेक) के बिना संभव नहीं है।

(७)

शब्द हमारा आदि का, पल पल करहू याद,
अंत फलेगी माहिली, ऊपर की सब बाद॥

संकेत :—यह निर्णायक सत्य है। इसमें धूर्तता और पाखण्ड प्रदर्शन आदि को स्थान नहीं है। आत्महित, स्वानुभव या स्वसंवेद्य है, इसमें व्यर्थ का क्रिया काण्ड और अविवेक सदैव पराजित होता है।

अर्थ :—आत्मा का सत्य स्वरूप स्वयं सिद्ध है। इसको समझाने के लिये सैकड़ों मतमतान्तरों ने जन्म लिया है। मेरी बात क्षणप्रतिक्षण आपके सम्मुख रहेगी। निर्णायक सत्य या आत्मस्वरूप इन सब बकवादों और क्रिया काण्ड से पृथक, जैसा है वैसा ही रहेगा।

यह निश्चय है कि आत्महित में धूर्तता अथवा अविवेक का आश्रय कभी सफलता प्राप्त नहीं कराता है और पाखण्ड या प्रदर्शन कभी सफल नहीं होता है। अर्थात् आत्मा के अकर्तृत्व अथवा कर्तृत्व का एकांत पक्ष कभी सत्य नहीं है और सत्य की प्राप्ति के लिये प्रचलित पाखण्ड या प्रदर्शन कभी सफलता प्राप्ति में साधक नहीं होता है।

(८)

जिन जिन संभल ना कियो अस पुरपाटन पाया
झालिपरे दिन आथए, संभल कियों न जाय॥

अर्थ :—यह मानव जन्म व ज्ञातृत्व शक्ति को प्राप्त होकर जिसने आत्म-साधन नहीं किया है उसके दुःखों का अंत नहीं। इस बहुरूपिये जीवात्मा के लिये अपना वेश बदलने को चौरासी लाख योनियां हैं। उसमें से मानव योनि ही एक सर्वोत्कृष्टि साधन व सहयोगी माध्यम है जिसके सदुपयोग से मनुष्य आत्म-कल्याण कर सकता है। अस्तु हे महापुरुष! इस जन्म का सहयोग लेकर आत्मस्वातंत्र की ओर उन्मुख हो। वर्षा ऋतु आने पर यदि कृषक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खेती के लिये पूर्ण सचेष्ट नहीं हुआ तो उसका पूरा साल व्यर्थ चल जाता है। इसी प्रकार इस मनुज-शरीर का उपयोग यदि आत्म साधन के हेतु न किया तो वृद्धावस्था आने पर चारों ओर सूर्यास्त जैसा अंधकार होगा एवं शरीर असमर्थ हो जावेगा तब कुछ नहीं बन पड़ेगा, अस्तु, सावधान हो जा !

(९)

यहांई संभल करिले, आगे विषयी बाट,
स्वर्ग बिसाहन सब चले, जहां बनियां ना हाट ॥

अर्थ :—पुनश्च, आत्महित के लिये उकसाते हुए, संत कबीर कहते हैं यहाँ इसी जन्म में हे मानव ! तू आत्म साधन करले। इसके आगे आने वाली सभी योनियों में मनुष्य जैसी शक्ति नहीं है। भविष्य के सभी जन्म विषयवासना पूर्ण, अज्ञानता सहित हैं। उन जीवधारियों में संयम करने और आत्मा को समझने की शक्ति नहीं है। अस्तु मेरी बात मान इसी में तेरा हित है।

इस जन्म में सभी मनुष्य स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से पूजा, उपासना, यज्ञ होम, दान, पुण्यादि कृत्य करते हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि स्वर्ग प्राप्त की इच्छा को पूरी करने वाला वणिक यहाँ पर नहीं है जो कितना भी रुपया लेकर स्वर्ग प्राप्त होने में सहायक बन सके। यहां पर ऐसा बाजार भी नहीं है कि जहां पर स्वर्ग पहुँचने का टिकिट मिल सके। स्वर्ग-सुख तो उस तृण या छिलके के समान है जो अन्न-दाने की खेती करने वाले कृषक को बिना मूल्य मिलते हैं; उसी प्रकार आत्मकल्याण के इच्छुक मुमुक्षु को आत्म साधन के मार्ग में स्वर्गीय सुख एवं भोगोपभोग स्वयमेव प्राप्त होते हैं।

(१०)

जो जानहु जिय आपना, करहु जीव को सार,
जियरा ऐसा पाहुना मिले न दूजी बार ॥

अर्थ :—यदि आपको आत्मा के प्रति कुछ लगाव या प्रीति है, तो जीवन का सार आत्म-कल्याण कीजिये। शरीर और अन्य भौतिक आकर्षणों में उलझा हुआ प्राणी आत्मा के प्रति किंचित् भी ध्यान नहीं देता है। कारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसे हेय और उपादेय का ध्यान ही नहीं रहता है। यह मानव जन्म अनायास प्राप्त हुए एक अतिथि के सदृश्य है। यह अतिथि दुबारा कभी मिलेगा या नहीं, निश्चित नहीं है। अस्तु हे मानव, यह आशा छोड़ कि यह मानव जन्म दुबारा फिर प्राप्त होगा, फिर कभी आत्म-कल्याण कर लूँगा। नहीं, अभी और इसी जन्म में आत्म-सेवा व स्वपरिचय हेतु कटिबद्ध हो जा, अन्यथा यह मानव जन्म व्यर्थ चला जावेगा।

(११)

जो जानहु जग जीवना, जो जानहु सो जीव, ॥
पानी पचावहु आपना, तो पानी मांग न पीव ॥

अर्थ :—यदि सांसारिक जीवन को यथार्थता प्रदान करना चाहते हो तो जानने योग्य एक मात्र जीव तत्व है। यह चैतन्य अथवा जीव तत्व इस सृष्टि में पूर्णतया व्याप्त है और वही जानने समझने और श्रद्धा करने योग्य है। यही उपादेय तत्व है।

इस जीव तत्व की जानकारी या अनुभव सहज नहीं इसके लिये लौकिक अभिमान को चूर्ण करना होगा। निर्मद होकर प्राणी मात्र में साम्य भाव रखना होगा। इस हेतु दूसरों को मेरे द्वारा कोई कष्ट न होवे यह ध्यान तो रखना ही है साथ ही सांसारिक तुच्छ कार्यों के लिये हम किसी दूसरे के ऋणी न होवें यह भी ध्यान देने योग्य है। इस प्रकार संत ने दूसरों से पानी की अपेक्षा रख कर अपनी तृष्णा शांत करने की भी मनाही की है। अर्थात् आत्म साधन स्वापेक्ष साध्य है।

(१२)

पानी पियावत क्या फिरे, घर घर सायर वारि,
तृषावंत जो होयगा, पीयेगा झख मार ॥

अर्थ :—परोपदेशक सभी होते है। उस उपदेश पर चल कर दूसरों को प्रभावित करने वाले प्रायः अल्प संख्या में मिलेंगे। संत कबीर समझाते हैं कि प्रत्येक प्राणी आनन्द का समुद्र और शीतलता तथा शांति प्रदायक ज्ञान का भण्डार है। किसी को भी उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'सीख वाको दीजिये, जाको सीख सुहाय'

इस उक्ति के अनुसार अपनी प्रतिष्ठा रखना चाहते हैं तो सर्वत्र पहुँच कर उपदेश देने की आवश्यकता नहीं।

जिसे ज्ञान-पिपासा जाग्रत होती है, वही कुएँ रूपी ज्ञानी विद्वान के समीप पहुँचता है, सत्संग करता है, अस्तु इच्छुक प्राणी स्वयं आकर अपने अंदर प्रवाहित सुख शांति के निर्झर का परिचय प्राप्त करेगा।

(१३)

हंसा मोती विकानिया, कंचन थार भराय,
जो जाको मर्म न जाने, सो ताको काह कराय ॥

अर्थ :—स्वपर कल्याणकारी सदुपदेश को विद्वत्-वर्ग माया के लोभ में श्रीमानों व धनी वर्ग में प्रवाहित करते रहते हैं। अर्थात् अधिकांश विद्वत्वर्ग मध्यम अथवा अल्प धन वाले होते हैं। धनी पुरुष अपनी माया के बल पर उनके ज्ञान का आनन्द लेते हैं। यह एक अनोखी बात है कि धनीवर्ग ज्ञान का महत्व नहीं समझते हैं और विद्वान धन को महत्व नहीं देता। इस प्रकार दोनों वर्ग धन और ज्ञान का कोई कल्याणकारी उपयोग नहीं कर पाते हैं। कारण यह कि धनीवर्ग ज्ञान का मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं और न विद्वान धन की वृद्धि का ही महत्व समझते हैं। इस प्रकार दोनों वर्ग इन उपयोगी तत्वों का दुरुपयोग करते हैं।

(१४)

हंसा तू सुवर्ण वर्ण क्या वरणों मैं तोहि,
तरवरि पाय पयहि लहौ, तबै सरावहु तोहि ॥

अर्थ :—हे विवेकी बंधुगण ! तुम क्षीर-नीर को पृथक करने वाले हंस की तरह वैज्ञानिक हो। अर्थात् माया से पृथक ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करने की योग्यता रखते हो। वर्तमान अवसर पर आप माया मुग्ध हैं अस्तु आपकी शोभा सजावट के कारण वह पीत वेष अवर्णनीय हो रहा है। आपकी प्रशंसा तो उक्त अवसर पर विशेष होगी जबकि आप माया लिप्त निज ब्रह्म के हितार्थ आश्रय-बुद्धि को त्याग कर स्वतंत्र निज रूप की आराधना में लग जाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार पराश्रय बुद्धि से पृथक होने पर ही आपको दुग्धामृत की प्राप्ति होगी। भावार्थ — प्रत्येक प्राणी हंस सदृश्य विवेकी और अमरत्व प्राप्त करने की क्षमता रखता है, लेकिन विद्वान होकर भी यदि वह माया मोह में लिप्त हो तो यह एक विचित्रता और दुर्भाग्य का विषय है। उसे पराश्रय में सुख शांति नहीं है निज शुद्ध स्वरूप और स्वाधीनता ही श्रेयस्कर है।

(१५)

हंसा तू तो सबल था, हलुकी अपनी चाल,
रंग कुरंगे रंगिया, तैं किया और लगवार॥

अर्थ :—हे विवेकी मानव ! तू तो सर्व शक्तिमान ईश्वर जैसा धवल स्वच्छ अर्थात् कर्म कालिमा से रहित है। तूने अपनी योग्यता और पद का ध्यान न रखते हुए निकृष्ट आचरणों द्वारा अपने आपको कर्म कालिमा से लिप्त कर रंग-बिरंगा बना लिया है। इस प्रकार पदच्युत होकर तू स्वामी न रह कर दास बन गया है। यह कितनी बड़ी भूल हुई है !

भावार्थ—प्रत्येक प्राणी सर्व शक्तिमान परमात्मस्वरूपी स्वामित्वपने से युक्त है। वर्तमान समय में वह अपनी योग्यता और उच्चता से अपरिचित शरीर-बुद्धि होने के कारण विषय भोगों में लिप्त है। स्वरूप से अपरिचित हमने कर्मकालिमा से युक्त होकर अपने विभिन्न आकार, योनियां और रूप रंग पाया है। वर्तमान रूप में ही अपनत्व मान कर यह विषयों का दास हो रहा है। इस प्रकार यह एक अत्यंत निन्दनीय तुच्छ अवस्था को प्राप्त हो गया है।

(१६)

हंसा सरवर तजि-चले, देह परी गौ सुन्न।
कहंहि कबीर पुकार के तेंही दर तेहि थुन्न॥

अर्थ :—हे मानव, ज्ञानार्जन द्वारा प्रबुद्ध होकर भी तू आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर नहीं हो रहा है, यह बड़े दुर्भाग्य की बात है। हे चेतन, तेरा यह शरीर तुझसे सर्वथा पृथक है, तू इसका मोह नहीं छोड़ सका यह चिंता का विषय है। जब यह जीवात्मा इस शरीर को छोड़ कर चल देवेगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् मृत्यु आवेगी तब तू इस देह को जिसे अपनी मान रहा है, चैतन्यहीन जडवत् त्याग देवेगा। वही यह सक्रिय शरीर ज्यों का त्यों अपने जड़ स्वभाव के आश्रय यहाँ ही पड़ा रह जावेगा।

संत कबीर आत्म सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि यदि ज्ञानी प्रबुद्ध प्राणी होकर पराश्रित बुद्धि का त्याग नहीं करते हैं, तो फिर यहाँ जन्म-मरण, देह-धारण और पराश्रय बुद्धि हटने की नहीं। अर्थात् मानव मात्र ही इस योग्यता को रखता है कि वह आत्म-कल्याण कर सके। अन्य सभी योनियों में ऐसी योग्यता नहीं अस्तु समय रहते चेत जाना ही आवश्यक है।

(१७)

हंसा बकु देखा एक रंग, चरैं हरियरे ताल,
हंस क्षीर ते जानिये, बकुहि भरेंगे काल ॥

अर्थ :—हंस व बगुला दोनों श्वेत वर्ण होने से देखने में एक से लगते हैं। इसी प्रकार अज्ञानी और ज्ञानी दोनों देखने में एक जैसे भोगोपभोग और क्रिया कलाप करते हुए एक जैसे संसारी प्राणी दीखते हैं। दोनों ही संसार की सुख सुविधा और अपने शरीर के भरण-पोषण में लिप्त एक जैसे दिखलाई पड़ते हैं।

इन दोनों के पृथकत्व की परीक्षा समय पर होती है। जिस प्रकार हंस के सम्मुख पानी मिला दूध रखने पर वह पानी छोड़ कर दुग्ध मात्र पी लेता है जैसा कि बगुला नहीं कर सकता है। उसी प्रकार ज्ञानी और साधारण व्यक्ति का परिचय आपत्तिकाल में मिलता है। जबकि विवेकी आत्म सुरक्षा और संयम के साथ उसका सामना करता है लेकिन साधारण पुरुष कायरता और व्यामोह में पथ-भ्रष्ट और भीरु हो जाता है। बगुले जैसे ढोंगी पुरुष ऐसी आपत्ति के समय में विरोधियों द्वारा पीड़ित होकर मरण को प्राप्त होते हैं लेकिन ज्ञानी उसका सामना करने की शक्ति और संयम से सफलता प्राप्त करता है।

(१८)

काहे हरनी दूबरी, यही हरियरे ताल,
लक्ष अहेरा एक मृग केतिक टालै भाल ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ :—यह संसार भौतिक आकर्षण और सुख साधनों से सम्पन्न है, भरपूर है। इसमें मानवीय मन की चंचल प्रवृत्तियाँ जो भर कर संतुष्ट होने को प्रयत्नशील रहती हैं। इतना सब कुछ भरपूर होने पर भी तृष्णा दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती रहती है, इससे प्रत्येक प्राणी असंतुष्ट दिखलाई देता है एक हरिण का उदाहरण देते हुए संत कबीर समझाते हैं कि समस्त सुख साधनों के रहते हुए भी मृगतृष्णा में अशांत भटकते हुए प्राणियों के लिये सहस्रों घातक तत्व (शिकारी) चहुँ ओर से घेरे हुए हैं।

बचाव के सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी लाखों शिकारियों से घिरा हुआ मृग अपना बचाव करने में जिस प्रकार असमर्थ होता है उसी प्रकार यह संसारी प्राणी मृगतृष्णा में भटकता हुआ सहस्त्रों आधि, व्याधि, दुःख, वेदना और घातक तत्वों से बचाव रखता हुआ कब तक सुखी रह सकता है। मृत्यु और अशांति उसे चारों ओर से घेरे हुए हैं।

(१९)

तीन लोक भौ पीजरा, पाप पुण्य भौ जाल,
सकल जीव सावज भये, एक अहेरी काल ॥

अर्थ :—सृष्टि व्यापी अनंत ब्रह्म को तीनों लोक में व्याप्त चौरासी लाख योनियों का जन्म मरण उसे घेर रखने वाले पिंजड़े की तरह है। अर्थात् वह कर्माश्रित विभिन्न योनियों के कारागृह में भटकता फिरता है। इस जीव को एक योनि से दूसरी योनि में फँसाए हुए ले जाने वाला पाप और पुण्य का जाल बेड़ी—हथकड़ियों के सदृश्य है जिस प्रकार कैदी को जेल से बाहर अथवा बदली करने में इधर-उधर ले जाते समय बंधन डाले रहते हैं उसी प्रकार जीव को पाप-पुण्य का बंधन सदैव लगा हुआ है। इस संसार में समय परिवर्तन रूपी काल चक्र अथवा मृत्यु का यमदूत संसार में व्याप्त जीवों को आखेट का निशाना बनाए रहता है।

भावार्थ—संसार की विभिन्न योनियाँ जीव का कारागृह है, पाप-पुण्य की बेड़ियाँ हैं। सजा देने वाला समय चक्र अथवा मृत्यु इस जीव के पीछे प्रत्येक समय लगा रहता है!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२०)

लोभै जन्म गमाइया, पापै खाया पुन्न,
साधो सों आधी कहे ता पर मेरा खुन्न ॥

अर्थ :—इस मानव जन्म को ठगने वाला लोभ इस प्राणी के साथ लगा रहता है। धन-सम्पत्ति का लोभ तो होता ही है मान प्रतिष्ठा, पद, शरीर और इंद्रियों के पोषण का लोभ अकथनीय और अप्रकट रूप में सभी जीवधारियों के साथ लगा हुआ है, जिससे यह मानव जन्म व्यर्थ चला जाता है। पाप प्रवृत्तियाँ इससे पुण्य या संचित सुखाभास रूपी सुख साधनों को भोगने में बाधक बनतो हैं। अर्थात् पुण्य कृत सुख शांति का भली प्रकार उपभोग करने से यह जीव वंचित रहता है।

इन सभी व्यथाओं को सहते हुए भी यह प्राणी किसी साधक के प्रति दुर्वचन अथवा ओछी बातें कहता है तब मुझे बड़ा बुरा लगता है।

भावार्थ :—स्वयं तो आत्म साधन से विमुख हैं और दूसरा यदि वेश-धारी ही आत्म साधन के लिये प्रयत्नशील है तो उसे ढोंगी, बंचक आदि बचनों से सम्बोधित करने वाले सज्जन अपने दुर्गुण और दुर्व्यवस्था पर ध्यान नहीं देते हैं। वह द्वेष या अबुद्धिपूर्वक किसी को भला-बुरा कहते हैं यह कैसी मूर्खता है।

(२१)

आधी साखी शिर खड़ी, जो निरूवारी जाय।
क्या पंडित की पोथियां, जो रात दिवस मिल गाय ॥

अर्थ :—किसी विद्वान का आत्महितैषी कथन तो सामने आया लेकिन उसका प्रमुख दृष्टिकोण तो चिंता का विषय बना हुआ है। जिस प्रकार किसी उलझन का ओर छोर तो मिल जावे लेकिन गाँठ खोलने की शक्ति न लग सके तो मुख्य कार्य तो अपूर्ण ही रह गया इसका साधन अत्यंत कठिन है या यों कहें कि कथनी सहज है लेकिन करनी अत्यंत कठिन है।

यह विद्वानों कृत पाठ या भजन नहीं है कि उसे दो-चार जने मिल कर रात दिन गा-गा कर पूर्ण कर दिया जावे, और पूर्ण होने पर सुफल बोल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवे। यह तो पद भजन या साखियाँ गाने की वस्तु नहीं। इसे दो चार सज्जन मिल कर पूर्ण कर लेवे इतना भी नहीं है, अपितु यह तो आचरण और अनुभव का विषय है इसे स्वयं कार्य रूप देना होगा एवं आत्म-संयम द्वारा प्राप्त होने वाली शांति और सुख का अनुभव कर अपनी योग्यता को स्वभाव की ओर लक्षित करना होगा।

(२२)

पंच तत्व का पूतरा, युक्ति रची मैं कीव,
मैं तोहि पूंछो पंडिता शब्द बड़ा की जीव॥

अर्थ :—इस जीव ने माया मोह को अपना कर पाप-पुण्य के ताने-बाने से दृश्यमान इस शरीर की रचना की है। पंच भौतिक तत्वमय दृश्यमान, विभिन्न योनियों का रचयिता यह ब्रह्म ही स्वयं सिद्ध है। इसको बनाने वाला इससे प्रथक कोई दूसरा नहीं है! इस प्रकार विभिन्न सूक्ष्म या स्थूल कार्य का कारण सूक्ष्म ब्रह्म और उसकी कर्तृत्व-बुद्धि द्वारा उपार्जित किया गया पुण्य-पाप का यह अदृश्य ताना-बाना है। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता निश्चित है।

हे विद्वत्वर्ग! अब आप इस शंका का समाधान कीजिये कि कथंचित जीव बड़ा है अथवा उसके ज्ञान द्वारा रचित समस्त वाङ्मय अथवा हमारे लक्ष्य के आदर्श जिनकी मूर्ति बनाकर समाज पूजा करता है—भावार्थ यह सृष्टि स्वयं सिद्ध जीव और अजीव दो प्रमुख द्रव्यों के विकारी भाव का अनादि रूप है। कोई इसका कर्ताहर्ता नहीं। प्रत्येक द्रव्यों का परिणमन कार्य-कारण भाव की अपेक्षा रखता हुआ भी अस्तित्व में अपनी अपनी स्वतंत्रता सहित है।

(२३)

पांच तत्व का पूतरा, मानुष धरिया नांव,
एक कला के बीछुरे विकल होत सब ठांव॥

अर्थ :—इस दृश्यमान चलते फिरते हुए पुतले का नाम मनुज या मानव है। यह पंच तत्वों का संयोगिक रूप है। इसमें छठा तत्व जो चैतन्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्ति है वह इस शरीर से पृथक जीव का गुण है। वह शरीर में दूध में व्याप्त पानी की तरह पूर्णतया समाया हुआ है।

मानव की बहत्तर कलाएँ प्रसिद्ध हैं। उसमें चैतन्य शक्ति अथवा जीवत्व कला ही प्रधान है! जब वह चैतन्य शक्ति इस शरीर से विलग हो जाती है, तब यह सम्पूर्ण शरीर वैसा ही बना रहने पर भी निष्क्रिय हो जाता है भावार्थ—उपर्युक्त दोनों साखियों का उद्देश मानव जन्म पाकर शरीर में व्यापक उस चैतन्य शक्ति का आभास प्राप्त करना जो कि हमारी सभी क्रियाओं और भाग्य का मूल कारण है। इस आत्म-तत्व की योग्यता परिचय और पहिचान द्वारा उसकी श्रेष्ठता, व्यापकता, सर्वार्थ-सिद्धि का मूल ज्ञात करना है। आत्मोन्नति को सर्वोत्कृष्ट ध्येय बनाकर अपने चारित्रिक स्तर को ऊँचा उठाने में प्रयत्नशील रहना, यह चतुर्मुखी विकास और सुख शांति का स्रोत है।

(२४)

रंगहि ते रंग ऊपजे, सब रंग देखा एक
कौन रंग है जीव का, ताका करहु विवेक ॥ २४ ॥

अर्थ :—जो साकार है वही साकार का निर्माण कर सकता है। जो स्वयं रंगीन है उसी के द्वारा पंचरंगों को सादृश्य (मलीनता का) सहयोग प्राप्त होता है। इस प्रकार जितने रंग हैं सभी उज्ज्वलता से पृथक रंगीन अवस्था वाले रंग-विरंगे या मलीन हैं। जो स्वच्छ या निर्मल हैं उसमें कोई रंग खपाने की क्षमता नहीं होती है क्योंकि रंग छू जाने से ही उसमें धब्बा या मलीनता आ जाती है।

जीव का रंग कैसा है? इस प्रश्न का उत्तर यही होगा कि वह किसी भी रंग में क्या यंत्र व इन्द्रिय गोचर ही नहीं है। जीव अरूपी और वे रंग का है, अस्तु उसे इस रंग-विरंगी दुनिया से कोई प्रयोजन नहीं, यही उसकी सत्य दशा है। परन्तु देखने में आता है कि सर्व सृष्टि इस जीव-तत्व का ही तमाशा है और यहाँ तक कि वह इस सृष्टि का रचयिता भी है तब यह अपवाद कैसे? इसी का विवेक प्राप्त करना कठिन है। यदि इसका विवेक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त हो जावे तो मुक्ति या स्वाधीनता दुर्लभ नहीं।

(२५)

जाग्रत रूपी जीव है, शब्द सोहागा सेत,
जर्द बुंद जल कूकुही, कहंहि कबीर कोई देख ॥

दृष्टिकोण :—शरीर और उसमें व्याप्त तत्वों को सांकेतिक भाषा में वर्णन करते हुए कबीर यथार्थता प्रकट करते हैं।

अर्थ :—जीव जो इस चलते फिरते यंत्र का प्रमुख तत्व है वह चैतन्य गुण वाला है, अर्थात् जीव के कारण ही यह जानने देखने और चलने-फिरने की शक्ति रखता है। इसको बनाने वाला यौगिक तत्व श्वेत हड्डियों का ढांचा है। इस शरीर की संवहन और संचरण शक्ति को रखने वाला रक्त विन्दु जलीय तत्व है, जो अनंत जीवाणु का समुदाय है। इस प्रकार यह शरीर और आत्मा एक तत्व नहीं है। दोनों विभिन्न योग्यता वाले पृथक तत्व हैं। जो शरीर है वह जीव से सर्वथा भिन्न है। इस भेदज्ञान कों कोई विरला ही जानता है—भावार्थ यह शरीर क्षणिक, जड़ पदार्थों का समुदाय है। जो योग्यता जीव की है वह अपनी निज की शक्ति ज्ञान और दर्शन है। जब कि शरीर अचेतन और जड़ है। दिखने वाले समस्त प्राणी जड़ व चैतन्य का यौगिक रूप हैं।

(२६)

पंच तत्व लै या तन कीन्हा, सो तन लै काहै दीन्हा,
कर्महि के वश जीव कहत है, कर्महि के जीव दीन्हा ॥

अर्थ :—यह जीव बिना शरीर के बोलता नहीं है। अस्तु कर्मों का चक्र ही इसके बोलने का कारण है। अपनी यथार्थ शक्ति में यह मात्र ज्ञाता और दृष्टा है लेकिन कर्मों का आवरण यह शरीर इसे चलना-फिरना, देखना, सुनना, बोलना और सुख-दुःख का अनुभव करने वाला बनाए हुए है। अस्तु माया जनित इस शरीर पर मुग्ध होकर इसने आत्म समर्पण कर दिया है। वह अपनी सर्वोपरि सीमित योग्यता में न रहकर आडम्बर और बाहुल्य में फँसा हुआ है भावार्थ—जन्म-मरण, सुख-दुःख तथा अन्य सभी दृश्यमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri.

क्रियाएँ इस शरीर के संसर्ग से इसमें आ गई हैं। वैसे यह निष्क्रिय सुख शांति का भंडार, निश्चित ज्ञाता और दृष्टा ऊर्ध्वलोकवासी होने की शक्ति रखता है। इस संसार से परे अलौकिकता में ही इसका सत्-रूप है।

(२७)

पांच तत्व के भीतरे, गुप्त वस्तु अस्थान,
बिरले मर्म कोई पाइहैं, गुरु के शब्द प्रमाण ॥

अर्थ :—यह जीव तत्व, दृश्यमान इस पंच तत्व के पुतले में अदृश्य है, छिपा हुआ है, कहीं देखने में नहीं आता है। इस पूर्ण शरीर में जिसे उसने धारण कर रखा है उसके अनुकूल ही वह अपने आपको विस्तीर्ण किए हुए है, अर्थात् यदि शरीर छोटा है वह अपने परमाणुओं को संकुचित कर उसमें उतने ही प्रमाण का हो गया है, और यदि शरीर भारी है तो उसी के अनुकूल उसने अपना विस्तार भी कर रखा है।

इस प्रकार विभिन्न गुण, रूप, योग्यता और सहनशीलता युक्त यह अभेदी तत्व यत्र-तत्र-सर्वत्र अपनी काया माया में गुप्त है। कोई इसका भेद जानता नहीं। संसार में कोई बिरला व्यक्ति ही भेद-ज्ञान जाग्रत कर स्वपर विवेक के द्वारा स्वपरिचय प्राप्त कर सका है, अस्तु गुरु का कथन ही प्रामाणिक है।

(२८)

असुन्न तखत अड़ि आसना, पिंड झरोखे नूर,
जाके हिल में हौं वसों, सेना लिए हजूर ॥

दृष्टिकोण :—जीव अपने लौकिक प्रभुत्व का कथन संक्षेप में करता है।

अर्थ :—जीव कहता है, मेरा सिंहासन या तख्त प्रत्यक्ष है दृश्यमान है। जहाँ-जहाँ जीव है स्पष्ट आभास मिलता है। मैं अपने निवास में आयु की स्थिति तक निश्चल निवास करता हूँ। कोई मुझे मेरे अधिकारों से वंचित कर गद्दी से हटा नहीं सकता है। इस शरीर रूपी मकान की प्रत्येक इन्द्रियों में हमारी चैतन्य शक्ति ही कार्य रही है।

इस शरीर में व्याप्त होकर मैं अपनी कर्मरूपी सैन्य के साथ अपना शासन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता हूँ।

भावार्थ—भौतिक जगत के ऊपर अपना अधिकार व्यक्त करता हुआ यह जीव इस माया-जगती के आकर्षण और सुख साधनों पर कितना मुग्ध है!

(२९)

हृदया भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तो तबही देखिहों, जब दिल की दुबिधा जाय॥

अर्थ :—हे मानव! तेरे हृदय में स्वच्छ दर्पण विद्यमान है। अर्थात् तेरी आत्मा ज्ञान-दर्शन गुण युक्त स्व पर प्रकाशक और अनंत सुख का भंडार है। यह अपने अपूर्व गुणों का प्रतिबिम्ब तू अपने आप में देख सकता है, परन्तु तुझे उक्त निर्मल दर्पण में अपनी झलक (प्रतिबिम्ब) दिखलाई ही नहीं पड़ता है। तेरी आत्मा मलिन है, उसमें आवरण पड़ा हुआ है।

वह आवरण रागद्वेष भावों का है। राग द्वेष का मूल कारण मैं और मेरे का ज्ञान न होना। अहंकार और ममता के कारण तू अपने आपको भूल बैठा है। स्वपर का विवेक जाग्रत कर तब तुझे ब्रह्म और माया का भेद प्रकट हो। अपनी पहिचान के बिना अपना दर्शन असंभव है।

अस्तु, हृदय में व्याप्त रागद्वेष की दुविधा दूर हटा जिससे तेरे दर्पण का पर्दा दूर होवे और अपनी झलक (प्रतिबिम्ब) में उसके दर्शन-ज्ञान शक्ति-युक्त सुख शांति के भंडार मूल तत्व का आभास स्पष्ट हो।

(३०)

गांव ऊंचे पहाड़ पर, औ मौटा की बांह,
कबिर अस ठाकुर सेइये, उबरिये जाकी छांह॥

अर्थ :—हे आत्मन्। तेरे निवास स्थल सहज में प्राप्त होने वाले नहीं हैं। वह मूल-निवास उत्कृष्ट भावना और सदाचरण द्वारा प्राप्त हो सकता है। उक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ करना होगा। दृढ़ निश्चय करके इस ओर चलने का लक्ष्य कर तभी वैसा पुरुषार्थ भी संभव है। अर्थात् जब तुझे सांसारिक सुख, आत्म-सुख की तुलना में नगण्य प्रतीत होवे तभी तू उस ओर जाने का लक्ष्य कर सकता है। लक्ष्य निश्चित होने पर उच्च

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार-विचार का पुरुषार्थ करना होगा तभी तू अपने सुख शांति के भण्डार मूल निवास की ओर अग्रसर हो सकेगा।

इस कार्य के लिये साधारण देवी-देवताओं का सहयोग कार्यकारी नहीं है। कारण यह कि वर्तमान में तूने सांसारिक सुखों के अर्थ लौकिक देवी-देवताओं का ही सहारा लिया है। संसार समुद्र से पार होना है तब वह सहारा ऐसी नाव का होना चाहिये जो जल का स्पर्श करती हुई उसके ऊपर हो। अर्थात् संसार के मार्ग से पृथक वीतराग प्रभु का अवलम्बन ही तुझे संसार के इन अनगिनत दुःखों से छुड़ा सकेगा।

(३१)

जेहि मारग गए पंडिता, ते ही गई बहीर,
ऊंची घाटी राम की, तेहि चढ़ि रहे कबीर॥

अर्थ :—जिस मार्ग को अपना कर पंडित वर्ग अथवा लौकिक विद्वत्गण चल रहे हैं, वह तेरे लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली नहीं। यह राह तो उद्देश्य से परे बाहर की ओर गया है। अर्थात् अधिकाश विद्वान और पंडित पूजा पाठ, यज्ञ, हवनादि अनेकों व्यर्थ के क्रिया काण्ड को सुख शांति का मार्ग निरूपित करते हैं। परंतु यथार्थ में यह मार्ग आत्म-कल्याण का नहीं है।

श्रीराम जो घट-घट व्यापी आत्माराम के आदर्श हैं उनको प्राप्त करने के लिये उनके बताए उच्च आदर्शों पर चलना होगा। यह मार्ग सरल, समतल अथवा स्पस्ट दिखने वाले राज-मार्ग की तरह नहीं है। यह तो घाटी पहाड़ियों पर जाने वाली अस्पष्ट पगडंडी सदृश्य है। इसी मार्ग का निरूपण कर संत कबीर उस ओर चल रहे हैं। अस्तु, सुख शांति के इच्छुक भव्य प्राणियों को यथार्थ मार्ग ही श्रेयस्कर है।

(३२)

ऐ कबीर ते उतरि रहु तेरों संभल परोह न साथ,
संभल घटे न पगु थके जीव विराने हाथ॥

अर्थ :—संत कबीर ऊबड़-खाबड़ अटपटे मार्ग को देखकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने जा रहे हैं। उनके मार्ग को देखकर पीछे चलने वाले साथी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रुक कर पुकारते हैं, हे कबीर ! उस ऊँचे घाट पर मत चढ़ो, नीचे आ जाओ। उस ओर जाने की तेरी शक्ति नहीं है और न सामने अथवा दूर पर ही कोई मार्ग दर्शक का संकेत प्राप्त हो रहा है। वह सोचते हैं इस अटपटे मार्ग पर कोई क्यों चढ़ेगा जहाँ चलने में ही अशांति और दुःख है वह मार्ग हमें अच्छे स्थान पर कैसे ले जा सकता है, अर्थात् इस मार्ग पर चढ़कर सुख शांति कैसे मिलेगी।

पीछे आने वालों की पुकार सुन कर संत कहते हैं—"अरे भाई ! मेरी सामर्थ्य न तो घटी है और न मेरे पैर ही थकान का अनुभव कर रहे हैं। मैं तो अपने आप, किसी अज्ञात शक्ति को सौंप चुका हूँ। मैं स्वयं अपने वश में नहीं हूँ। मेरा शरीर भी मुझे अपना प्रतीत नहीं होता है कि जिससे मार्ग की बाधाएँ और मुझे विचलित कर सकें। अस्तु मैं तो चला, मैं रुकने का नहीं।" अनुयायी पीछे रुक गये और संत कबीर चढ़ते चले गये।

(३२)

कबीर का घर शिखर पर, जहां सिलहली गैल।
पांव न टिके पिपीलिका, तहां खलक न लाद बैल ॥

अर्थ :—संत कबीर समझाते हैं, बन्धुओं ! घाटियों पर घाटियाँ चढ़ने के बाद शिखर पर पहुँचेंगे, वहाँ पर ही अपना निवास स्थल है। अर्थात् इस आत्मा की सुख शांति और विराम का स्थल अत्यंत ऊँचाई पर है। उस पर चढ़ने का मार्ग बहुत चिकना है। जिस पर साधारण चढ़ने वाले तो क्या चढ़ेंगे, वहाँ चीटियों के पैर भी नहीं रुकते हैं। चीटियां सीधी दीवाल पर चढ़ सकती हैं लेकिन सीधी और चिकनी होने से वह भी इस मार्ग पर नहीं चढ़ पाती हैं। वहां पर किसी वस्तु का व्यवसाय भी नहीं होता है। और न वहाँ बैल लादने वाले व्यापारी ही हैं।

भावार्थ :—अनुगामी बंधुओं ने अपने घर के मार्ग को बड़ा अटपटा और ऊबड़-खावड़ समझ कर उस ओर जाना स्थगित कर दिया। कबीर यह देख कर कहते हैं कि बंधुओ जिस मार्ग को तुम अटपटा और कंकरीला समझते हो वह अत्यंत सीधा सरल और चिकना है। यहाँ तो चीटियाँ (संग्रही और सांसा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रिक कार्यों में उलझे हुए) चढ़ भी नहीं पाती हैं, इतनी चिकनाई है और यहाँ पर कोई व्यवसाय भी नहीं है जिस पर लगे रह कर दिन बिताया जा सके। अर्थात्—यहां पर निश्चितता है और भोजनादि की झंझट भी नहीं है।

(३४)

बिन देखे वह देश की बात कहे सो कूर।
आपुहि खारी खात हैं बेचत फिरै कपूर॥

अर्थ :—जिस देश व घर को किसी ने देखा नहीं है, उस स्थान का वर्णन करना असंभव है और जो वर्णन करता है वह धूर्त या दगाबाज है।

जिस प्रकार कोई नमक का उपयोग करने वाला उसका व्यवसाय करता हुआ, कपूर जैसी अमूल्य वस्तु का व्यवसायी बता बताकर, उसके गुणों का वर्णन करता है, वह धूर्त है, धोखेबाज है। अर्थात् वह कपूर के गुण अवगुण और उसका मूल्यांकन करने वाला नहीं है। उसी प्रकार जो पंडित अथवा ज्ञानी-विद्वान इस संसार की विषय वासनाओं में फँसा हुआ है वह मुक्तिधाम का उपदेश देने वहां की सुख शांति विषयक चर्चाएँ करे वह धूर्त है। उसे प्रथम अपने को इस कल्याणकारी मार्ग पर लगाना चाहिये, आत्मानन्द का अनुभव करना चाहिये, पश्चात् वह उसकी चर्चा करे तो वह चर्चा प्रभावोत्पादक हो सकती है।

(३५)

शब्द शब्द सब कोई कहै, वो तो शब्द विदेह।
जिह्वा पर आवे नहीं, निरख परख करि लेह॥

अर्थ :—आत्मा के गुण और उसके निवास स्थल की चर्चा शब्दों द्वारा सभी कहते और एक दूसरे को समझाते फिरते हैं। जिसकी चर्चा और गुणगान वह शब्दों द्वारा करना चाहते हैं वह तो निराकार और अरूपी है। उसको शब्दों द्वारा कैसे निर्णीत किया जा सकता है, अर्थात् असंभव है।

उसका वर्णन जिह्वा पर आता ही नहीं है अर्थात् वह अवर्णनीय अनंत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुख शांति और वैभव का पुञ्ज है। इसको स्वयं अनुभव कर एवं स्वतः उसे साकार कर अपने ज्ञान में उतारिये। इस आत्म-तत्व की महिमा अपार और अकथनीय है। भावार्थ—आत्मा के गुणों को चर्चा का विषय बनाया तो गया है लेकिन उसके गुण गान करने मात्र से कभी वह जाना नहीं जावेगा। जिस प्रकार गुड़ या मीठे का वर्णन मात्र करने से मिठास का अनुभव नहीं हो सकता है उसी प्रकार यह अरूपी चैतन्य तत्व स्वानुभव द्वारा ही जाना जा सकता है। उसके गुण और अचिंत्य शक्ति का स्वाद उसकी ओर दृष्टि करने और अपने उपयोग को अन्यत्र से खींच कर उस ओर लगाने पर ही संभव है।

(३६)

परबत ऊपर हर बहै, घोड़ा चढ़ि बसे गांव।
बिना फूल भौरा रस चहै, कहु बिरवा को नाँव॥

अर्थ :—इस मनुष्य को कैसी दुर्बुद्धि छाई है। यह पहाड़ की चट्टानों पर तो हल चला रहा है। अर्थात् व्यर्थ का परिश्रमकरके भविष्य में सुख शांति की इच्छा करता है। इसने अपने विश्राम हेतु मन की चंचलताओं (घोड़ा) के ऊपर अपना गाँव बसाया है। इस प्रकार क्षणिक सुखप्रद वासनाओं पर अपने मन को अटकाया है।

यह मधुरता का रसास्वादन तो करना चाहता है परंतु मूल वस्तु (फूल) का वहाँ नामोनिशान नहीं है। अर्थात् यह निरंतर प्रयत्नशील रहने वाले भँवरे की तरह, सुंदरता, सुगंध और मधुर रसास्वादन का इच्छुक तो है लेकिन मूल वस्तु इस सहज आत्मा से परिचय नहीं जहाँ पर कि सुखद मधुरता और सहज सुगंधि व्याप्त है। वह सत्य है, शिवं है और सुन्दर भी जो अभी तक इसे ज्ञात नहीं है। यह पद संसार रूपी वृक्ष की ओर संकेत करता है, जहाँ पर यह निरंतर शक्ति का अपव्यय करता है और मृग तृष्णा में इधर-उधर भटकता हुआ बेचैन है।

(३७)

चंदन वास निवारहू, तुझ कारण बन काटिया।
जीवत जिव जनि मारहू, मूये सब निपातिया॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ :—वर्तमान धन का लोभी मानव सोने के अंडे प्राप्त करने हेतु मुर्गी की हत्या करने वाले शेखचिल्ली के सदृश्य है। किसी जंगल में सूखते हुए चंदन के वृक्ष की सुगंध पाकर वह अधिक धन प्राप्त करने की लालसा से सम्पूर्ण जंगल के हरे सूखे वृक्षों को काट डालता है। अस्तु हे चंदन! तुम सुगंध रहित बनो, क्योंकि यह व्यवसायी लोभ में पड़कर हरे-हरे वृक्ष और छोटे-छोटे पौधों की हत्या करके वन में अचानक आग लग जाने पर उसी में भस्म हो जावेगा।

उसे इतना ज्ञान नहीं कि चैतन्ययुक्त जीव का घात करना कितना हानिप्रद है। मुर्दे की आह में ऐसी शक्ति है कि वह सर्वनाश कर देता है।

भावार्थ—लुब्ध व्यवसायी आर्थिक लाभ की दृष्टि से हित, अनहित, सर्व-हित और कार्य .अकार्य पर ध्यान नहीं देता है, वैसी ही अवस्था वर्तमान भारतीयों की है। धन व विदेशी मुद्रा को तीव्र आकांक्षा में वह मांस चर्म व्यवसाय और अखाद्य आमिष को बढ़ाने पर तुला हुआ है। उसे अपने सर्वांगीण विनाश की खबर नहीं।

(३८)

चंदन सर्प लपेटिया, चंदन काह कराय।
रोम रोम विष भीनिया, अमृत कहाँ समाय॥

अर्थ :—सर्प चंदन में लिपट कर शीतलता और सुगंधि की कामना रखता है क्योंकि उसमें जहर व्याप्त होने के कारण उसका शरीर (क्रोध से लाल) दाहक होता है लेकिन जहाँ रोम-रोम में दुर्गुणों का वास है वहाँ सुगुण कैसे समा सकते हैं। कितना ही प्रयत्न साधुजन करें लेकिन दुष्ट की प्रवृत्ति को बदलना संभव नहीं। अस्तु दुर्जनों को सदाचरण और विवेक की शिक्षा व्यर्थ है।

(३९)

जो मोदाद समसान सिल सब रूप समसान।
कहँहि कबीर सावज की गति, तबकी देखि भुकान॥

अर्थ :—यह सृष्टि मृत्यु लोक है, अस्तु सर्वत्र स्मशान ही है। यह सब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राणी मृत्यु की खुराक हैं। समय-समय पर ये प्राणी क्रमशः मृत्यु की आखेट का लक्ष्य बनते हैं। इस हेतु जाने किस समय मृत्यु का लक्ष्य बनना पड़े, अपनी लालसाओं की ओर देख, उन्हें सीमित कर।

(४०)

गही टेक छोड़े नहीं जो जीभ चोंच जरि जाय।
ऐसो तप्त अंगार है, ताहि चकोर चबाय॥

अर्थ :—जिसका जो स्वभाव होता है वह छूटता नहीं चाहे उसे कितना ही धक्का खाना पड़े। चन्द्र-प्रेमी चकोर पक्षी अंगार ही भक्षण करता है क्योंकि उसका वैसा ही स्वभाव है। इससे चाहे उसकी जीभ और चोंच जल ही क्यों न जाए। लेकिन वह दहकते हुए अंगार को ही खाता है। इसी प्रकार यह संसारी प्राणी बड़े-बड़े कष्ट सहता हुआ भी माया के वशीभूत हो अपने इंद्रिय सुखों को छोड़ने में स्वतः को असमर्थ पाता है।

(४१)

चकोर भरोसे चंद्र के, निगले तप्त अंगार।
कहें कबीर डाहे नहीं, ऐसी वस्तु लगार॥

अर्थ :—चन्द्रमा से प्रेम होने के कारण, चकोर दहकते हुए अंगार निगलता है। कबीरदास जी कहते हैं कि संगति या सहयोग का भी ऐसा ही प्रभाव है कि चन्द्रमा की शीतलता के प्रभाव से चकोर अंगार खाते हुए जलता नहीं है। यह प्राणी भी माया-लिप्त होने से मिथ्या वासनाओं में कष्ट उठाता हुआ भी उसके सम्पर्क से प्रथक नहीं होना चाहता है।

(४२)

झिलमिल झगरा झूलते, बाकी छूटि न काहु।
गोरख अटके कालपुर कौन कहावें साहु॥

अर्थ :—संसार के सभी प्राणी भौतिक चकाचौंध के कारण माया-मोह की दुविधा में पड़े हैं, कोई भी इससे बचा नहीं जब कि योगाभ्यासी श्री गोरखनाथ मृत्यु के आभास से डरते हैं, तब साधु किसे कहा जावे ? अर्थात् आत्मसाधन करने वाले योगी भी सत्दर्शन बिना भ्रम में पड़े हैं और दुःखी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४३)

गोरख रसिया योग के, मुये न जारी देह।
मांस गली माटी मिली, कोरो मांजी देह॥

अर्थ :—श्री गोरखनाथ जी योगाभ्यास के बड़े प्रेमी और साधक थे। उनके शिष्यों ने मृत्यु के बाद भी उनकी देह को जलाया नहीं ताकि यह योगाभ्यास द्वारा पुनः अपनी आत्मा को उसी काया में प्रवेश करा सकें। लेकिन वह मांस (मृत शरीर) गल कर मिट्टी में मिल गया। व्यर्थ ही उनकी योग-साधना हुई, क्योंकि उन्होंने (भौतिक) काय-साधना में पड़ कर आत्मसाधन नहीं कर पाया।

(४४)

बन ते भागि बिहड़े परा, करहा अपनी बान।
वेदन करहा कासों कहे, को करहा को जान॥

अर्थ :—खरगोश जरा सी आहट पाकर भागता है ऐसा उसका स्वभाव है। वह बनैले जीवों से अपनी रक्षा हेतु भाग कर फँदे में पड़कर पराधीन हुआ है। इसी तरह से यह मनुष्य शरीर के मोह में पड़कर पराधीन हुआ अपने स्वतंत्र रूप को भूल गया है अब कर्माधीन जन्म जन्मांतर में भटकता हुआ दुःख उठा रहा है। अपने दुःखों के वेदन को वह किससे कहता फिरे और वह अपनी योग्यता अथवा गुणों से भी अज्ञान हुआ है, तब उसे अपने सुख शांति मूलक यथार्थ स्वरूप का आभास कैसे हो?

(४५)

बहुत दिवस तें हींड़िया, सुमन समाधि लगाय।
करहा पड़ा गाड़ में, दूरि परा पछिताय॥

अर्थ :—योगी जन उस ईश्वर की प्राप्ति के लिये योगाभ्यास द्वारा शून्य समाधि में निष्क्रिय होकर उसकी खोज करते हैं। यह उसी तरह से है जिस तरह एकांत गड्ढे या खलिहान में पड़ा हुआ खरगोश अपने स्थान को न पहुँच पाने के कारण दुःखी होकर पश्चाताप करता है। खरगोश की चौकड़ी भरना और उसकी चाल तेज होने का आशय, गन्तव्य को पहुँचने की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्यता का होना है। अपनी योग्यता को प्रकट न करके योगाभ्यास द्वारा श्वास या शरीर की साधना इन्द्रिय-दमन हेतु करते हुए भी आत्मकल्याण के लिये सहायक नहीं। यह हठयोग है, एकांतवाद है।

(४६)

कबीर मर्म न भाजिया, बहु बिधि धरिया भेख।
सांईं के परिचावते, अंतर रहि गई रेख॥

अर्थ :—इस पद में मनुष्य की अज्ञानता (भ्रम) का वर्णन करते हुए कबीरदास जी ने विद्वान और ज्ञानी पुरुष का भेद बतलाया है। अर्थात् कितनी ही विद्वत्ता क्यों न हो, जब तक मनुष्य माया के कारण व्याप्त मिथ्या-बुद्धि (भ्रम) से हटता नहीं कल्याण मार्ग प्राप्त नहीं होता।

अनेक जन्म धारण करते हो गया, अनेकों वेष भी बना चुका लेकिन भ्रम-बुद्धि दूर न हो सकी। यद्यपि विद्वान होते हुए जीव और माया अथवा प्रकृति और पुरुष का भेद जान लिया, तिसपर भी स्वभाव में माया-जाल को जो आदत (रेख) पड़ी है वह नहीं हट पाती है। इस हेतु विद्वता व्यर्थ है उपयोग को बदल कर आत्मकल्याण की प्रेरणा द्वारा आत्मद्रव्य की ओर रुझान होने से भ्रम हटता है। यही सुख शांति का यथार्थ उपाय है।

(४७)

बिनु डांडे जग डांडिया, सोरठ परिया डांड।
बाट निहारे लोभिया, गुर ते मीठी खांड॥

अर्थ :—यह पद मनुष्य की लोभी प्रकृति का विवेचन करता हुआ प्रकट करता है कि मनुष्य चाहे जितना भी दण्ड क्यों न भोगे वह लोभ-माया में इस तरह रचा-पचा है कि उसे अपनी हानि पर कोई ध्यान नहीं। स्वर्णपुरी द्वारिका भी इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों के कारण भस्म हुई।

यह संसार ऐसे अनंत जीवों का समुदाय है जो कि बिना दण्ड दिये हुए स्वयं दण्ड पाता है। लोभी स्वभाव होने के कारण यह बाजार में खड़ा हुआ गुड़ और खांड की परीक्षा करता हुआ कह रहा है कि गुड़ की अपेक्षा खांड में अधिक मिठास और सफाई है खांड के गुणों पर तो मुग्ध है लेकिन दाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिक चुका कर खांड खरीदने का साहस नहीं कर पाता है। इस तरह लोभ के कारण उसकी बुद्धि ठगी सी गई है। वह इसी तरह है कि यदुवंशियों को स्वर्णपुरी द्वारिका के भस्म हो जाने का ज्ञान तो था लेकिन लोभ के कारण वह उसे छोड़ नहीं पाते थे। अंत में द्वारिका जली और उसके साथ वहाँ की सब प्रजा यदुवंशियों के साथ उसी में भस्म हो गई लेकिन माया के प्रति जो लुब्धता है वह नहीं छूट सकी। इसी तरह मनुष्य सब कुछ जानता हुआ भी कि माया-मोह से पृथक होने में ही सुख शांति मिलती है फिर भी लम्पटता के कारण इन्द्रियों के सुख में यथार्थ सुख की कल्पना करता हुआ उसमें फंसा रहता है बल्कि जाले में फँसी मक्खी की तरह फटफटाता हुआ उसमें और अधिक लिपट जाता है।

(४८)

मलयागिर की बास में, वृक्ष रहा सब गोय।
कहवे को चंदन भया, मलयागिर नहिं होय ॥

अर्थ :—मनुष्य जाति के प्राणी आकार और योग्यता के कारण सभी मानव कहे जाते हैं लेकिन यह उसी तरह से है जिस तरह से मलयागिर में चंदन की सुगंध में छिपकर दूसरे वृक्ष भी चंदन नाम प्राप्त करते हैं लेकिन यथार्थतया वे चंदन नहीं होते हैं।

मलयागिर में चंदन वृक्षों के बाहुल्य से अन्य झाड़-पेड़ भी चंदन नाम पा जाते हैं लेकिन उनमें चंदन के गुण विद्यमान नहीं होते हैं। यह सब कहने भर को चंदन को नहीं पाता है। इसी तरह से मानवता के गुणों के न रहने पर भी सभी दो पाँव वाले जीव मानव नाम से पुकारे जाते हैं लेकिन वह मानवता-शून्य होने के कारण उन गुणों और योग्यता को प्राप्त नहीं होते हैं जिनसे मानवीयता विकसित होती है।

(४९)

मलयागिर की बास में, बेधा ढ़ाक पलास।
बेना कबहुँ न बेधिया, युग-युग रहिया पास ॥

अर्थ :—मलयागिर में चंदन के वृक्षों के पास जो छोटे-मोटे वृक्ष होते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं वह भी चंदन की सुगंध से सुगंधित हो जाते हैं। अर्थात् सज्जन पुरुषों के सत्संग से नम्र और निरभिमानी मानव भी योग्य बन जाता है। लेकिन अस्थिर और अंहकारी पुरुष चाहे कितना भी सत्संग करे कभी गुणवान और सदाचारी नहीं बन पाता है जिस तरह से वेला नदी जो मलयागिर के चंदनों को रस देती है और उसी के पास से सदैव बहती है लेकिन कभी भी चंदन के गुण अथवा योग्यता को प्राप्त नहीं होती है।

(५०)

चलते-चलते पगु थका, नग्र रहा नौ कोस।
बीचहि में डेरा परा, कहू कौन को दोस॥

अर्थ :—यह जीव इस संसार में भटकता हुआ अनंत जन्म धारण करने के पश्चात् बड़े भाग्य से मनुष्य जन्म पाता है। लेकिन अपनी यथार्थता को भूल वह माया-मोह में फंस कर आत्मकल्याण की ओर न बढ़कर फिर भटकने लगता है।

अनंत योनियाँ धारण करता हुआ यथोचित स्वरूप मनुष्य जन्म को पाता है। यही स्वरूप उसके कल्याण का मार्ग है। लेकिन वह माया और मोह के द्वंद्व में अटक जाता है और बेफिक्र हो कर अपना कारबार फैला देता है। अपने गन्तव्य को जो इस नवद्वार के पिंजड़े से परे है उसकी ओर उसका ध्यान ही नहीं रहता है, इसमें किसे दोषी ठहराया जावे। इस प्रकार भ्रम में पड़ा हुआ वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, यह बड़ा भारी दोष है।

(५१)

झालि परे दिन आथये, अंतर परि गई साँझ।
बहुत रसिक के लागते, बेश्या रहि गई बाँझ॥

अर्थ :—यह मनुष्य युवावस्था में संसार की अनगिनत इच्छाओं में फंसा हुआ वृद्ध हो जाने पर क्रिया शून्य हो जाता है। इस तरह उसकी उन्नति का मार्ग उसकी असावधानी से अंधकारमय हो जाता है। वह अपना कल्याण न कर प्राणांत होने पर भटकता रहता है।

जब दुःख और अशांति की बरसात लग जाती है तथा मानव शरीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृद्धावस्था को प्राप्त कर ज्ञान रहित निश्चल हो जाता है तब उसे चारों ओर अंधेरा दिखाई देता है। उसकी सभी इच्छाएँ अधूरी और शक्ति क्षीण होने के कारण सामर्थ्य से बाहर हो जाती हैं। जिस तरह से वेश्या के अनेकों प्रेमी होने के कारण वह किसी एक से मुग्ध नहीं हो सकती है जिससे कि प्रेमी का प्रतिबिम्ब गर्भित होकर संतान उत्पत्ति में सहायक हो। इस हेतु वह वंध्या रह जाती है। इसी तरह यह मनुष्य जन्म भर असीम इच्छा और वासनाओं में फंसा रह कर एकाग्रचित नहीं हो पाता है, और अंततः वह निर्जीव हो जड़ता की ओर अग्रसर होता है।

स्थिर और एकाग्रचित्त हुए बिना वह आत्मचिन्तन नहीं कर पाता है। इस तरह वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ जड़ता और अशक्ति के कारण वह आत्म-कल्याण से वंचित रह जाता है।

(५२)

मन कहै कब जाइये, चित कहै कब जाव।
छौ मास के हींडते, आध कोस पर गाँव।

अर्थ :—मन से विचार करना कि कब आत्म साधन कर सकेंगे ? यह चैतन्य इस कार्य के प्रारम्भ के लिये समय निश्चित करेगा। इस तरह विचार करते-करते आधी उम्र व्यतीत हो गई लेकिन उस ओर रुचि हीन होने से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जब आत्म साधन का लक्ष्य होता है तब ही वह अत्यंत निकट होता है जिस तरह से यदि निवास स्थल आधे कोस पर ही हो लेकिन मात्र उस पर सोच-विचार करता रहे, चले नहीं तो कैसे पहुँच सकता है ? इसी तरह से धर्म-चर्चा, आध्यात्मिक उपदेश और वाद-विवाद करते रहने पर सब कुछ जानते हुए भी वह प्राप्त नहीं हो सकता है, जब तक कि उस लक्ष्य प्राप्ति के योग्य आचरण न किया जावे।

(५३)

गिरही तजि के भये उदासी, बन खंड तप को जाय।
चोली थाकी मारिया, बेरई चुनि-चुनि खाय॥

अर्थ :—यदि यह विश्वास किया कि आत्मसिद्धि के लिये गृहवास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़ना आवश्यक है तो वैराग्य धारण कर गृह-कुटुम्ब छोड़ वनवासी हो गए। वन में जाकर शारीरिक तपस्या करने लगे, लेकिन यथार्थता का बोध न होने के कारण, इस शरीर की क्षीणता आने पर बेरी ही बीन-बीन कर खाने लगे। अर्थात् निरुद्देश्य प्राणी की तरह पेट भरना ही लक्ष्य रह गया।

यथार्थ में शरीर को कष्ट देने से आत्मसाधन नहीं होता है, क्योंकि शरीर ही आत्मसाधन के लिये एक आवश्यक माध्यम है। इच्छा और विषय-वासना के दासत्व से अपने मन को रोक कर चित्त की एकाग्रता प्राप्त की जाती है। चित्त की एकाग्रता से माया और मोह क्षीण होता है। इस अवस्था में अहंकार का नाश होने पर ही समता और प्राणी-प्रेम जाग्रत होता है यही आत्म साधन की भूमिका है। वैराग्य का उपयोग इच्छा और वासनाओं पर नियंत्रण हेतु ही बतलाया गया, यदि यह सिद्ध न हुआ तो साधुता व्यर्थ है।

(५४)

राम नाम जिन चिन्हिया, झीना पिंजर तासु।
नैन न आवे निंदरी, अंग न जामै मांसु॥

अर्थ :—जिसने राम नाम का अनुभव किया है अर्थात् राम की व्यापकता का परिचय प्राप्त कर सभी प्राणियों में समत्व का अनुभव किया है। उसे अपने शरीर की विशेष चिंता नहीं रहती क्योंकि वह प्रत्येक काया में उस माया रहित आत्मा का ही अनुभवन करते हैं। उनको किसी तरह की थकावट या मद न होने से निद्रा का प्रसंग ही नहीं है क्योंकि वह सोते हुए भी आत्मा के अनुभव से पृथक नहीं होते है। अपनी शारीरिक पुष्टता का ध्यान न रख कर वे प्राणी मात्र के प्रति प्रेम के भूखे रहते हैं, अस्तु इस क्षणिक शरीर के प्रति निर्मोही होने के कारण बहुधा क्षीण शरीरी होते हैं। इस प्रकार उदार, संतोषी, सर्वप्रेमी और मानवोपासक ही सच्चा रामभक्त होता है।

(५५)

जो जन भींजै रामरस, बिगसित कबहुँ न रूख।
अनुभव भाव दरसे नहिं, ते नर सूख न दूख॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ :—जो मनुष्य प्राणी प्रेम में सराबोर हो जाता है, वह कभी भी क्रोध, अभिमान, छल और लोभादि कारणों को प्राप्त न होने के कारण रूक्षता को प्राप्त नहीं हो सकता है। अर्थात् राम-रस ही सब प्राणियों के स्नेह का मूल है यदि मनुष्य राम-रसिक है तब उसके विपक्षी चाहे किसी प्रकार की रुक्षता और क्रोध का प्रसंग क्यों न लावें वह अपने समता-रस से च्युत नहीं हो सकता है इससे वह कभी रूक्ष या दुःखी नहीं दिखाई देगा। लेकिन यदि वह स्व-पर की अनुभव दशा को प्राप्त नहीं हुआ है तो वह जैसा कारण पायेगा अपने को सुखी और दुःखी अनुभव करेगा, लेकिन यथार्थतया वह दुःखी ही रहेगा सुखी नहीं।

(५६)

काटे आम न मौरसी, फाटे जुटे न कान।
गोरख पारस परसैं बिना, कौने को नुकसान ॥

अर्थ :—आम का वृक्ष कट जाने पर फूलता फलता नहीं अथवा संतति की अपेक्षा करने पर कभी सुखद फल नहीं प्राप्त होता है। जो कान फट जाता है वह कभी जुड़ता नहीं। इसी तरह से हठयोग द्वारा अपने सिवाय पर वस्तुओं से दृष्टि मोड़ लेने मात्र से वैराग्य अथवा ज्ञान की पुष्टि नहीं होती है। ऐ गोरखनाथ! पारस पत्थर के स्पर्श के बिना लोहा सोना नहीं बन सकता है, इसी प्रकार प्रत्यक्ष प्राणियों का अनादर अथवा निराकरण कर अपनी शारीरिक साधना करने मात्र से कभी कल्याण-पथ संभव नहीं। इसमें तेरा नुकसान ही है। कबीरदास जी कहते हैं कि इस जीवात्मा में व्याप्त तत्व का ज्ञान कर तभी तेरी क्रियाएँ सार्थक बन सकती हैं।

(५७)

पारस रूपी जीव है, लोह रूप संसार।
पारस ते पारस भया, परख भया टकसार ॥

अर्थ :—इस संसार में यह जीव ही पारस पत्थर के समान अमूल्य है। इस जीव के सिवाय संसार की सभी वस्तुएँ लौह सदृश्य पारस की अपेक्षा न रखते हुए अनावश्यक हैं अर्थात् बिना जीव के यह संसार अचेतन मात्र होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से अनुपयोगी है। इस जीव की व्यापकता का ज्ञान कर लेने पर ही यह संसारी प्राणी (लौह) पारस की तरह अमूल्य बन सकता है। परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ है कि वही सबसे पवित्र और उत्तमोत्तम भव्य है जो सर्व प्राणियों में समत्व लाकर प्राणी-प्रेम अपनावे और इस प्रकार आत्मकल्याण की ओर उन्मुख हो।

(५८)

प्रेम पाट का चोलना, पहिरु कबीरू नाच।
पानिप दीन्हों तासुको, जो तन मन बोले सांच॥

अर्थ :—संत कबीर कहते हैं कि संसार का सभी व्यवहार कार्य प्रेमपूर्वक करना ही प्रधान धर्म है अर्थात् शरीर एवं उसके व्यवहार में प्रेम की प्रधानता ही इस संसार में आनन्द का कारण है। उस पर भी जो मन वाणी और व्यवहार में सच्चा है, एक रूप है, उसकी कांति को क्या कह सकते हैं। प्रेम और सत्य व्यवहार ही मनुष्य को उच्च बनाता है। भावार्थ—सुख शांति और तेज की प्राप्ति के लिये व्यवहार कार्य में सत्यता और प्राणी-प्रेम ही प्रधान कारण है।

(५९)

दर्पन केरी गुफा में, सोनहा पैठा धाय।
देखि प्रतिमा आपनी, भूँकि भूँकि मरि जाय॥

अर्थ :— संसार में यह मनुष्य ईर्ष्या के कारण एक दूसरे से द्वेष करता है। इसी ईर्ष्या के कारण अन्य जितने दुर्गुण हैं वे उसमें आ जाते हैं जो उसी के लिये हानिकर हैं, लेकिन यह उसके ध्यान में नहीं आता।

यह संसार एक दर्पण तुल्य है इसमें हमारे ही अज्ञान के कारण दूसरों के प्रति द्वेष या ईर्ष्या उत्पन्न होती है। हमारे कार्य ही हमारे दुःखों या सुख के निमित्त उपस्थित करते हैं लेकिन यह प्राणी अपने पूर्व कर्मों पर ध्यान न देकर उसका निमित्त अन्य प्राणियों पर आरोपित करता है यही उसके लिये दुख का कारण है।

उदाहरणार्थ—जिस तरह चमकदार गुफा में, अचानक सोनहा के घुस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाने पर अपने प्रतिबिम्ब को ही वह अपना विपक्षी मान लेता है, यह उसका भ्रम है। वह पशु अपने ही प्रतिबिम्ब को दूसरा पशु समझकर उस पर खीझता भोंकता है और यहाँ तक कि वह अपने प्राण गवाँ देता है। इसी तरह यह मानव आत्मज्ञान न होने के कारण भ्रमवश दूसरों पर अपने दुःखों का आरोप लगा कर अपनी ही हानि का कारण बनता है। इस प्रकार रागद्वेष की संतति चलती रहती है और वह सदैव दुखी रहता है।

(६०)

ज्यों दर्पन प्रतिबिंब देखिये, आप दुहुनमा सोय।
यह तत से वह तत्त है, याही से वह होय॥

अर्थ :—यह पद कर्म फल और कर्म-कर्त्ता जीव की सदृश्यता को बतलाता है। अर्थात् इस संसारी प्राणी के कार्यों का प्रतिबिम्ब ही कर्मफल है, इसलिये हमारे विपक्षी या सुख-दुःख के कारण हम स्वयं हैं।

जिस तरह दर्पण में दिखाई देने वाला प्रतिबिम्ब सामने खड़े हुए प्राणी का ही होता है अर्थात् कारण और कार्य का संबंध होता है तद्रूप कर्ता और कर्म-फल में भेद दिखाई देने पर भी यह अभेद है, उसी का प्रतिबिम्ब है। अर्थात् इस सृष्टि में षट-कारकों युक्त प्रत्येक प्राणी है, इसलिये प्रत्येक प्राणी अपनी अवस्थाओं के लिए जिम्मेदार है और इसका किया हुआ ही भोग अवस्था में कर्मफल स्वरूप है। इस अपेक्षा से दुःख-सुख का कारण अन्य कोई नहीं है।

(६१)

जोबन सायर जूझते, रसिया लाल कराय।
अब कबीर पांजी परे, पंथी आवहि जाय॥

अर्थ :—युवावस्था के आवेश में अपने कर्तव्य से च्युत होकर यह प्राणी संसार समुद्र में रागद्वेष के हिंडोले लगा रहा। यह प्राणी इन सुखों में जितना मगन होता है उतना ही उस पर मोह का नशा चढ़ता है। कबीरदास जी कहते हैं कि प्राणी की स्वतंत्रता इस मोह की लाल पगड़ी से नष्ट हो जाती है। स्वतंत्रता का यह पथिक इस तरह दास बन कर एक प्यादे सिपाही की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरह जन्म जन्मांतरों के आवागमन में चक्कर खाता हुआ भटकता है जिस प्रकार लाल पगड़ी वाला शासकीय चपरासी पराधीन भटकना रहता है।

(६२)

दोहरा तो नौ तन भया, पदहि न चीन्हौ कोय।
जिन यह शब्द विवेकिया, छत्र धनी है सोय॥

अर्थ :—किसी वस्तु को दूसरे ढङ्ग से रखने पर जिस तरह भ्रम हो जाता है, उसी प्रकार नया काव्य सभी की बुद्धि से बाहर होता है। उसी तरह ढांचा बदल जाने पर जीव पहिचान में नहीं आता है। अर्थात् प्राणी मात्र एक जीव द्रव्य के विभिन्न रूप हैं लेकिन मिथ्या भाव के कारण लोग शरीर विशेष की पहिचान पर राग-द्वेष करते हैं, यह नहीं जानते हैं कि विभिन्न रूपों में व्याप्त आत्माराम सदृश्य स्वभावी है। जो ज्ञानी इस तरह जीव की योग्यता की पहिचान कर उसके रूप पर ध्यान नहीं देता है वह पुरुष शब्द-विवेकी है और समता भाव को प्राप्त होने पर वही जगनायक होता है।

(६३)

सांचा सौदा कीजिये, अपने मन में जानि।
सांचा हीरा पाइये, झूठे भूलहु हानि॥

अर्थ :—यदि मनुष्य अपने कार्य व्यापार में सत्यता का पालन करे तो निश्चय ही उसे लाभ होता है। अस्तु अपने मन में निश्चय करे तो सत्याग्रही बन कर सच्चा हीरा प्राप्त कर सकता है, अर्थात् आत्मलाभ करता है, लेकिन झूठ का अवलम्बन करने से जड़मूल से हानि होती है। आत्म-बल प्रत्येक क्षेत्र एवं कार्यों में सहायक होता है। सत्यता से आत्मबल बढ़ता है जबकि झूठ से नहीं। आत्मलाभ ही समस्त कार्य एवं व्यापार में सफलता का मूल है।

(६४)

सुकृत बचन माने नहीं, आपु न करैं विचार,
कहहिं कबीर पुकारिके, सपनेहु गया संसार॥

अर्थ :—जो मनुष्य सत्कार्य करने हेतु न तो स्वयं विचार कर प्रवृत्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है और न दूसरों के वचन अथवा सुझाव का सहारा लेता है। संत कबीर जी कहते हैं कि ऐसा मनुष्य अपने स्वप्निल संसार को खो देता है। अर्थात् मनुष्य की कुप्रवृत्तियाँ उसके इसी लोक की क्षणिक सुख-शांति में बाधक होती हैं।

(६५)

आगि जो लागि समुद्र में, धुआं न परगट होय।
की जानै जौ जरि मुआ, की जाकी लाई होय॥

अर्थ :—इस संसार में ऐसी विषयाग्नि प्रज्वलित है कि जो साधारण मनुष्यों की जानकारी में नहीं है। अर्थात् आशा और तृष्णा की अग्नि में बड़े-बड़े ज्ञानी भी जलते हैं क्योंकि उसकी दाहक शक्ति की प्रत्यक्षता किसी को नहीं है। उसे या तो वही जीव जानता है जो कि उस तृष्णा से विकल और अशांत है, या वह सर्वज्ञ परमात्मा ही जानता है जो इससे छुटकारा पा चुका है।

(६६)

लाई लावनहार की, लाकी लाई परजरै।
बलिहारी लावनहार की, छप्पर बाँचै घर जरै॥

अर्थ :—उस जलाने वाले की योग्यता सराहनीय है कि जिसकी लगाई आग की दाहक शक्ति (तपस्या, साधना) अज्ञान अंधकार को जला कर प्रज्वलित हो, (यथा प्रकाशित करे)। बधाई है उस योगी को जिसने इस संसार के कारणों को नष्ट कर अपने को आवागमन से मुक्त किया है। अर्थात् आत्मा जो शरीर का प्रमुख रक्षक है वह अपनी रक्षा करने के लिये जन्म मरण के कारण इन कर्मों के रूप (शरीर) को जला चुका है।

(६७)

बूंद जो परा समुद्र में सो जानत सब कोय।
समुद्र समाना बूंद में, सो जाने विरला कोय॥

अर्थ :—ये जीवात्मा जो शरीर धारण कर इस संसार में आते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् जो जीव जन्म-मरण करते हैं, उन्हें सभी प्रत्यक्ष देखते और जानते हैं। लेकिन उसकी शक्ति और योग्यता को विरला कोई जानता है, जिसमें कि इस सृष्टि के जानने की योग्यता है। जो ज्ञान और आत्मबल के द्वारा संसार समुद्र को सोख लेता है, पार हो जाता है, उसे सब नहीं जान सकते हैं।

(६८)

जहर जिमीं दै रोपिया, अभी सींचै सौ बार,
कबीर खलक न तजै, जामें जौन विचार ॥

अर्थ :—जिसमें जैसे विचार जम गये हैं वह छूटना बहुत कठिन है। यह प्राणी अपने में मिथ्याबुद्धि की जड़ जमाए हुए है। अपनी विपरीत मान्यता की टेक छोड़ता नहीं लेकिन सहस्रों बार स्वयं अथवा दूसरों के लिये ज्ञान वार्ता में रस लेता है। संत कबीर जी कहते हैं कि जिसमें जो मान्यता जमी हुई है वह उसे छोड़ता नहीं सम्पूर्ण सृष्टि के जीव-समूह की यही दशा है।

उदाहरणार्थ :—अज्ञानी विष वृक्ष के लिये अपना स्थान देकर उसकी रक्षा करता है। यदि वह उस विष वृक्ष को सैकड़ों बार अमृत से सींचै तब क्या वह विष वृक्ष अमृत बेल में बदल सकती है? सर्वथा नहीं, यही प्रत्येक संसारी जीव की दशा है जो मिथ्या टेक को छोड़ने हेतु असमर्थ है।

:)

कबीर जात पुकारिया, चढ़ि चन्दन की डार,
बाट लगाये न लगे, पुनि का लेत हमार ॥

अर्थ :—कबीरदास जी इस संसार से विदा होने के पूर्व प्राणियों को सूचित करते हैं कि मैं चंदन की तरह भीतर-बाहर एक सा सुवासित होकर जा रहा हूँ। अथवा मेरा यह शरीर दाह क्रिया द्वारा समाप्त होगा। मेरा सम्पूर्ण कार्य व्यापार समाप्त हो चुका है, मुझे पुनर्जन्म लेने की आवश्यकता नहीं है।

अस्तु अब आप लोग मुझसे कुछ प्राप्त करने की आशा छोड़ देवें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब व्यापारी ही न होगा व्यापार किससे किया जायगा। अब चूंकि इस ट (संसार) का व्यापारी, सभी से अपना हिसाब भुगतान कर चुका है तब भविष्य में बजार आने और लेन-देन बढ़ाने का कोई प्रश्न ही नहीं रहता।

भावार्थ :—कबीर के दृष्टिकोण से यह संसार एक बजार है जहां पर प्रत्येक प्राणी अपना लेन-देन कार्य और व्यवहार के रूप में परस्पर चालू रखते हैं इस तरह खरीद-बिक्री और वसूली तथा उधारी का प्रसंग चलता है लेकिन एक व्यापारी जिसने अपना लेन-देन समाप्त कर दिया है वह अब इस बाजार में आने क्यों चला ? अर्थात् वह इस संसार बन्धन से मुक्त हो चुका है।

(७०)

सब ते सांचा वो भला, जो साँचा दिल होय,
साँच बिना मुख नाहिनां, कोटि करै जो कोय।।

अर्थ :—सत्यता ही सर्वोत्कृष्ट है। यदि भावना और कार्यों का एकात्म हो जावे तो आत्म-रुचि जाग्रत होने में देर नहीं। सुख का मूल आत्मज्ञान ही है। अन्य किसी प्रकार करोड़ों यत्न करने पर भी सुख नहीं है। अस्तु सत्ज्ञान व सदाचरण ही आत्मकल्याण का मार्ग है।

(७१)

धौंकी डाही लाकड़ी, वो भी करे पुकार,
अब जो जाय लोहार घर, डाहे दूजी बार।।

अर्थ :—जली हुई लकड़ी कोयला बन जाती है। वह एक बार जल चुकी है लेकिन यदि लोहार के यहाँ पहुँचती है तो पुनः प्रज्वलित की जाती है, यही उसे डर लगा हुआ है।

इसी तरह से जो व्यक्ति ज्ञान द्वारा संसार के दुःखों की पहिचान कर लेता है वह सदैव भयभीत रहता है। उसे आत्मसुख का आभास होने से संसार के दुःखों से घृणा होने लगती है। वह कर्म और उनके कारणों को जानता हुआ भी साधना नहीं कर सकता है, अस्तु कर्म चक्र से डरता है और भविष्य के आवागमन से चिंतित रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७२)

विरह की ओदी लाकड़ी, सपचै औ धुंधुआय,
दुख से तबही बाँचिहौं, जब सकलो जरि जाय ॥

अर्थ :—जो मनुष्य यह ज्ञान प्राप्त कर लेता है कि संसार बंधन का क्या कारण है, वह गीली लकड़ी तुल्य कभी सूखा हुआ हिस्सा जल उठता है कभी धुंआ से घुँघवाता है। संत कबीर कहते हैं कि इस तरह सुखी और दुःखी होने का क्रम तभी टूट सकता है जब कि कर्म और क्रिया का कारण यह सक्रिय शरीर निमूल हो जाता है।

अर्थात् सांसारिक कार्यों से निर्ममत्व होकर अकतृत्व बुद्धि को धारण करने पर कर्म बन्धन से छुटकारा मिलता है और यह तभी संभव है जब कि समत्व जाग्रत हो जाय।

(७३)

विरह बान जेहि लागिया, औषध लगै न ताहि,
सुसुकि-सुसुकि मरि-मरि जियै, उठै कराहि-कराहि ॥

अर्थ :—जिसको इस बात का भान हो गया है कि मैं स्वपद से च्युत हूँ अर्थात् मुझे मेरी आत्मा का सम्पर्क प्राप्त नहीं है या मैं परमात्मा के समीप नहीं पहुँचा हूँ ऐसे व्यक्ति का कोई उपचार सफल नहीं होता अर्थात् उस को लौकिक सुख शांति में रस नहीं आता है, जब तक उसे इष्ट का सम्पर्क प्राप्त होता नहीं, वह जन्म जन्मान्तर तक चकित ही रहता है। जीवित ही मरने और जीने जैसी अवस्था का अनुभव करता है तथा स्वपद प्राप्ति के लिये बेचैन हाकर दुःखी होता है।

(७४)

सांचा शब्द कबीर का, हृदया देखु विचार,
चित्त दे के समुझे नहीं, मोहि कहत भैल युग चार ॥

अर्थ :—मुझे आत्मानुभव हो गया है, ऐसा भान होने पर कोई भी ज्ञानी या संत कबीर सार्वजनिक सम्बोधन में लोगों को सूचित करते हैं कि हृदय में विचार कर देखो। आपके अनुभव में आवेगा कि कबीर का कथन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्य है। मैं उस सच्चे ज्ञान को चारों अवस्थाओं में लोगों के सामने रखता आया हूँ, लेकिन कोई भी मुमुक्षु होकर अपना ध्यान उसे समझने में नहीं लगाता है ।

(७५)

जो तूं सांचा बानिया, सांची हाट लगाव,
अंदर झाड़ू देय के, कूरा दूर बहाव ॥

अर्थ :—लाभ के इच्छुक सच्चे व्यवसायी को अपना व्यवसाय सही रूप में चलाना चाहिये। अर्थात् लौकिक व्यवसाय द्वारा जो हानि लाभ होता है उसमें तेरे आंतरिक्त विचार खरे व खोटे होते हैं। वही (कूड़ा) तेरे दुर्गुण हैं यदि तू सच्चा व्यवसायी बनना चहता है तो इस बाह्य जगत और व्यवसाय को अपने सत्य आचरण और व्यवहार द्वारा सत्यता में परिणत कर। इस प्रयोग द्वारा तेरे अंतरंग का कूड़ा साफ हो जावेगा और तेरा यथार्थ हानि लाभ तेरे आश्रित होगा।

(७६)

कोठी तो है काठ की, ढिग ढिग दीन्ही आग,
पंडित जरि झोली भये, साकट उबरे भाग ॥

अर्थ :—यह शरीर एक काठ की कोठरी सदृश्य नश्वर है और जड़ भी। इसमें कर्मेन्द्रियों का सर्वत्र प्रभाव है जो विषयाग्नि से प्रज्वलित है। शास्त्र ज्ञान होने पर विद्वत्ता के अभिमानी पंडित जन उस विषयाग्नि से निडर हैं अस्तु वे इस अग्नि में जलते ही हैं। लेकिन जिन्हें शास्त्र ज्ञान नहीं है वह अपना हित अनहित सोच कर इस अग्नि से बचाव करने हेतु प्रयत्न कर बच जाते हैं।

(७७)

सावन केरा सेहरा, बुंद परा असमान,
सारी दुनिया वैष्णव भई, गुरु नहिं लगा कान ॥

अर्थ :—खेती के योग्य वर्षा ऋतु में कृषि कार्य न कर विवाह के लिये प्रस्तुत समाज इस प्रकार है जिस तरह पानी के बूँदों का आकाश में बरसना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् उपयोगी समय को दूसरे कार्यों में खो देना। गुरु-बचनों का आदर उपयोग न करते हुए भी सभी अपने को वैष्णव कहते हैं यह बड़े आश्चर्य की बात है।

(७८)

ढिग बूडा उतरा नहीं, याहि अंदेशा मोहि,
सलिल मोह की धार में, क्या निंदरी आई तोहि॥

अर्थ :—यह प्राणी इतने उथले पानी में डूबा हुआ है, जहाँ पर कि डूबने योग्य नहीं है। कबीरदास जी आश्चर्य चकित होकर कहते हैं कि तू उतराता क्यों नहीं? इस तीव्र मोह के प्रवाह में तुझे किस तरह अचेतता ने घेर रक्खा है। तू सुषुप्त है यह बड़े आश्चर्य की बात है।

(७६)

साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिं जाय,
सलिल धार नदिया बहै, पांव कहाँ ठहराय॥

अर्थ :—ऐ प्राणी! तू ज्ञान-बातों में अच्छा रस लेता है लेकिन उसको धारण नहीं करता है। यह सदाचरण का मार्ग तेरे लिये बहुत कठिन प्रतीत होता है; कारण यह है कि इस संसार में सर्वत्र मोह का बाहुल्य है। मोह के इस तीव्र प्रवाह में तेरा पांव टिकता नहीं, इसीलिये तू आचरण-हीन है। अस्तु प्रथम अपने दृढ़तर पुरुषार्थ द्वारा मोह की धार में स्थिरता प्राप्त करने का प्रयत्न कर तभी तू सच्चे सुख को पाने योग्य हो सकेगा।

(८०)

कहता तो बहुतं मिला, गहता मिला न कोय,
सो कहता बहि जान दे, जो न गहंता होय॥

अर्थ :—इस संसार में उपदेशक या निर्देशक तो बहुत हैं लेकिन इन उपदेशों के अनुसार आचरण करने वाले नहीं के बराबर हैं। जो मात्र कथन या उपदेश करता है लेकिन तदनुसार आचरण नहीं करता है उसे छोड़ देना ही उचित है अर्थात् उस कथनी करने वाले पर विश्वास न कर जो कथन को कार्य रूप दे सके उसी का सहयोग प्राप्त कर, अथवा उसको ही आदर्श मानो जो कि कथनी और करनी में एक हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८१)

एक एक निरुवारिये, जो निरुवारी जाय,
दो दो मुख को बोलना, घना तमाचा खाय ॥

अर्थ :—क्रमशः एक कार्य अथवा दृष्टि-कोण को पूर्ण करना चाहिये। जो कार्य सरल होवे उसको प्राथमिकता देना चाहिये। दुविधा का कार्य अथवा वार्तालाप इष्ट सिद्धि में सहायक नहीं है अपितु हानिप्रद है। दो तरह की बातें करने वाला सदैव पराजित होता है एवं कष्ट भी उठाता है। अस्तु निश्चित दृष्टिकोण एवं एक ही का समर्थन सदैव सुखद होता है।

(८२)

जिभ्या को तो बंद दै, बहु बोलन निरुवार,
पारखी के संग करु, गुरुमुख शब्द विचार ॥

अर्थ :—वाचालता किसी भी कार्य का साधक नहीं है अस्तु आत्म कल्याण के इच्छुक व्यक्ति अधिक बकवाद करने से दूर रहें। जो न्यायवान एवं सत्परीक्षक होवे उसकी संगति में गुरुओं द्वारा किये गये कथन का विचार करे एवं निश्चयात्मक प्रवृत्ति करे।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदों का शब्दार्थ

(१) कहवाँ = कहाँ। भान = आत्मा, ज्ञान। ओस = तृष्णा की बूँद, इच्छा-पूर्ति। प्यास = उत्कण्ठा। मंदिर = निवास, शरीर। सहसों धेनु = आत्मतुष्टि, निःकांक्षित। अमावस = अज्ञान, अविद्या। संक्रान्ति = संक्रमण, ज्ञान-प्राप्ति। नवग्रह = नया शरीर, (नव द्वार युक्त शरीर) विभिन्न योनियाँ। पांति = गति, राह, मार्ग। ग्रहण = पर्दा, आच्छादन। खना = क्षण। कौन शब्द = कैसा ज्ञान, योग्यता।

(२) बिरवा = वृक्ष (त्रिभंग युक्त तीन काल हैं)। पुरुष = दिन। जोय = रात्रि। सीस = ऊर्ध्व भाग, भविष्य काल। जर = मूल। पतारा = पाताल, भूतकाल। बारह पंखुरियाँ = बारह मास। चौबिस पात = पक्ष (पाख)। बरोह = अंश। बानी = बान, स्वभाव। विकार = बेकार, अकार्य (दुर्गुण)। पानी अंश, समय। अछलों = खेद, दुःख। हरि बिरवा = हरि भक्ति में समय बिताना।

(३) खन ऊब = क्षण में ऊबना, उतराना। खन औगाह = क्षण में अवगाहन करना, तैरना। रतन = आत्म-रत्न। नदिया = ढालू जल मार्ग, पतन मार्ग। नीर = आचरण। पोहकर = पुष्कर तीर्थ। घाट = पाट = व्यवस्था, उपाय। पुरइन = अस्तित्व का मूल। कमल = कल्पना। बाट = व्यापार, प्रयोग। बैठा रहे = प्रतीक्षा करना। चोख = उत्कृष्ट। मच्छ = इन्द्रियों के विकार, चपलता। केवट = उद्धारक, उपदेशक।

(४) चरखा = कर्म चक्र (व्यवहार)। बढ़ैया = जीव, आत्मा। कातों = उपाय किया। सत = सूत्र. मार्ग। चरखुला = चारों गतियों में प्रवृत्ति का मार्ग, कर्म चक्र। बाबा = सयाने, विद्वान, गुरु। ब्याह = सौख्य मार्ग बताना। बरहिं = श्रेष्ठ, आदर्श, प्रभु। वियाह = क्रिया काण्ड मार्ग निर्देशन। नगर = तीर्थ, मन्दिर। शोक-संताप = ढोंग, कुमार्ग। बिटिया = माया। बाप = ब्रह्म। ब्याह = वश किया। समधी = समत्व बुद्धि। लमधी = पुजारी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिनिधि। बहूके माय = स्वजन। गोड़े चूल्हा दै है = मिथ्या मार्ग, चूल्हा को फूँकने के बजाय बुझा देना। दिढ़ाय = दृढ़तर बनाना। देवलोक = पुण्य-भूमि, पुण्य पुरुष। मरि जाँयगे = नश्वर हैं। बढ़ाय = आत्मा (कर्ता)।

(५) बावन = बोना। भूंजना = भूनना, शक्ति बदलना। अंकुर सूत = अंकुर का लेश।

(६) अन्तर ज्योति = जीव, आत्मा। शब्द = शरीर। नारी = माया। हरि ब्रह्मा = ब्रह्मा, विष्णु और महेश यह तीन गुण। त्रिपुरारी = त्रलोक्य व्यापी, सत, रज, और तम गुण युक्त जीव। भग-लिंग = जन्म। अनन्ता = संख्या से परे, असीम। वाखरि=सृष्टि। विधातै=(विधि + अतः) कर्म जनित। चौदह ठहर = चौदह लोक। हरिहर ब्रह्मा = त्रय गुणात्मक। महंतो नाऊं = महत्वपूर्ण विशेषण या नाम। तीन बसावल गाऊँ = तीन लोकों की वि न्न कल्पनाएँ। खण्ड ब्रह्मण्डा = सृष्टि के विभिन्न भाग। सुनति = सुन्नत करा कर। नारी = स्त्री लिंग। भौ चित=मोह और चैतन्य तत्व। गरभ प्रसूती=गर्भ और प्रसव का कारण। स्वांउ धरे = विभिन्न योनियों में पहुँचना। वियापे मोह = मोह व्याप्त है। जनी जना = स्त्री-पुरुष। भौ-बालक = बालक जन्म। अवगति = जीव पुद्गल। ई से ऊ = आदि से अन्त तक। व्यवहार = लोकाचार, मिथ्या मार्ग।

(७) नारी माया (मोह) पुरुष दुइ = राग-द्वेष यह दो भेद। पाहन फोरि = अज्ञान को भेदकर। गंग = ज्ञानधारा। पानी-पानी = समता रस। दुइ पर्वत = अविद्या और मोह। दरिया = भव समुद्र। लहर = सत् ज्ञान। माखी = मिथ्या भाव। तरिवर = संसार वृक्ष। एकै बानी = एक रूपता। माखा = तृष्णा। गर्भ = द्वैत-भाव। बिनुपानी = निर्मूल। सकल पुरुष = सम्पूर्ण पौरुष। मैं खायो = बेच खाया। अकेला = एकत्व मार्गी। अबकी बूझै = इस ज़न्म में चेत जाना।

(८) जागत = इस अवस्था में, सचेत रहें। काल न खाय = मृत्यु से नष्ट न होने वाला। कल्प नहिं व्यापे = माया से अलिप्त। जरा = अवस्था की क्षीणता। शशि औ सूरहिं = काल परिवर्तन, समय चक्र। ग्रासे = परास्त करे,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लांघ जावे। नौग्रह = शरीर (नवग्रह आश्रित)। रोगिया = मानव, जन्म-जरा मृत्यु आदि रोगों से घिरा हुआ। बैठे = स्वस्थ हो। जल महं = निर्मल दशा में। विंव = आत्म-ज्योति। ससा = वायुरूपी जीव (खरगोश)। सिंह = कर्म जनित शरीर (भय का मूल)। सूधे = सहज, सीधा। नर = (न + र) नश्वर शरीर + राममय आत्मा जड़ चैतन्य भेद। गुफा = अंतरंग। बाहर = वहिरंग, शरीर में आत्मबुद्धि। उलटा बान = विपरीत लक्ष्य। पारिधिहि = घातक को। सूरा = संसार से विमुख।

(६) गायन कहे = शब्दोंच्चारण, वचन। अनबोला = जड़। नटवट = स्वांग-धारी। पेखनि = नाटक। अनहद = अनंत आत्मा। कथनी बदनी = कर्म और भोगफल। धरती = शरीर। आकाशहि = संसार। बिना प्याला = निराधार। अंचवे = पान करना। नदी = आचरण। रामसुधा = आत्मामृत। रस = प्रीति।

(१०) बौराना = पागल। असनाना = स्नान। आतमर मार = जीवित प्राणी का घात, आत्म-हनन। डिंभ = बालक जैसा सरल। पीतर = पितृ पूजा। सहज सहज समाना = सर्वत्र एकसा आत्मा संसारी प्राणियों में व्याप्त है।

(११) पाँच ढोटा = पाँचों इन्द्रियों का विषय, पाँच दुःखद मार्ग। एक नारी = वासना माया, इच्छा। मुरादी = प्रमुख वासनाएँ। दुहागिन = दुःखद विषयाग्नि।

(१२) एकै पुरुष = सृष्टि रचयिता, विष्णु या जीव एक ही है। एक है नारी = माया, इच्छा या लक्ष्मी है। एकै अंड=मूल कारण। नाग फांस=कर्म बंधन। मूसिन = निर्धन किया, दीन बनाया। चुनि चुनि खाया = सुख-दुःख भोगना।

(१३) मुक्त = जीव, आत्मा। धइल = अपनाया। महतारी = माया (माँ) पिता = विष्णु। कन्या = लक्ष्मी। कुंवारी = स्वतंत्र, अव्याहिता। खसमहिं = जीव। स्वसुर = विष्णु। भाई = जीव। ससुराल = सृष्टि, संसार। सासुहिं = लक्ष्मी। सावत = सौत। ननद = माया। भौजि = लक्ष्मी (मोह)। परपंच = शरीर का उद्भव (पंच तत्व)। मांरनाम = जीव। समधी = ब्रह्म। घरवारी =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माया। मोहे = लिप्त। पुरुष = पुरुषार्थी ब्रह्म। नारी = अपूर्ण, अशुद्ध।

(१४) प्रतिपाल = ईश्वर, परमात्मा। मकसूद = धारणा, इच्छा। ब्राह = वाराह। ब्रोद्र = उदर, पेट।

(१५) भेद = जीव और माया की भिन्नता। सिरजनहार = बनाने वाला राम (आत्मा, परमात्मा)। वे = दो रूप। कर्ते = परमात्मा अथवा कृष्ण। जत = ज्ञात, माया, शरीर। सत्त = सत्य, ज.व, आत्मा। खपै = नष्ट हो, विलीन हो।

(१६) अगिन = विषयाग्नि। नीर = समतारस सुख शांति का मूल। कंदू = (कं + दू) जल से दूर अर्था तृ समत्व रहित। झरि = संपर्क, कारण मात्र। उत्तर-दखिन = ज्ञानी क्रियाकाण्डी। दाझा = दग्ध हुआ, असफल हुआ। विरहा लागी आगि = मिथ्याभाव, अज्ञान। तिनका = सरल निर-मिमानी। ऊबर्या = पार लगा। गलि = क्षयकर। पूरे = ढेर, पूर्णता के समीप। आहेरी = लुब्ध प्राणी, लोभी गुरु। मिरग = विषयासक्त अज्ञानी। वन = संसार। बहती सलिता = मोह रहित (समत्व प्रवाह)। मच्छ = विद्वान। समं-दर = भवसमुद्र। नदियाँ = प्राणी। मच्छी = सुरति, लगन। रूखों = मोह माया के घने वृक्ष (संसार-भ्रमण)।

(१७) चींटी के मुख = चींटो द्वारा मोक्ष या मृत्यु को प्राप्त होना। सरवर = झील, तालाब।

(१८) बीज रूप = सृष्टि का आदि अथवा कर्ता। आन = अन्य वार्ता। मन, बुधि, हंकार = यह त्रिविध विकल्प, मन, बुद्धि और अहंकार। सत, रज, तम = त्रिगुणात्मक सृष्टि। छूटल=मुक्त। अरुझान = उलझा हुआ, बंधन में।

(१९) जोगिया = यौगिक रूप, आत्मा और पंच भौतिक शरीर के मेल से साकार हुआ प्राणी। नगर = संपर्क। जोरै = निकट, जोड़ में। उलटा ज्ञान = मिथ्या भाव, अज्ञान। काला चोला = दूषित कर्मों से मलिन। म्यान = आवरण, कवच। कंथा = वस्त्र, शरीर। गुप्ताधारी = (गुप्त + धारी) अपना आधार गुप्त है, जिस तरह कोई योगी वेश के अंदर अपनी भोज्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामग्री को अधारी में छिपाए हो इसी तरह से यह शरीर अपने में कर्म और जीवन शक्ति को प्रच्छन्न रखता है।

मूल सजीवन = संजीवनी औषधि, ब्रह्म तत्व। जुक्ति = उपाय, जीव व शरीर के पृथकत्व का आभास। राम रमे = राममय होना। त्रिभुवन सूझे = त्रैलोक्य ज्ञाता हो। अमृत बेली = अमरत्व का पथ।

(२०) ल्यो = लगन, रुचि। चरण पार्श्व = चरणों के समीप, सत्याचरण की ओर। निरत = आनन्द मग्न होना, लीन होना स्वाति-बूँद = चाह, आशा। सीप = लुप्त, मुद्रित। साइर = अगाध असीम। सहजि = सरलता। मोती = निर्विकार आँखें। डोइ = राग-द्वेष युगल। नीर पोयो = हर्ष समाया, आनन्दाश्रु पूर्ण हुए। पवन = जीव, भाव। अम्बर = शरीर, कर्म। धरनि = शरीर। बरषै = स्वतः उन्मुख हो। गगन = निराकार आत्मा। भीजै = सहृदय हो, सरल हो। चन्द सूरज = दोनों नाडियाँ, पाप-पुण्य, लोक-परलोक। मेल = समन्वय। जुडन लागे = संतुलित हो गये, सही हुए। हंसा = ब्रह्म जीव। केलि = आनन्द मग्न। विटप = शरीर, व्यक्ति विशेष। नदी चाली = निर्मलता बढ़ी। कनक = माया, धन-सम्पत्ति। कलस = मोह, परिकर, कुटुम्ब। संभाय = लुप्त हुआ। पंच सुवटा = पंचेन्द्रियाँ, कर्म। आइ बैठे = स्थिर हो गये। उदयभई=प्रफुल्लित हुआ। बनराइ = कमल, निर्लिप्तता, निर्मोही भाव। विछुटवो = विलग हुआ। लाग्यों = प्राप्त हुआ। नगन = शरीर से भी निस्पृह, अकिंचन। बटाऊ वा = ऐसा वार, श्रेष्ठ। मारग = मुक्ति मार्ग सन्मार्ग। चाइ = चाव से।

(२१) सहज = सरलता। सहज = सर्वव्यापी, सर्वत्र सुलभ।

(२२) एक = अद्वितीय। करम = विधि, कर्तापन। झाँई = रूप। शून्य = शून्य का ध्यान। योग = ध्यान, साधन। युगत = क्रिया काण्ड। सहजै = सरलता। सहज = सर्वव्यापी आत्मा।

(२३) लाढ़ो = प्रिय। मेंढुकी = जल का निवासी अर्थात् शांति और निर्मलता का पात्र। पानी = समता रस। रानी = अधिकारी। कौआ = एकांतवादी, स्वार्थ पोषक। भैया = सगा। भतीजा = प्रिय संबंधी। चील =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मायाचारी, प्रकृति । देवरानी = देखा-देखी । बगुला=अंध-भक्ति, स्वार्थ-पोषक ध्यान । छोटा देवर = तेरे वश का है, प्रिय है । मुसकानी = हर्षित होता है । अन्धे = जड़ शरीर । माणिक = अमूल्य-आत्मरत्न । पीया = माया सूत्र में फंसाया । अंगुली बिन = निष्क्रिय होकर भी । सुई चलानी = अन्य संबंधों को जोड़ा । बिन-ग्रीवा = अयोग्य । माला = चौरासी का फेरा । बिनजिह्वा = अव्यक्त आत्मा, वचन-हीन जीव । चार चिरइयाँ = क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, या चार गति । मंगल = प्रफुल्लित हैं, स्वागत करते हैं । ढूँढा = शरीर । ताल = क्रिया, कार्य की लय । सूथन = राग-द्वेष के कार्य । गवैया = पर लक्ष्य रखने वाला प्राणी । ऊँट = उच्चता का अहंकार । बिसन पद = व्यसनों की बड़ाई । निर्वाणी = सांसारिक दुःखों से छुटकारा, स्वतंत्रताद्योषक ! निन्दा = नासमझी । नरक-निशानी = दुःखों का बाहुल्य ।

(२४) होरी = कचड़ा जलाने की क्रिया, कषाय आदि नष्ट करने वाला जीव । खिलारी = निर्मोही आत्मा । मजा = आनन्द । भारी = विशाल, तीव्र । भरम = मिथ्यात्व, भ्रम । सारी = आवरण, पर्दा । फारी = नष्ट की, हटाया । बरबस = विवशता, कठोरता से । त्रिगुनतनी = सत, रज व तमोगुण के बंधन । अंगिया = शरीर-आवरण । शब्द = ज्ञान । कुमकुमा = ललाई, तल्लीनता । ज्ञान-गुलाल = ज्ञानकी गम्भीरता । अंधियारी = अंधकार, मोह । एकहि भाव = स्वभावान्मुखता । बिलास = आनन्द । पुरुष = जीव । नारी = पराश्रयता । गारी = कुबुद्धि, कुभाव । लोक लाज = प्रथा, रिवाज । पूरण = आत्मा का पूर्णत्व, ज्ञान । भूल गयों हैं = संसार के विभाव से हट गया है । धमारी = अल्हड़पन । साहब = परमात्मा । कबीर = जीव । परख = ज्ञान । रंग रंगिया = लीन हुआ । न्यारी = पृथकत्व ।

(२५) रंग = ज्ञान, शिक्षा । दिनन की थोरी = संयम धारण के लिये लघु । प्रिय = परमात्म ज्ञान । सास ननद = पूर्व प्रचलित रूढ़ियाँ । सखि = माया, मोह । बरजोरी = अधिक प्रभाव डालकर । फाग = स्वतंत्र व्यवहार, स्वेच्छाचार । डर लागे = दुःखों का भय । तनक छुवत = माया का स्पर्शमात्र । छाती धरकत = भयभीत करता है ! बहियाँ = बाँह बाँधना, परिग्रह बढ़ाना ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौवा चंदन = धार्मिकता का स्वांग। अविर अरगजा = पीताम्बर और गुलाल। होरी = दुष्कृत्य या कषायों का निवारण। रंग भीजी = धर्म धारण करना। तृष्णा = आशा और चाह। कोरी = जैसी की तैसी।

(२६) काया नगर के पोरी = शरीर के संयोग में। मन = इच्छाएँ। होरी = प्रेम का स्वांग, अनावश्यक कार्य करना। चेतन राजा = चैतन्य की विशिष्टता। प्रेम की चांचर=सर्वत्र प्रेम का व्यवहार। वनिता-वृत्ति=पराश्रयता, कामुक प्रेम। फाग = आत्मसुख। सुरति = रुचि, एकाग्रता। निरति=वैराग्य। तरंग = विभिन्न भावनाएँ। छत्तीस रागिनी = मन की चंचलता। अनहत = हठयोग की क्रिया। ज्ञान गुलाल = ज्ञान की महिमा, उपदेश। क्षमा = सहन-शीलता। पाँच = इंद्रियाँ। पचीस सखी = शरीर की साधना के कारण उत्पन्न कषाय भाव। रंग में बोरी = साधु वेषा-बनाया। घूँघट खोलि = मिथ्यात्व का पर्दा हटाकर। सन्मुख हांय = आत्मसाक्षात्कार। प्रिय संग = आत्मबुद्धि से। वहोरी = पुनः भविष्य में।

(२७) हमारे गाँव के = आत्मज्ञानी। ठाँव = योग्यता। बादर = स्थूल-आकार, दृश्यमान। अखण्डधार = आनंद-श्रोत। बिजुली = सक्रियता। चमके = दृश्यमान होना, अपूर्व शक्ति धरना। शशिभानु = प्रकाशित तत्व। प्रकाश = हर्ष, ज्ञान, प्रकाश। निवास = प्राप्त, ज्ञान। वृक्ष = समय, काल परिवर्तन। शाखा पत्र = समय विभाग-क्षण, पल, घंटा आदि। छाँह-धूप = दुःख-सुख। फूल = आकर्षण। भौंरा = ब्रह्म। गुंजार = आनन्द। फल = परिणाम। निराधार = निश्रेयसतत्व, आत्मसुख। त्रिगुण = सत, रज, तम। संशय = भ्रम। भोग = इंद्रियाधीन सुख। अखण्डपुरी = मुक्ति, अविनाशी चैतन्य धाम। सहज-धाम = ब्रह्मलोक।

(२८) हंस = आत्मा। गुण तीन = सत, रज व तमोगुण।

(२९) पिया = परमात्मा। घर की रीत = प्राप्ति मार्ग। बहू = आत्मा। ठौर ठिकाना = सुख शांति। रोवते = दुख सहते। कपट केवरिया = निश्छल व्यवहार, मिथ्या बुद्धि। निज मंदिर=आत्म दर्शन। इत उत तकना=दूसरों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोष, अनेकों देवी देवताओं की मान्यता। पिय = आत्म तत्व। सुषमन सेज = रागद्वेष से पृथक, समत्व। पीतम को पौढ़ाव = आत्मस्थिरता। दुरमति = दुरभिमान, दिखावट। पीहर = संसार। झूठा व्यवहार = मिथ्यामान्यता।

(३०) राम = स्वामी, आत्मा। घूँघट = दृष्टि, ज्ञान। पट = आवरण, मिथ्या। गर्भवास = दुःखद अवसर पर। सजनी = बुद्धि। विषय-रस = इन्द्रियों की तृप्ति। पचरंग चोल = शरीर, पंचेन्द्रिय की काया। झोल = तत्व, सारवस्तु। चिंतामणि = इच्छा को पूरी करने वाला रत्न। किरिया कर्म = दिखावट, पूजापाठ, योगाभ्यास।

(३१) धुविया = संसार प्राणी। जल बिच = सुख शांति का आधार, पियासा = अतृप्त, दुःखी। घट के मर्म = आत्म-रहस्य। धोवियन = पराश्रय। रोवे धोवे = संतप्त होना। उदासा = अशांत, विरक्त। बरे = गांठना। रस्सी = बंधन। गर की फाँसा = निज बंधन। सच्चा साबुन = निरंतर प्रयास। इन रत्ती = तुच्छ धनादि माया। मासा = सर्वस्व। आछत = पूर्णत। उपासा = अतृप्त, दुःखी।

(३२) पानी = जीव का समत्व गुण। मीन = जीव। पियासी = अतृप्त। भँवर = मन। घट = शरीर। परम = पुरुष। अविनाशी = आत्मतत्व। हाजिर = प्रत्यक्ष, समीप। निराशी = नैराश्यपूर्ण। भरम = मिथ्यात्व।

(३३) चातक = चकोर पंछी। तृषाविवश = प्यास से व्याकुल। दारुण = असह्य। नयनहीन = अंधा। अविद्या = मिथ्याबुद्धि, अज्ञान। लखचौरासी = संसार जन्म

(३४) झीना = अप्रकट। परवीना = प्रवीण, अत्मज्ञानी। अचाह — अस्पष्ट इच्छा, अज्ञात भावना। चाह = कांक्षा तृष्णा। लौलीना = तल्ली,न तन्मय। मीना = तत्पर, तैयार। शब्द = ज्ञान। सुरति = आत्मा। मलीना = निर्जीव। अधीना = नम्र। विलम = देर, अनिच्छा। रहनि = आदत, स्वभाव

(३५) मस्त = तन्मय। हीरा = आत्मा का आभास, आत्मभान। गाँठ गठियायो = निश्चित होना। हलकी = अपूर्ण। तराजू = तर्क, तुला। सुरति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलारी = व्यवहार ज्ञान । मतवारी = विस्मृत । मदवा = सौम्य रस । बिन तोले = विशेष । हंसा = हंस, आत्मा । मानसरोवर झील = मन का राज्य । घर = घट, शरीर । तिल ओले = तिल की ओट

(३६) अवधू = राम, आत्मा-राम । अच्छर = शब्दातीत, अवर्णनीय । पवना = इला, पिंगला वायु । गगन = प्राणायाम द्वारा वायु साधना । गुफा में वासा = एकांतवास । दुलैची = आसन, साधना । तारों = स्वांस रोककर नाड़ियों में प्रवेश । सुमेर = रीढ़, मेरुदण्ड । उन्मनि = एकाग्र ध्यान, एकाग्र-चिंतन । तारी = तारतम्य । अद्वैत = एक में ही वह ब्रह्म तत्व है । अच्छर = मंत्र का वर्ण साधना । कह अरु अकह = कथनीयता या अकथनीयता । सत असत = शरीर और जीव । मारा = परे ।

(३७) रपटीली = चिकनी, सिरकनी । सकुचाय = भ्रम में पड़ना, अनिश्चित होना । नैहर वास = शरीर बुद्धि । पीहर = आत्मचिंतन । अधर-भूमि = निराधार ज्ञान । धन = नव व्याहिता स्त्री । वारी = बाल्यबुद्धि । पुरुष = जीव । भोला = सरल । सुरत = ज्ञान (प्रेम) । झकोरा = अनिस्थिरता । दूती = अंतरभेदी ।

(३८) भंवर = स्याहपन । बक = सफेदी, शुक्लता । हल हल कांपे = बृद्धावस्था प्राप्त हुई । वालाजीव = निर्दोष आत्मा । पीव = परमात्मा । कांचे वासन = शरीर । पानी = समता, विवेक । हंस = आत्मा । काग उड़ावत = सक्रिय होना । सिराना = समाप्त हुई ।

(३९) नारी = संसारी माया । तर = अंतर । गागर = जीव । पनिहारी = शरीर । बाटहिवाटा = प्रचलित पथ । खाटा = सुख-सुविधा । जाड़न मरे = कष्ट उठाता है । सपेदी सौरी = सुखद तत्व, आनन्द निवास । खसम = आत्मा, सर्व श्रेष्ठ प्रियतम । घरनि = बुद्धि । बौरी = बावली, अज्ञान । सांझ सकार = प्रातः सांय दोनो समय । दिया = आरती उतारना । संवरे लगवारे = शरीर या अनात्म तत्व । रस = राग, चिंता । पिय = आत्मतत्व । सांची = यथावत । सोवत = अज्ञानी, अचेत । जांघ उघारी के = अवगुणों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हुए। जन = भक्त।

(४०) उलटि वेद = विरोधी कथन। पानी = अग्नि विरोधी गुण, शांति शीतलता। पावक = विषय-कषायाग्नि। गाय = इन्द्रियाधीनता। नाहर = ज्ञान (संसारवन में श्रेष्ठ)। हरना = मन (चंचलता में प्रमुख)। चीता = तर्क, विवेक। काग = एकांत वाद (कौआ का एकाकीपन)। बटेरबाज = अनेकांत-वाद (सर्व पक्षियों पर विजयी)। मूस = लालच, संग्रहवृत्ति। मंजार = संयमी, धृष्ट। स्यार = कपटी, ढोंगी (रंगे स्यार की कथानुसार)। श्वाना = भक्त, सेवक (कुत्ते का स्वामिभक्त होने का गुण)। आदि = स्वयंभू, परमात्मा। उदेश = विधि-विधान, दृष्टिकोण। बेस बाना = छद्म वेश, कपट व्यवहार। दादुर = क्षणिक विकारी पर्याय (वर्षा ऋतु के मेढक। पांच ही भुवंगा = पांच ज्ञानेन्द्रियाँ।

(४१) नारि = माया, लक्ष्मी। माय = जननी, माता। जाई = पैदा किया। गोड़ न मूड़ = शरीर रहित। ममरिरहा = भटक रहा। लै = विनाश। बुध = बुद्धिमान। अधबुध = अजानकार। वाहिक = उसकी। बदन = उपासना। मूस = लालच, संग्रहवृत्ति। बिलाई = धृष्टता, निर्भयता। हस्ती = अभिमान। सिंघाई = निर्भयता, स्वतंत्रता।

(४२) हटवारा = ग्राहक। सहसनाम = भगवान के सहस्र नाम। हटवाई = अनादर, दुःख। कानि = असंतुलित। उंहकि = ठगाना, खोना। ढोंल बजाई = प्रचार कर, विज्ञापन कर। पांसग = घटबढ़ तौल। जहंड़ाई = दुःख अशान्ति।

(४३) कर पल्लव = हाथ। निर्जीव = जड़, अजीव। यह एक पहेली है। कबीरदास जी ने इस पद में लेखनी के गुण-दोषों का वर्णन किया है और उसको बुझाते हुए विद्वानों से इस पहेली का उत्तर चाहा है।

(४४) नारि = मोहक लक्ष्मी। पदिमनी = कमलासनी। साँपिन = नागिन सदृश्य दुःखद स्पर्श। बरहि = श्रेष्ठ।

(४५) बुढ़िया = पुरातन, लक्ष्मी। नितहि = सदैव, नित्य। बारि = नवयौवना, बाला। कवाने = कौन। दाँत गये = पोपली, बिना दाँत हुई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पान = हाथ, सहारा । गंग नहात = सर्व स्पर्श करने से । नैन गये = दृष्टिहीन हुए, अज्ञानी हुए । कजरा देत = आकर्षित होना, लुब्ध । वैस = युवावस्था । अनजाने = अज्ञात । पूत = लक्ष्मीपुत्र, धनी । भतारहि=वैष्णावीयता, भक्ति ।

(४६) बावली = अज्ञानी । पत्थर = निर्जीव मूर्ति देवताओं की । घर की चक्की = सदैव व्यवहार में आने वाले चल प्राणी (सजीव कुटुम्बी आदि) । पूजे = सद्व्यवहार करना । पीसा खाय = भोगने में आवे । हरि = प्रभु, परमात्मा । पहाड़ = पाषाण की खानि ।

(४७) कुलाला = जीव (रचयिता, कुम्हार) । बासन गढ़ै = शरीर रचना की क्रिया । विधि = कर्म संयोग, पूर्व कृत्य । कनाऊँ = खोल, शरीर (कनात आवरण) । जठरअगिनि = जठराग्नि, धातुओं की रासायनिक क्रिया । प्रजारी = परिपक्व किया । प्रतिपाली = संरक्षक, प्राण, जीव । शिव = पुरुष । शक्ति = स्त्री । घर का सुत = मन । अयाना = अविवेकी, अज्ञानी । दिवाना = एकान्त दृष्टि, मूर्ख । सपनी = आशा तृष्णापूर्ण । एकै दूघा = मूल तत्व एक है । चित्र = दृश्य देह, रचना । सूत्रधार = प्रधान तत्व आत्मा । चित्र अंतहि = रचयिता, ब्रह्म, जीव । निहार = जानना अनुभव करना ।

(४८) अकथ = अवर्णनीय । नर (न = र) = नश्वर शरीर और राम (आत्मा) । सिंह = पुरुषार्थी चैतन्य । शार्दूल = माया, अचेतन । हर = उद्यम, भावी योजना । जोतिन = क्रियात्मक रूप दिया । सीकस = महीन, तुच्छ । वोइन=फल प्राप्ति का उपाय । धावे = मूलधन (धान) । बन की भुलुइया = व्यर्थ परिश्रम करने वाले भालू की तरह या जटा बढ़ाकर साधना का ढोंग करने वाले । चाखुर फेरे = (धान से चावल पृथक करने की क्रिया) फल प्राप्ति का प्रयत्न, गाहना । छागर = चंचल, अतृप्ति, भक्षक-रक्षक । किसाने = संग्रह करने वाले । छेरी = असंतोष, अतृप्ति । बाघहि = सर्वभक्षी, लम्पटी । व्याह=संयोग, एकत्र । मंगल गावे गाई = इन्द्रियाँ सुख माननी हैं । वन के रोझ = अधिक उलझन के कार्य । दाइज = सुलभ, सरलता से उपलब्ध । गोहलो = व्यर्थ बोझ । कन्धे जाई = ऊपर चढ़ना । कागा कापड़ धोवन लागे = मलीनता को हटाने के बाह्य उपचार । बकुला किरपहि दांते =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यर्थ दांत बजाने वाली, बक-भक्ति । माखी मूंड मुड़ावन लागी = तुच्छ त्याग को महत्व देना । हमहूँ जाव बराते = सुख प्राप्त करने में उद्यत हुए ।

४९ :—सांई = आत्मा । सासुर = संसार । संग न सूति = आत्मानुभव नहीं किया, आत्मसुख का अनुभव नहीं किया । जीवन = पौरुषकाल । चार जना = क्रोध, लोभ, मोह, मद । पाँच जना = पंचेन्द्रियाँ । मांडी = मिलन स्थल, संयोगी रूप । सखी सहेलरी = पूर्व संस्कारी जीव । मंगल गावे = हर्षित होवें । माथे हलदि चढ़ावें = भविष्य के कारण, कर्मबन्ध के निमित्त नाना रूप; विविध योनियां । मन भांवरि=मन के विकार वश । गांठी जोरि= कर्म बंधके निमित्त मिलकर । पतियाई = मोह दृढ़ किया । अर्घा दे = सह-योगी बनकर । सुवासिन = सुभाषिणी स्त्री । चौके = चतुर्गति में श्रेष्ठ । रांड = दुःखी, नासमझ । संग साई = आत्म रूर हो कर भी, भगवत् शक्ति का अपने में आभास न होने से । विवाह = संयोग—अवसर । बिनदु-लहा = सुबुद्धि रहित । बाट जात = मानव योनि पाने पर । समधी = समत्व ज्ञान । गौने जैवे = परमात्मा का सामीप्य । कंत लै = साकार उपासना मूर्ति-संयोग । तूर बजैवे = सुखी होंगे ।

(५०) :—मटिया = मिट्टी । जादौजह भीजै = इसी भूमि में छप्पन कोटि यादव जल कर भस्म हुए और गल कर मिट्टी में मिल गए । बेद कितेव = पुराण, कुरान । मन के भरमा = मन में भ्रम पैदा करने वाले । तुम्हरो करमा = तुम्हारा किया हुआ ।

(५१) :—आदम = आदि पुरुष । हवा = होआ । दौजख = नरक । भिस्त = स्वर्ग, वहिस्त । मन मसले = मिथ्या बुद्धि । मति भुलान = अविवेक के वश ।

(५२) :—सिंह = मन । गाई = गौ, इन्द्रियाँ । चरावै = पोष । पूत = शरीर (आकार) । माई = माया । चेला = विषयभोग । गुरु = चैतन्य, जीव । जल = निर्मल गुण-युक्त आचरण । मछली = जीव । तरवर = परिग्रह का संग्रह । न्याई = वृद्धि करना । विलाई = लोभ प्रवृत्ति । मुरगै = विद्वान, भक्त । बैलहिं = पुरुषार्थ । गूने = परिग्रहवाद । कूता = भक्ति, तपस्या ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तलि = निम्नस्तर। शाखा = कार्य व्यवहार। मूल = ऊर्ध्व स्वभावी आत्म गुण। जड़ = अचैतन्य जड़ता। फूल = कर्म फल।

(५३) :—उनई = घिरी, आच्छन्न। बदरिया = मोहांधकार। संझा = अंधकार, अज्ञानदशा। अगुआ = जीव, चेतन। वनखंड = भववन, संसार। पिया = परमात्मातत्व, देवत्व। धनि = मोही प्राणी। चौपरि = चार कषायें। कामरि = कर्म वैरी। फुलवा = चैतन्य तत्व, जीव। सखियन = सगे सम्बंधी। भीजै = पेठना, कार्य संलग्न होना।

(५४) चरण पिराना = असमर्थ होना। हारि परै = पराजय पर। गन = ऋषिगण। गहनी बन्धन = प्रगाढ़ बंधन। बान = उपाय। रजनी = अज्ञान, अंधकार। अंधकूप = गोरख-धंघा। दादुर=क्षामयिक छल, भयावनी स्थिति। दामिनी = क्षणिक आकर्षण। पवनहुँ = चंचलता के कारण। जहाँडाइया = भ्रमित, ठगाया।

(५५) राम की = आत्मा की। प्रीत = सत्प्रतीति। एकै भाव = एक समान, समदृष्टि से। बाहर परै=जगत—बाह्य विचार करै। काटुक साई = कषायों के बंधन को काट कर। काटो माथा = निर्मूल करना। निगोई = भ्रम में पड़ना। कोल्हू = यंत्रणा के कारण। कोटि पचास = अधिक दुःखदायक, अनिवार्य दुःख समूह।

(५६) गइया = वात्सल्य और समता रस की खानि, यह जीव। विरंचि = सृष्टि व्यास ब्रह्म तत्व। भार = कर्म बोझ। अभार = कारण। भौ = संसार। नौ नारी = नव द्वार शरीर। पानी पियतु = पोषण करना। तिरषा = तृष्णा, इच्छा। कोठा बहत्तर = शरीर के बहत्तर कोष्टकों में व्याप्त। वज्र केवार = आयु सीमा। खूटा = मोह, अपनत्व। चार वृक्ष = चतुर्गतियाँ। छौ साखा = छै विभिन्न काया (पृथ्वी काय, जल काय, अग्नि काय, वायु काय वनस्पति काय और त्रसकाय अर्थात् सचल जीव।) पत्र अठारह = अठारह दोष—क्षुधा, तृषा, विस्मय, अरति, खेद, रोग, शोक, मद, मोह, भय, निद्रा, चिंता, द्वेष, पसीना, प्रीति, जन्म, जरा और मृत्यु।) इन दोषों से युक्त पर्याय धारण करना। हरहाई=भव भ्रमण युक्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ई सातों = सात स्वर्ग। औरो है सातों = सात नर्क। नौ = नव खण्ड। चौदह = चौदह भुवन। पुरता = पूर्णता में। राती = इच्छा रखना। सेत सींग = शुक्ल गुणों से युक्त। अवरण = रूप आवरण, आक्षेप। वरण = रंग। खद्ध = खाद्य। अखद्ध = अखाद्य।

(५७) रसिक = सौन्दर्य प्रेमी, सत्य परीक्षक। पारब्रह्म = परमात्मा। अविगत = नित्य, स्थिर। अविनासी = अमर, सत्य, पूर्ण। अमली = टेव, लत। खुमारी = नशा। कुलाल = कलवार, रस निकालने में विज्ञ। भाठी = तपस्या, योग क्रिया। पोच = व्यर्थ।

(५८) रामुरा = राम सदृश्य, आत्माराम। माहो = आत्मरक्षा शीत से रक्षा। घर छोड़े = आत्म रुचि, स्वात्मबुद्धि। जुलाहा हो = जीव, संसारी प्राणी। गजनौ=नव द्वार युक्त। गज दश=पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेंद्रिय। गज उनइस = अपूर्णशक्ति। पुरिया = ढांचा, आकृति, माया जनित शरीर। सात सूत = मन, वचन व क्रिया तथा क्रोध, मान, माया और लोभ इन सातों का यौगिक रूप। नौगंड = छत्तीस भेद कषाय के सहित

२ १ ३

(६४) मन, वाणी व कर्म को कृत, कारित, अनुमोदना द्वारा नव भेद करने पर चारों कषायों की कर्म रूपता का यह विस्तार। बहत्तर = विस्तृत संसार का कारण। पाट लागु = जीव की चौरासी लाख योनियों का विस्ताराता पट = (ताना) इस कर्म पटक (शरीर) का भाव। तुला तुलेनहिं = अंकन से परे। नहिंगजन अमाई = अधिक विस्तृत। पैसन = (भराव का सूत) योग्यता, बाहुबल। सैर अढ़ाई = आधी भी नहीं। तामें = इन इच्छाओं के पोषण में। करकच = प्रयत्न, परिश्रम। घहराई = जोर जबर्दस्ती करना। उठि बैठ=नमाज, पूजा। खसम सों = सृष्टिकर्ता, ईश। बरबस = लाचारी। तिहाई = कर रूप चुकाव में वृद्धि। भींगी = अशक्त, विवश। पुरिया = शरीर। रिसाई = निर्मोही शरीर को त्याग, जनम-मरण। छाँड़ पसार = इच्छाओं का तनाव। शरीर का ममत्व। बौरे = बावले, मूर्ख।

(५९) घूरि-घूरि = सर्वत्र ढेर, स्थान-स्थान पर सूक्ष्म कण। वर्षा =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चैतन्यता। वर्षावै = चैतन्य युक्त शरीर दिखाई देना। चिउंटी = सूक्ष्म जीव। पग = स्वभावानुसार, कर्मानुसार। हस्तो = स्थूल काया। छेरी=क्षीण काया। बीग = सबल जीव। रखावै = रक्षित है। उदधि = सागर, भव समुद्र। छांछरी = माया, लक्ष्मी, निष्तत्व भावना। चौड़े = बृहत। ग्राह = इच्छाएँ। मेंढक = क्षणिक जीवन। सर्प = काल, मृत्यु भय। विलइया = वासनाओं का भंडार, लोलुपता। श्वान = दासत्व, भक्ति, पूजा। वियाई = निर्माण कारण। सिंह = पुरुषार्थी जीव। सियार = वेषी-साधु, होनी, भवितव्य। संशय = आकांक्षा पूर्ति,। मृगा = मृग तृष्णा। वन घेरे = ढेर एकत्रित करना, वस्तुओं का संग्रह। पारथ = अर्जुन सा पराक्रमी जीव, शिकारी। बाना मेले = बाण डाल देना, आत्म समर्पण। उदधि = अपार समुद्र। भूखते = कांक्षाओं से। तरिवर डाहै = परोपकार वृत्ति नष्ट करना। मच्छ = मोह मत्सर। अहेरा खेले = हानि पहुँचाना, नष्ट करना। विन पंखे = विना सहारे। मरण = मृत्यु का ध्यान।

(६०) अकथ कथो = आश्चर्यकारी कार्य किया है। सिंह = (पुरुषार्थी) जीव, आत्मा। शार्दूल = शरीर (कमजोर स्याल)। एक हर जोतिन = कार्य क्षेत्र में उतरे, शरीर धारण किया। सींकस = क्षीण-दाना, तुच्छ कार्यों में लगना। वन की भुलुइया = जीवन का विरोधी तत्व, चैतन्य के लिये अनिष्ट कर। चाखुर फेरे=खेत की निदाई, कार्यशीलता। छागर=(बकरा) अहंकारी तत्व, मानकषाय। किसाने=कर्ता, प्रबंधक। छेरी=तृष्णा, लोलुपता। बाघहिं = कामुकता। ब्याह होत है = परस्पर, गठबंधन। मंगल गावै = प्रमुदित हैं। गाई-गो, इंद्रियाँ। बन के रोझ=बारहसिंगों की उलझन। दाइज दीन्हों=दहेज प्राप्त हुआ। गोहलो = गोपनीयता। कन्धे जाई = सर्वगोचर। कागा = दुर्जन। कापड़ धोवन = वेष बनाने लगे, निर्मलता प्रदर्शित करना। बकुला = दिखावटी भक्ति। किरपहिं दांते = भजन करना। माखी = लोभी, लोलुपी। मूँड मुड़ावन लागी = त्यागी बने, साधुता व्यक्त करने लगे। बराते = आनन्द प्राप्त करने।

(६१) झूठा बानिज = असद्व्यवहार। झूठे सौं = चराचर जगत से।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुंजी = प्रधान तत्व, मानवीयता। तिरदेवा = ब्रह्मा, विष्णु, महेश। राजा देश = मन, । परपंची = पंचेन्द्रियों के विषय में फंसा हुआ। रइयत = शरीर और इन्द्रियाँ। उजारी = नष्ट। साँड = बलवान। पैंड़ = व्याख्या। विषया = इच्छा, वासना। अपावन = अभक्ष्य। सुरति = आत्मा। सम्हारी = रक्षा।

(६२) शब्दहिं = ज्ञान। पानी = निर्मल आत्मा। पषान = कषाय, कठोरता। ठोंकत = ठोकर, धक्का। मभूका = ज्वाला, कषायाग्नि। सहस घड़ा = शांति के सैकड़ों प्रयत्न। सितंग = अंग का श्वेत होना, रक्तहीन शरीर। सैन = चंचलता। सन्निपात = त्रिदोष। अनहद=असीम, आत्मा। पयाना = विनाश।

(६३) नरहरि = नरदेह से परे, ईश्वर। दव विकार = विषयाग्नि, मूढ़ता की दावाग्नि। अग्नि को अंकुर = मोहबुद्धि, माया। बुझावै = क्षीण करना। नौ नारी = पाँच ज्ञान व क्षमा, मार्दव, आर्डव, शौचादि विशेष गुण नव। शहर = व्यापक प्रभाव, विशेष योग्यताएँ। पहरू =आत्मा। घर=शरीर। पुरिया=कर्मावरण, फंदा। विकल=अशरीरी, अदृश्य। कुब्रजा पुरुष = मिथ्या विचार। असाधा = व्यर्थ, अनिवार्य। कपट = आत्म प्रवंचना।

(६४) फुलवा = लक्ष्मी, धन, पैसा। भंवर = विवेक, विद्वत्ता। मालिन = स्त्री जाति। गांथल = संग्रह किया, संजोया। निरासल = उदास, दुःखी।

(६५) जोलहा = प्राणी (कर्म करने वाले)। बीनहु = प्राप्त करो। ताना तनै को = भूमिका हेतु। अहुठा=निवृत्ति। चरखी=(सूत खोलने वाला चक्र) सुलझाने वाला ज्ञान। सरकंडी = निवारक, (कंघी)। राम नरायण = ईशभक्ति। मांड़ी = कर्मावरण। साना = लिप्त। चाँद सूर्य = दिन रात। दुइ गोड़ा = तनाव, जाग्रति। मांझ द्वीप = निरालम्बन। मांझा = स्थिरता। त्रिभुवननाथ = ब्रह्म, आत्मा। मांजन लागे = निखर उठे। श्याम मुररिया = प्रेम-व्यवहार, आकर्षक आचरण। पाई कै = सुलझाव कर, सही कर। भरना = योग करना, मिलाना। वै बांधन=राग-द्वेष को वश में करना, मन को वश में करना। वै भरा = मन वश किया। उवाना=चलायमान, वैराग्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीन लोक = सम्पूर्णता । करिगह = अपने वश में, (करघा का संचालन) । दिगमग = चारो ओर, सर्वत्र । ताना = प्रसार, ज्ञान की पहुँच । आदि पुरुष = ब्रह्म । बैठावन बैठे = (बुनने बैठे) प्राप्त करने को बैठे । ज्योति समाना = आत्म-स्थिरता, निर्विकल्प अवस्था ।

(६६) जंत्री = यंत्रकार, आत्मा । जंत्र=शरीर रूपी वाद्यांत्र । अष्ट गगन मुख = अष्ट मद, या अष्टांग शरीर । गाजै=गर्जना करता है । शब्द=शरीर । अनहद=आत्मा । चरई=खूंटी, शब्द सहायक । गगन मंडल=शरीर । उजियारा = प्रकाश, आनन्द । उलटा फेर = दृष्टि बदलना, राह परिवर्तन ।

(६७) मते = मगन हुए । रंगी = सप्त रंगों के समूह से शुक्लता को प्राप्त, सप्त तत्वों के विवेचन द्वारा यथार्थता का बोध । अर्द्ध उर्ध = अपूर्ण या पूर्ण । भाठी रोपिन = भट्ठी लगाई, यन्त्र प्रज्वलित किया । कसारस = क्रोधादि कषाय-रस । गारी = निकालना । मूँदे-मदन = कामदेव को वश करके । कर्म-कस्मल = कर्म-मैल । संतत = सदाचारी, सदैव । चुवत अगारी = गार्हस्थ्य से विमुख, अनागारी । सुख = सुखदेव । अधर कटोरी = मुँह में लगा स्वादिष्ट पेय । अमहल = वैरागी । दिवाना = भक्त, प्रेमी । खुमारी = मग्नता, निर्द्वन्द्वता ।

(६८) सिंह = मन । चरावे = सेवा, पोषण । गाई = गो अर्थात् इन्द्रियाँ । पूत = साकार, शरीर । माई = माया । चेला = सम्पत्ति, परिग्रह । गुरु = ज्ञानी आत्मा, जीव । लागै पाई = अधीन, आश्रित । जल = सुख शांति का मूल । मछली = जीव । तरवर = परिग्रह एकत्र करना । बिलाई = विषय वासना । मुरगे = विनम्रता, भजन भक्ति । बैलहिं डारि = पुरुषार्थ को त्याग । गूनि = (गोन) संग्रह-वृत्ति । कूता = सेवा भाव, स्वामि भक्ति । साखा = विस्तार (भव वन का फेरा) । ऊपरि करि मूल = मूल स्थान मुक्ति या स्वातंत्र्य है । जड़ लागे फूल = स्वर्ग सुख की कल्पना में अनेकों प्रयत्न करना (फूल) ।

(६९) ताना = आधार सूत्र (तनाव का सूत) । भरनी = कार्य सूत्र (विनाव) कौन तार = उपयोग सूत्र (गुण, भेद) । आठ कंवल दल = हृदय, अष्ट-कर्म-दल के सहयोग से । साईं को सियत = शरीर की पूर्ण आकृति के लिये जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का गर्भस्थ कार्य ।

(७१) वान = अंतर्दृष्टि । सुरंगी = स्वच्छ, निर्द्वेष । भिरंगी = भौंरा । पाँचों संगी = पंचेन्द्रिय । पतंगी-पतिंगे ।

(७२) बड़े भृंगी = (श्रेष्ठ भौंरा) श्रेष्ठ पुरुष । पतंग = आसक्त, भक्त, (भ्रमर जैसा) । पाँव = आचरण । काया = रूप, गुण । पंख=शक्ति । रङ्ग = दृश्य, दृष्टिकोण । दरियाव = (समुद्र) विशालता । संगी = शिष्य, अनुगामी । मनसा = मंनोवृत्ति । पंगी = अचल, स्थिर । नितत्व = हेय । सङ्ग = संयोगी तत्त्व । अगमन = अगम्य बोध, परमतत्व विवेक ।

साखियों का शब्दार्थ

(१) जन्म मुक्ता = अजन्मा, एक मात्र ब्रह्म । छठी = पंच तत्वों से परे शिवत्व, सत्य । विगोय = भटकना ।

(२) शब्द = ज्ञान, चेतना । सरक = टाल देना । निज तत्व = आत्म तत्व । शब्दहि लेहु = धारण करना ।

(३) आदि का = प्रथम, सर्वोत्कृष्ट तत्व । शब्दै = सत्य तत्व । पैठा जीव = जीवन में साकार हुआ । घोरे = मन, इन्द्रियाँ, (अश्व) । फूल = आनन्दित है । रहनि की टोकरी = नश्वर शरीर, दोषयुक्त काया । घीव = सत्व (आत्मा) ।

(४) शब्द = ज्ञान, चेतना । सुरति = विवेक । द्वार = मार्ग, परिचय ।

(५) सार शब्द = निश्चय सत्य । जीजै = जन्म, जीवनोपयोग ।

(६) शब्दै = चैतन्य शक्ति, जीव ने । शब्द विवेकिया = शब्द या चैतन्य शक्ति की विवेचना, सत्यासत्य निर्णय ।

(७) आदि का = स्वयंसिद्ध । माहिली = धूर्तता, अविवेक । ऊपर की = पाखण्ड, प्रदर्शन ।

(८) संभल = संबल, सहयोग, साधन । पुर पाटन = क्षेत्र, सुयोग,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुसंस्कार। झालि परे = वर्षा आने पर, असमर्थ होने पर। दिन आथए = प्रकाशहीन होने पर।

(९) विषयी बाट = विषयों की अधीनता, अज्ञानता। बिसाहन = प्राप्त करने। बनिया = व्यवसायी, पूर्ति करने वाले।

(१०) जिय आपना = अपने प्रति मोह, स्वकल्याण की इच्छा। पाहुना = अतिथि, जिसका पुनर्मिलन अज्ञात हो।

(११) जग जीवना = जाग्रत जीवन, यथार्थ जीवन। जो जानहु = ज्ञातव्य। पानी पचावहु = अहंकार नष्ट करना, निर्मद होना। पानी माँग = क्षुद्र कार्यों के लिये ऋणी होना।

(१२) पानी = शीतलता व शांति प्रदान करने वाला ज्ञान। सायर = समुद्र। वारि = जल। झखमार = प्रयत्न पूर्वक, अपनी इच्छा से।

(१३) हंसा = विवेकी, ज्ञानी विद्वान। मोती = सद्ज्ञान। कंचन थार = माया। मर्म = भेद, परिचय।

(१४) हंसा = विवेकी, प्रबुद्ध। सुवर्ण वर्ण = माया मुग्ध। तरिवर = स्थान भोजन की सुविधा देने वाला वृक्ष। पयहि लहौं = दुग्धामृत प्राप्त करना।

(१५) सबल = सर्वशक्तिमान। हलुकी चाल = निकृष्ट आचरण। रंग कुरंगे रंगिया = अपने धवल रूप को लुप्त कर रङ्ग-बिरङ्गा बना लिया है। लगवार = दास।

(१६) हंसा = प्रबुद्ध आत्मा। सरवर = निवास स्थल, गृह, शरीर। सुन्न = चैतन्यहीन, शून्य। दर = योनि, मार्ग। थुन्न= टेक, स्वभाव।

(१७) वकु = बगुला। हरियरे ताल = संसार के भोगोपभोग। क्षीर तें = क्षीर-नीर कीपृ थकता का विवेक। काल = दुश्मन, विरोधी।

(१८) हरनी = मन की चंचल प्रवृत्ति। दूबरी = असंतुष्ट। हरियरे = भौतिकता और सुख साधनों से पूर्ण। ताल = जन्म स्थान। अहेरा = घातक। मृग = शरीर आत्मा।

(१९) भौ पींजरा = विभिन्न योनियों का कारागार, देह रूपी पिंजड़े में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाल = बंधन, अरुझान। सावज = आखेट, शिकार। अहेरी = घात में पीछे लगा हुआ समय अथवा मृत्यु पाश।

(२०) साधी = साधुजन, साधक, सरल प्राणी। आधी = ओछी बातें, कुवचन। खुन्न = क्रोध, विरोध।

(२१) आधी साखी= कथन का अर्द्धांश, कथनी और करनी के दो पक्षों में से कथन मात्र हुआ है उसका उपभोग नहीं। शिर खड़ी = कठिन कार्य है, मस्तिष्क के लिये चिंता का विषय है।

(२२) पंच तत्व का पूतरा = दृश्यमान यह पंच तत्वमय शरीर। कीव = किया, कर्त्ता हुआ। शब्द = शरीर से उद्भूत यह शब्द या शब्द भंडार शास्त्र।

(२३) एक कला = जीवत्व कला, जीवनी शक्ति। विकल = निष्क्रिय, शून्य। सब ठाँव = सम्पूर्ण अवयव।

(२४) रंगहिते = सादृश्य से, मलीनता से। एक = तद्रूप रंगीन (सभी मलीनता युक्त हैं।)

(२५) जाग्रत = चैतन्य। शब्द = यौगिक रूप, शरीर। सोहागा सेत = श्वेत ढाँचा जोड़नेवाला। जर्दविन्दु = रक्तकण। जल कूकुही = जलीयजीव।

(२६) पंचतत्व = क्षिति, जल, पावक, गगन और वायु यह पंच तत्व इस शरीर के मुख्य यौगिक हैं। यह शरीर इन्हीं पंच तत्वों से बना है। इसका प्रधान (राजा) जीव है जो कि चैतन्य शक्ति वाला है। उसने इस शरीर को धारण कर कर्मों के आश्रित कर रक्खा है।

(२७) गुप्त वस्तु = अदृश्य चेतन तत्व। अस्थान = किसी एक स्थान में केन्द्रित नहीं, अर्थात् शरीर के अनुकूल विस्तीर्ण। मर्म = भेद।

(२८) असुन्न = प्रत्यक्ष, दृष्टिगोचर। तखत = स्थिति। अड़ि आसना = निश्चल निवास। पिंड झरोखे = शरीर। नूर = जीव, आत्मा। हौं = स्वयं। सेना = कर्म-सैन्य।

(२९) आरसी = दर्पण। मुख = प्रतिबिम्ब, अपनत्व, स्वपरिचय। दुविधा = राग द्वेष, मैं मेरा, ब्रह्म व माया का भेद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३०) गाँव = निवास स्थल। उँचे पहाड़ = उत्कृष्ट भावना और सदाचरण। मोटा की बाँह = पुरुषार्थी सहयोगी दृढ़ निश्चयी। ठाकुर=आदर्श। उबरिये = संसार समुद्र से पार होना।

(३१) वहीर = बाहर, परे। रामकी = आत्मराम की।

(३२) सँभल = सम्बल, शक्ति। परोह = सामने या परोक्ष में। पग थके = असमर्थ होना। विराने हाथ = दूसरे के साथ।

(३३) सिलहली = चिकनी, सरकनी। पिपीलिका = चींटी। खलक = निवासी, संसारी। लादै बैल = वाणिज्य करना।

(३४) कूर = दुष्ट, दगाबाज। खारी = नमक। कपूर = अमूल्य वस्तु।

(३५) शब्द-शब्द = शब्दों की चर्चा द्वारा। विदेह = अरूपी।

(३६) पर्वत ऊपर = पत्थरों पर, व्यर्थ में। हरवहे = हर चलावे, क्रिया करना, शक्ति लगाना। घोड़ा = अस्थिरता, मन की चंचलता। बसे गाँव = सुख शान्ति चाहना, स्थिरता चाहना। विरवा = वृक्ष।

(३७) चंदन = बहुमूल्य काष्ट। बास = सुगंध या आकर्षण। जीवत = जीवित प्राणी। निपातिया = सर्वनाश किया।

(३८) चंदन = सुगुण। विष = दुर्गुण। अमृत = सदाचरण, विवेक।

(३९) मोदाद = खुराक, ग्राह्य। समसान सिल = मुर्दा भूमि। सावज = आखेट, शिकार करने के लिये लक्षित प्राणी।

(४०) गही टेक = स्वभाव। चकोर = चांदनी का प्रेमी पक्ष।

(४२) झिलमिल = भौतिक चकाचौंध। झगरा झूलते = माया मोह की दुविधा में फंसे। कालपुर = मृत्यु के आभास से। साहु = साधु।

(४३) कोरो = व्यर्थ। मांजी = साधन किया।

(४४) बिहड़े = कैद, पराधीनता। करहा = खरगोश। बान = आदत।

(४५) हींड़िया = खोज की, ध्यान लगाया। सुन्न समाधि = गगन मंडल में पवन साधना करना, योगाभ्यास। गाड़ = खलिहान।

(४३) भर्म भ्रम, अज्ञान, मिथ्या बुद्धि। माजिया = नष्ट नहीं हुआ। भेख = जन्म स्वांग, भेष। रेख = रेखा, आदत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४७) डांडे = दण्ड दिये। डांडिया = दण्ड पा रहा है। सोरठ = (सौराष्ट्र) द्वारिका पुरी। डांड = हानि हुई। गुर = गुड़।

(४८) मलयागिर = सुगंध का कोष, चंदन का केन्द्र। गोय = छिपना, खपना। चंदन = संज्ञा प्राप्त करना।

(४९) बेधा = सुवासित हुआ, योग्य हुआ। ढाक पलास = तुच्छ वृक्ष, निरभिमानी। बेना=दक्षिण में मलयागिर की एक नदी, अस्थिर मानव।

(५०) चलते-चलते=अनेकों जन्म धारण करते हुए। नग्र = निवास, यह मानव शरीर। नौ कोश = नव द्वार मय यह काया। बीचहि = संसार के लुभावने पदार्थ और मोह। डेरा परा = विलीन हुआ।

(५१) झालि परे = बरसात आने पर। दिन आथये = दिन अस्त हो जाने पर, वृद्धावस्था में। सांझ = शून्यता, जड़ता। रसिक=प्रेमी। लागते = प्रेम के वश।

(५२) छौ मास = छै माह, आधी उम्र। हींडते = विचारते। आध कोस = निकट। गाँव = लक्ष्य।

(५३) गिरही = गृहवास या कुटुम्ब। चोली = शरीर। थाकी मारिया = कमजोरी प्रकट करना, दीनता दिखाना।

(५४) चिन्हिया = अनुभव करना। झीना पिंजर = शारीरिक योग्यताहीन।

(५५) भीजै = सरावोर होना, व्याप्त होना। राम रस = प्राणी प्रेम। विगसित = बढ़ना। रूख = रुक्षता। अनुभव भाव = स्वपर का अनुभवन। दरसे = प्रकट होना। सूख न दूख = सुखी नहीं दुःखी है।

(५६) मौरसी = फलना, आम में बौर आना। पारस = पारस पत्थर, पार्श्व, प्रत्यक्ष।

(५७) परख = ज्ञान कर। टकसार = उत्तम, पवित्र।

(५८) प्रेमपाट = प्रेम-पट। पानिप = शांति, तेज।

(५९) दर्पन = प्रतिविम्बत होने वाली गुफा या कोठरी। प्रतिमा = अपने प्रतिरूप से ईर्ष्या।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६०) दुहुनमा = प्रतिविम्ब और वह स्वयं एक है। तत = जीव। तत्त = प्रतिविम्ब, कर्म फल।

(६१) जोबन = युवावस्था के आवेश। सायर = संसार समुद्र। रसिया = रसिक, लुब्ध प्राणी। लाल = मोहाधीन रागद्वेष। पांजी = प्यादा सिपाही। पंथी = राही, यह प्राणी।

(६२) दोहरा = दोहा, शरीर, काव्य। नौ तन = नया, नूतन। पदहि = पद, योग्यता। छत्र-धनी = जगनायक, परमात्मा।

(६३) सौदा = व्यापार, कार्य। सांचा हीरा = आत्मबोध।

(६४) सुकृत = सत्कार्य हेतु। सपनेहु = स्वप्निल संसार।

(६५) आगि = आशा-तृष्णा, विषयाग्नि। समुद्र = संसार-समुद्र, सृष्टि। धुआँ = प्रत्यक्षतया। जरि मुआ = विकल है, अशांत है।

(६६) लाई = दाहकता, नाश कृत्य। लावनहार = तपसी, संयमी। परजरै = प्रज्वलित हो, अज्ञान को जला दे। छप्पर = रक्षक, जीव। घर = संसार का कारण, आवागमन।

(६७) बूंद = जीवात्मा। समुद्र = संसार, सृष्टि।

(६८) जहर = मिथ्या बुद्धि। जिमीं = स्थान, स्वयं, अपने में। रोपिया = जमा रक्खी है। अमी = अमृत ज्ञान-वार्ता। सीचैं = फैलाता है, सुनाता है। सौ बार = सहस्र बार। खलक = जीव समूह।

(६९) जात = विदा होते समय। चन्दन की डार = निर्विकार अवस्था में, सर्वाङ्ग सादृश्य। वाट = शरीर धारण करना, वाणिज्य प्रारम्भ करना। लेत = प्राप्त करना।

(७०) सांचा = सत्यता। नाहिना = नहीं है। कोटि = करोड़ों पल।

(७१) धौंकी = प्रज्वलित, ज्ञान-वायु द्वारा उत्तेजित। डाही लाकड़ी = जली लकड़ी। लोहार घर = कर्म चक्र।

(७२) विरह = आत्म-परिचय से परे ज्ञानी। ओदी लाकड़ी = ज्ञानरस-गर्भित मनुष्य। सपचै = जलना, हर्षित होना। धुँधवाय = दुःखी होता है। सकलो = क्रियायुक्त शरीर। जरि जाय = निर्मूल हो जाय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७३) विरहवान = अपनत्व का वियोगी। औषध = सुख शान्ति के प्रलोभन, उपचार।

(७४) भैल = हो गया। युग चार = चारों-पन, बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक।

(७५) बानिया = लाभ का इच्छुक, विवेकी। हाट = व्यवसाय, बाजार। कूरा = अपने दुर्गुणों को।

(७६) कोठी = निवास, शरीर। काठ = नश्वर और जड़। ढिग-ढिग = सर्वत्र, कर्मेन्द्रियाँ। आग = विषयाग्नि। पंडित = विद्वता के अभिमानी। झोली = राख, छार। साकत = पुरुषार्थी, अज्ञानी। उबरे = बचे।

(७७) सावन = वर्षा ऋतु। सेहरा = विवाह का मुकुट (सूचक)। असमान = आकाश।

(७८) ढिग = पास में। उतरा = उबरा, उतराया।

(७९) साखी = ज्ञान के शब्द। गहै = धारण करना। सलिल धार = मोह के प्रवाह। नदिया बहै = बाहुल्य।

(८०) कहता = उपदेशक। गहता = आचरण करने वाला।

(८१) एक-एक = क्रमशः। निरुवारिये = सिद्ध कीजिए।

(८२) बंद दे = वाचालता त्याग कर। पारखी = परीक्षक, न्यायी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi